❀ आहारः ❀

श्रीभागवत-दर्शन—

भागवती-कथा

(पैंतालीसवाँ खण्ड)

व्यासशास्त्रोपवनतः सुमनांसि विचिन्विता
कृता वै प्रभुदत्तेन माला 'भागवती कथा'

—:o:—

लेखक
श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारी

—:o:—

प्रकाशक
सङ्कीर्तन-भवन
प्रतिष्ठानपुर झूसी (प्रयाग)

—:❀:—

संशोधित मूल्य २-०० रुपया

[द्वितीय संस्करण १००० प्रति] पौष सं० २०२३ वि० [मू० १-७५ पै०

मुद्रक—पं० रानाराम शुक्ल भागवत प्रेस, ८५२ मुट्ठीगञ्ज इलाहाबाद।

॥ श्रीहरिः॥

श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी द्वारा लिखित अन्य पुस्तकें

मुद्रक—पं० राजाराम शुक्ल भागवत प्रेस, ८५२ मुट्ठीगञ्ज इलाहाबाद।

श्रीहरिः

[ब्रजभाषा में भक्तिभाव पूर्ण, नित्य पाठ के योग्य अनुपम महाकाव्य]

श्रीभागवतचरित

(रचयिता—श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी)

श्रीमद्भागवत, गीता और रामायण ये सनातन वैदिक धर्मावलम्बी हिंदुओं के नित्य पाठ के अनुपम ग्रन्थ हैं। हिन्दी भाषा में रामायण तो गोस्वामी तुलसीदासजी कृत नित्य पाठ के लिये थी, किन्तु भागवत नहीं थी; जिसका संस्कृत न जानने वाले भागवत-प्रेमी नित्य पाठ कर सकें। इस कमी को "भागवत चरित" ने पूरा कर दिया। यह अनुपम ग्रन्थ ब्रजभाषा की छप्पय छन्दों में लिखा गया है। बीच बीच में दोहा, सोरठा, छन्द, लावनी तथा सरस भजन भी हैं। सप्ताह क्रम से सात भागों में विभक्त है, पाक्षिक तथा मासिक पाठ के भी स्थलों का संकेत है। श्रीमद्भागवत की समस्त कथाओं को सरल, सरस तथा प्रांजल छन्दों में गाया गया है। अब तक इस ग्रंथके चार संस्करण में बीस हजार प्रतियाँ छपी थीं, जो थोड़े ही दिनों में हाथों हाथ निकल गयीं सैकड़ों नर नारी इसे बहुत रुचिके साथ नित्य नियम से पाठ करते हैं। कथावाचक पंडित हारमोनियम तबले पर गाकर इसकी कथा करते हैं और बहुत से पंडित इसी के आधार से भागवत सप्ताह बाँचते हैं। लगभग नौ सौ पृष्ठ की पुस्तक सुन्दर चिकने २८ पौंड सफेद कागज पर छपी है। सैकड़ों सादे एक रंगे चित्र तथा ५-६ बहुरंगे चित्र हैं। कपड़े की टिकाऊ बढ़िया जिल्द और उस पर रंगीन कवर पृष्ठ हैं। बाजार में ऐसी पुस्तक १०) में भी न मिलेगी। आज ही एक पुस्तक मँगाकर अपने लोक परलोक को सुधार लें। न्योछावर केवल ५.२५ पाँच रुपया पच्चीस पैसे इस पुस्तक की टीका भी दो खण्डों में प्रकाशित हो चुकी है। जिसका मू० ६.५० छः रुपया पचास पैसा डाकव्यय पृथक्।

पता—संकीर्तन भवन, प्रतिष्ठानपुर, (झूसी) प्रयाग

संकीर्तन भवन, वंशीवट वृन्दावन।

विषय-सूची

॥ श्रीहरिः ॥

कहाँ कहाँ क्या क्या देखा

(भूमिका)

युधिष्ठिरस्तत्परिसर्पणं बुधः
पुरे च राष्ट्रे च गृहे तदात्मनि ।
विभाव्य लोभानृतजिह्महिंसना-
द्यधर्मचक्रं गमनाय पर्यधात् ॥*
(श्री भा० १ स्क० १५ अ० ३७ श्लो०)

छप्पय

दुखको कारन नेह नेहतैं शोक, हरष, श्रम ।
विषयनिमहँ अनुराग होइ चितमहँ नित विभ्रम ॥
बढ़ै लोभ अति अधिक अनृततैं स्वारथ साधै ।
करिकैं छल बल कपट जगत बन्धन महँ बाँधै ॥
अघ, हिंसा, परद्रोह करि, विषयनिके हित लड़त हैं ।
कलि प्रभावतैं कलियुगी, नर नरकनिमहँ परत हैं ॥

आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्ण के स्वधाम पधारने पर कलियुग यहाँ आ गया। जैसी ऋतु आनेवाली होती है वैसे ही लक्षण सर्वत्र

* सूतजी शौनकादि मुनियों से कह रहे हैं—"ऋषियो ! धर्मराज युधिष्ठिर अपने सम्पूर्ण राज्य में, नगर में, अपने घर में तथा अपने आप में लोभ, असत्य, छल, हिंसा आदि अधर्मों की प्रवृत्ति देखकर कलियुग का प्रभाव प्रसार जान लिया, तब उन्होंने महाप्रयाण के लिये निश्चय कर लिया।"

छा जाते हैं। वसन्त ऋतुका आगमन होता है, तो वह कोयलको बुलाने नहीं जाती, कोयल अपने आप आ जाती है, सूखे वृक्षोंमें अपने आप नवीन कोंपलें निकलने लगती हैं। शरद पूर्णिमा समाप्त होने पर शरदी, घर घर कहती नहीं फिरती तुम ऊनके कपड़े ले लो, रुई भरवालो, मोटे कपड़े लो, किन्तु स्वतः ही लोगों को उनकी आवश्यकता प्रतीत होने लगती है, लोगोंको गरम कपड़े पहिननेमें सुखानुभूति होती है। इसी प्रकार कलियुग आनेपर वह सबसे कहता नहीं फिरता कि तुम लोभ करो, असत्य भाषण करो, सबके साथमें छल कपट का व्यवहार करो तथा हिंसामें मनको लगाओ। इन कार्योंमें अपने आप लोगोंकी प्रवृत्ति होती है, लोग इन कार्योंके द्वारा अपनेको सुखी बनानेका प्रयत्न करते हैं, वे अधर्म को ही भूल,से धर्म मानने लगते हैं। धर्मराजने देखा मेरी प्रजामें लोभ, अनृत छल, कपट आदि बढ़ रहा है। जो लोग उदारताके लिये प्रसिद्ध थे, उनके मनमें लोभ आने लगा है, जो लोग कभी असत्य नहीं बोलते थे, वे राजद्वारमें असत्य साक्षी दे आते हैं, दूसरोंको कष्ट कर आजीविका प्राप्त करनेमें गौरवका अनुभव करते हैं। उन्होंने सोचा—"सम्पूर्ण राज्यमें तो राजा रहता नहीं वहाँ तो उसका आतंक ही कार्य करता है। राजधानीमें तो सदा सर्वदा राजाका निवास है। राजधानीके लोगोंकी तो धर्ममें मति होनी चाहिये, किन्तु लोभ, झूठ, दम्भ, छल, कपट राजधानीके लोगोंमें भी दीखता है। राजधानीकी बात जाने दो अपने घरमें भी अधर्मने पैर जमा लिये हैं। हमारे घर की बहिन बेटियोंके मन दूषित हो गये हैं। जहाँ दस सहस्र ब्राह्मण नित्य सुवर्णपात्रोंमें भोजन पाते थे वहाँ अब उनकी संख्या बहुत कम हो गयी है। लोगोंकी उन्हें भोजन करानेमें आस्था नहीं। केवल लकीर पीटनेको बेमनसे अश्रद्धा पूर्वक उन्हें खिलाते हैं; बात बातमें मैं 'मेरी तू तेरी का पुकार है। घरमें

सब जाते हैं, तू तू मैं मैं सुन पड़ती है। कहाँ तक कहें, औरोंकी बात पृथक् रही, स्वयं मेरे मनमें भी भूठ बोलनेकी इच्छा होती है, उदारता दुबकती जाती है। बहुत लगानेपर भी कथा कीर्तनमें मन नहीं लगता। इन सब लक्षणोंको देखकर धर्मराजने अनुमान लगा लिया कि अब पृथिवीपर कहीं कलियुग आ गया। उन्होंने सोचा—कलियुगसे और धर्मसे तो वैरभाव है कलियुग तो अधर्मबन्धु है, मैं धर्मका पुत्र हूँ। इस कलियुगमें कलियुग—का बोल बाला है। जिसके अभ्युदयका समय होता है, उस समय कोई भी उसे रोक नहीं सकता। अतः मुझ कलिकालसे अधिकृत इस भूमिको छोड़कर चला जाना चाहिए।" यही सब सोचकर वे हिमालयमें द्रौपदी और अपने चारों भाइयोंके साथ गलने चले गये।

भगवान् आदिशङ्कराचार्यके दादागुरु थे स्वामी गौड़पादाचार्य। ऐसी मान्यता है, कि वे भगवान् शुकदेवके शिष्य थे। उन्होंने जब देखा पृथिवीपर कलिकाल छा गया तो वे निरन्तर गुफामें रहने लगे, उन्होंने सोचा—"मैं कलयुगी मनुष्योंको देखूँगा नहीं, क्योंकि इनके संसर्गसे अन्तरात्मा कलुषित हो जाती है।" जब भगवान् शङ्करका अवतार हुआ और उन्होंने अपने गुरुके भी गुरुकी यह बात सुनी तो उनके दर्शनोंके लिये गये। गुफाके द्वारपर जाकर उन्होंने स्तुति की। परम श्रुतमधुर भावपूर्ण स्तुतिको सुनकर भीतरसे भगवान् गौड़पादाचार्यने कहा—"कौन है ?"

बाहरसे भगवान् शङ्कराचार्यने कहा—"मैं हूँ शङ्कर"।

आचार्यने भीतरसे पुनः पूछा—"क्या शङ्करका अवतार हो गया ?"

आचार्य शङ्कर कुछ भी न बोले। आचार्य गौड़पादने कहा—"क्या चाहते हो ?"

शङ्कर स्वामीने कहा—"दर्शनों की अभिलाषा है।"

आचार्य गौड़पाद बोले—"दर्शन तो असम्भव है।" फिर कुछ सोचकर उन्होंने भीतरसे श्रीविष्णुसहस्रनाम फेंका और कहा—"अच्छा इसपर भाष्य लिखो।"

भगवान् शङ्करने तुरन्त उसपर भाष्य लिखा, जो अद्यावधि उपलब्ध है। उसे पढ़कर भगवान् गौड़पादाचार्य परम प्रसन्न हुए। फिर भी शंकराचार्य स्वामी को उनके सम्पूर्ण शरीरके दर्शन नहीं हुए केवल चरणोंके ही दर्शन हुए। यह आजसे लगभग दो ढाई सहस्र वर्ष पहिले की बात है। तब से कलियुग का बल बढ़ा ही है, कुछ घटा नहीं है। अब क्या दशा होगी। इसका विज्ञ-पाठक अनुमान करें।

सुनते हैं, धर्मराज युधिष्ठिरसे एक बार कलियुगकी भेंट हुई। उसने धर्मराजसे कुछ वर माँगने को कहा। धर्मराजने कहा—"अच्छा, पाँच सहस्र वर्ष तुम अपना प्रभाव मत दिखाना।" यह बात कलियुगने मान ली। वैसे तो महाभारत युद्ध के समय ही कलियुग आ गया था। द्रोणाचार्य, भीष्मपितामह, कर्ण तथा शल्यादि योद्धाओं की मृत्यु अधर्मपूर्वक ही की गयी। वहाँ स्थान स्थान पर कहा गया है, यह सब कलिका प्रभाव है, फिर भी धर्म के प्रति लोगों की सर्वथा अनास्था नहीं हुई थी। शनैः शनैः अधर्म की वृद्धि होती रही। फिर भी लोगोंकी गौ, ब्राह्मण, देवता वेद, वर्णाश्रमधर्म, साधुसन्त, कथा वार्ता, तीर्थ व्रत, दान पुण्य, शौच स्वाध्याय तथा अन्यान्य पर्व स्नानादि धार्मिक कृत्यों में आस्था बनी रही। विदेशियों का भी आक्रमण हुआ। विदेशी अपना देश त्यागकर यहाँ बस गये, फिर भी हमने उन्हें अपनाया नहीं क्योंकि वे हमारे धर्म के शत्रु थे। धर्म त्यागने को उन्होंने हमें भाँति भाँति की यातनायें दीं। हमने प्राणोंको त्यागना स्वीकार किया किन्तु धर्मको नहीं त्यागा।

कलियुग को पाँच सहस्र वर्ष हो गये। पाँच सहस्र से और

५२ वर्ष अधिक हो गये। अब कलिकालने अपना रूप दिखाया है। इन पचास वर्षोंमें धर्म का जितना ह्रास हुआ है, उतना पाँच-सहस्र वर्षोंमें भी नहीं हुआ। गत चार पाँच वर्षों से-जबसे हमें यह मिथ्या स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है, तबसे-तो धर्मपर प्रत्यक्ष प्रहार किया जाने लगा है। समस्त अनर्थोंका मूल धर्मको ही बताया जा रहा है। उन्नतिमें सबसे अधिक बाधक है तो यह धर्म और धर्मका प्रचार करनेवाले ये लंबे तिलकधारी पोंगा-पन्थी। अतः शासकोंकी पूरी शक्ति इन्हींके मिटानेके लिये लगी है। जो प्रत्यक्ष बलात्कार करते हैं, जो दूसरोंकी बहिन बेटियोंका अपहरण करते हैं, जिनके यहाँ बलात्कार, हत्या, लूटपाट बल-पूर्वक धर्मपरिवर्तन न्याय माना जाता है, उन विधर्मियोंसे तो कोई बोलता नहीं, यही नहीं उनकी तो सर्वदा अनुनय विनय करते रहते हैं, और जो मानव धर्म है जिसका आधार ही विश्व-कल्याण है उन सार्वजनिक धर्मको सांप्रदायिकता कहकर उसके ऊपर कुठाराघात किया जा रहा है, उसके माननेवालोंको देशद्रोही तथा उन्नतिके शत्रु बताया जा रहा है, इसे हम कलिके प्रभावके अतिरिक्त और क्या कहें। "अधर्मं धर्ममिति वा मन्यन्ते तमसावृताः"।

इधर ६ वर्ष में "भागवती कथा" के लेखन कार्यमें ही लगा रहा। भागवतदर्शनके अन्तर्गत भागवती कथाके ६० भाग पूरे हो गये और कथा भाग प्रायः समाप्त हो गया तो कुछ घूमने घामनेकी इच्छा हुई। मानवस्वभाव कुछ परिवर्तन चाहता है। एक ही परिस्थितिमें रहते रहते ऊब-सी होने लगती है। कार्यके अनन्तर कुछ अवकाश, कुछ विश्राम भी चाहिये। इसीलिये परदेशोंमें कार्य करनेवाले पर्व त्योहारोंपर अपने अपने घर हैं। घरोंमें रहनेवाले अवकाशके दिनोंमें पर्वतोंपर पर्यटन चले जाते हैं, अपने इष्ट मित्र, सगे सम्बन्धियोंसे मिलने

जाते हैं। जलवायुका परिवर्तन हो जाता है, भोजन भी सुन्दर स्वादिष्ट मिल जाता है, कार्यसे भी कुछ दिनको अवकाश मिल जाता है, खेल कूद, हँसी विनोद पर्यटन, मन बहलाव आदिकी सामग्री भी प्रचुर मात्रामें मिल जाती है। कुछ दिन मन बहलाकर फिर अपने कामपर आ जाते हैं, फिर नवशक्ति नूतन उत्साह लेकर अपने कार्यमें जुट जाते हैं। कुछ ऐसे भी होते हैं जिन्हें कभी अवकाशकी अपेक्षा ही नहीं। निरन्तर—मरणपर्यन्त-अपने कार्यमें समानभावसे जुटे रहते हैं। वे मानुष नहीं अति मानुष हैं या मनुष्येतर। साधारण मनुष्य कुछ अवकाशका इच्छुक रहता है।

मैंने छै वर्षका ही निश्चय किया था। मेरा अनुमान था छै वर्षमें भागवतदर्शन पूरा लिख जायगा। सब ५०। ६० खण्डोंमें ही पूर्ण ग्रन्थके समाप्त होनेका अनुमान था। सो ६० खण्डोंमें तो केवल कथाभाग भागवती कथा-ही समाप्त हुई। अब स्तुति भाग, दर्शनभाग, इतिहासभाग, वेदवेदांगभाग, भूगोल, खगोल' कर्म, उपासना, ज्ञान, स्वर्ग, नरक आदि विविध विषयोंके ऊपर पड़ेगा। इस शास्त्र सागरका कहीं अन्त नहीं, अवसान नहीं, पार नहीं, ओर छोर नहीं। केवल व्याकरण शास्त्रके लिये ही कहा गया है—"ब्रह्मादयोऽपि यस्यान्तं न ययुः शब्दवारिधेः" अर्थात् इस व्याकरण जैसे तो अनंत शास्त्र हैं। बहुतसी न पासके। फिर व्याकरण जैसे तो अनंत शास्त्र हैं। बहुतसी विद्यायें हैं। समय थोड़ा है, जीवन क्षणभंगुर है, पता नहीं कब जीवात्मा इस शरीरसे पृथक् हो जाय। फिर संसारमें नित्य नये विघ्न आते हैं। ऐसी अप्रत्याशित उलझनें आ जाती हैं, जिनका क्षण भर पहिले किसी प्रकारका अनुमान ही नहीं होता। इन सब कारणोंसे शास्त्रकारोंने कहा है—"यत् सार भूतं तदुपासनीयम्" शास्त्रोंमें जो सार सार वस्तु हो उसीको ग्रहण करना

चाहिये। भगवान् व्यासदेवका ही उपवन अनन्त और गहन है उसमें असंख्यों बहु मूल्य सुमन हैं। भाग्यका मारा प्रभुदत्त उस उपवनमें-अपनी वासनाकी पूर्तिके लिये—घुस गया है। अब वह जिस पुष्पको भी देखता है उसे ही चुनना चाहता है। पात्र उसका छोटा है, मर्त्यधर्मा होनेसे समयका भी उसे अभाव है। सुमन लोभी होनेसे छोड़नेको भी चित्त चाहता नहीं। यही सब उलझनें हैं। पुत्रेष्णा, लोकेष्णा तथा वित्तेषणा ये तीनों तो ऐसी हैं कि छोड़ी भी जा सकती हैं, किन्तु इन तीनोंसे भी शास्त्रेष्णा अत्यंत कठिन है, इसीलिये वेदान्तके जिज्ञासुको सचेत करते हुए गुरु उपदेश देते हैं—"हे पुत्र! यह शास्त्रजाल एक बड़ा भारी अरण्य है तू इसमें प्रवेश मतकर। जहाँ तू इसमें अधिक घुसा कि भटक जायगा।" अब मुझे तो किसीने भटका दिया है, मेरी वासनाने कहो, मेरे कर्मोंने कहो या दैवने कहो। जब वही हाथ पकड़कर निकालेगा तो निकल सकता हूँ। अभी तो किसी प्रवल शक्तिसे बढ़ता ही जाता हूँ बढ़ता ही जाता हूँ, इस दिव्याति दिव्य उपवनका ओर छोर नहीं। अरे मैं तो भूल गया। अवकाशकी बात कहते कहते कहाँ बहक गया।

हाँ, वो इसी आषाढ़ी पूर्णिमाको छै वर्ष हुए श्रावण कृष्णा पंचमीको यहाँसे प्रस्थान किया। सब प्रथम नैमिषारण्य गये प्रथम नैमिषारण्य ही क्यों गये जी? इसीलिये कि सर्व प्रथम सूतजीने यहीं शौनकादि अठासी सहस्र मुनियोंको श्रीमद्—भागवतकी कथा सुनायी, पूरी भागवतमें असंख्यों वार आता है—"सूतजी कहते हैं—"मुनियो।" सो उन सूत और मुनियोंके स्थानमें जाकर उनके ही लिखाये हुए "भागवत चरित" का सप्ताह सुना आवें, अपनी भागवतको ब्रजभाषामें सुनकर सूतजी तथा शौनकादि सभी मुनि प्रसन्न होंगे। नैमिषारण्यमें भगवती गोमतीके तटपर घोर वनमें एक "व्यासगादी" है। इसी व्यास-

गादीपर बैठकर सूतजी मुनियोंको कथा सुनाते थे। बड़ा ही शान्त एकान्त रमणीक स्थान है विशाल वटवृक्ष है, । मनु शतरूपाने यहीं तप किया था उनकी समाधि भी है । एक छोटासा मंदिर है विशाल वट वृक्षसे उस आश्रमकी शोभा अनुपम हो गयी है। सघन विशाल वट वृक्षके नीचे अखण्ड कीर्तन हुआ और मंदिरमें भागवतचरितका सप्ताह। वहाँसे पहुँचे श्री वृन्दावन धाम में।

वृन्दावन क्यों पहुँचे जी ? अरे, भाई भागवतमें वृन्दावन विहारीकी ही लीलाओंका तो वर्णन है। अपना चरित्र सुनकर सभीको प्रसन्नता होती है। वृन्दावन विहारी ही तो इसके प्रधान नायक हैं। अतः वेदान्ताचार्य स्वामी चक्रपाणिजीके आश्रममें भागवत चरितका सप्ताह करके गये गोवर्धनकी तलहटीमें- गोपी स्थल कुसुम सरोवर पर।

"कुसुम सरोवर पर क्या है जी ?" कुसुम सरोवर वह स्थल है जहाँ गोपिकायें आकर श्रीकृष्णसे मिलती थीं जहाँ रास विलास होता था। जहाँ उद्धवजी अब तक गोपिकाओंकी चरण-धूलिके लोभसे गुल्मलताके रूपमें निवास करते हैं। रासेश्वरी श्रीवृषभानु नन्दिनीकी यह अत्यन्त ही प्रिय क्रीड़ास्थली है। इस स्थानका नाम है रस वृन्दावन, अतः प्रियाजीकी प्रसन्नताके निमित्त यहाँ भी सप्ताह पाठ हुआ । गोवर्धन पूजा छप्पन भोग हुए । यहाँसे गये नन्दगाँव बरसाने जो प्रिया प्रियतमके निवास स्थल हैं। जन्माष्टमी नन्दगाँवमें ही हुई। यहाँसे देहली मुजफ्फरनगर होते हुए गंगातट शुकाश्रमपर पहुँचे जहाँ भगवान् शुकदेवने महाराज परीक्षितको श्रीमद्भागवतका सप्ताह सुनाया था। यहाँसे हरिद्वार, ऋषीकेश, देवप्रयाग, रुद्र-प्रयाग, कर्णप्रयाग, नन्दप्रयाग, विष्णुप्रयागोंमें स्नान करते हुए श्रीबद्रीनाथधाममें पहुँचे जहाँ व्यास भगवान्ने समस्त पुराणोंको

चनाया है । जहाँ सर्व प्रथम श्रीमद्भागवत लिखी गयी है। भगवान् बद्रीनाथने अबके अत्यन्त प्यार किया । उनको "भागवत्-चरित" सुनाया । वहाँसे लौटकर फिर शुकाश्रम आये तीस घण्टेमें श्रीशुकदेवजीको "भागवतचरित" सुनाकर देहली होकर पूरे तीन महीनेमें फिर तीर्थराजप्रयागमें लौट आये यही यात्राकी संक्षिप्त तालिका है।

"आपने तो सूची सुनादी, कुछ विशेष बात सुनाओ, तुमने कहाँ कहाँ क्या क्या देखा ?" भागवतीकथाकी भूमिकाके संकुचित स्थलमें इस इतने बड़े प्रश्नका उत्तर दिया ही कैसे जा सकता है। देखा बहुत कुछ और फिर उसका वर्णन और भी विस्तारसे किया जा सकता है, किन्तु स्थान संकोच तथा अन्य भी कई संकोचोंके कारण इन सबका विस्तृत विवेचन न करूँगा।

अनुभव ऐसा किया कि हममेंसे सद्गुण सहानुभूति आदि मानवीय गुण दिनों दिन निकलते जा रहे हैं, उनके स्थानमें स्वार्थ-परता, विषय तृष्णा आदि दुर्गुण बढ़ते जा रहे हैं। हम सोचते तो यह हैं, कि हम उन्नति कर रहेहैं, किन्तु वास्तवमें अधिकाधिक अवनतिकी ओर अग्रसर हो रहे हैं। हम जिस क्षेत्रमें भी जाते हैं, वहीं दम्भ हमारा पीछा करता जाता है । दम्भकी एक कथा है।

ब्रह्माजीके दो पुत्र हुए। एक धर्म दूसरा अधर्म ।धर्म हृदयसे हुआ, अधर्म पीठसे हुआ । दोनों की ही सन्तति बढ़ी। अधर्मका विवाह मृषा (असत्यता) के साथ हुआ । उस मृषाके गर्भसे ही दम्भ नामक पुत्र हुआ । अधर्मने सोचा—"मैं अपने पूज्य पिता भगवान् ब्रह्माजीके चरणोंमें जाकर अपने इस पुत्रको डाल दूं। वे अपने पौत्रका मुख देखकर प्रसन्न होंगे और इसे आशीर्वाद देंगे ।" यही सब सोचकर अधर्मजी अपने पुत्र मृषा-नन्दन दम्भजीको लेकर ब्रह्माजीकी सभामें गये।

अधर्मने जाकर पहिले लोकपितामह भगवान् ब्रह्माजीको प्रणाम किया और अपने पुत्र दम्भसे भी प्रणाम करनेको कहा। दम्भने दूरसे ही हाथ जोड़ दिये। ब्रह्माजी पौत्रका मुख देखकर प्रसन्न हुए। उन्होंने अत्यन्त स्नेहसे ब्रह्मचारी बने दम्भसे पुचकारकर कहा "आ बेटा! मेरी गोदमें बैठ।"

दम्भने तुरन्त कुशा हाथमें ली। कमंडलु से जल निकाला और ब्रह्माजीकी गोदमें जल छिड़ककर मंत्र पढ़ने लगा—

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपिवा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरशुचिः॥

इस प्रकार ब्रह्माजीकीगोदको जलसे छिड़ककर-मंत्रसे पवित्र करके तब बैठा। यह देखकर ब्रह्माजी खिल खिलाकर हँस पड़े और बोले—"वाह! बेटे! तू संसारमें अवश्य विजयी होगा। जगत्को पवित्र करने वाली मेरी गोदको भी तू पवित्र करके बैठा।"

आज दम्भने सभा क्षेत्रोंमें सभी संस्थाओंमें सभी व्यक्तिओंमें अपना आसन जमा लिया है। पाठक यह न सोचें कि मैं उनसे कम हूँ, मैं औरोंसे दो हाथ बढ़कर हूँ। आज जहाँ देखो तहाँ बातें तो बड़ी लम्बी लम्बी हैं कर्तव्य कुछ नहीं हैं। वर्षातमें मेढ़कोंकी बाढ़ आ जाती है वैसे ही आज अखिल भारत वर्षीय संस्थाओंकी बाढ़ आ गयी है। उनमें और चाहें कुछ न होता हो कागदी घोड़े दौड़ते रहते हैं। समाचार पत्रोंका व्यसन ऐसा बढ़ गया है, कि देहली में प्रातः चार बजे ही नित्य समाचार पत्र बेचने वाले हमारी निद्राभंग करते थे। सत्संगभवन बनानेको आज सब तैयार हैं, किन्तु सत्संग करने वाले नहीं। जो करते भी हैं, उसे सत्संग कहनेमें लज्जा लगती है। एक सत्संगी दूसरे सत्संगियों से जलते हैं बात बात पर लड़ते हैं, उन्हें नीचा दिखानेके विविध उपाय करते हैं। जिसका अधिक ठाट हो, जिसके यहाँ अधिक चमक दमक हो, अधिक उज्वल कपड़े और उज्वल

चमड़ी वाले आते हैं दस बीस हवा गाड़ी खड़ी रहती हों, वही सबसे बड़ा महात्मा सिद्ध माना जाता है। जिन छोटी छोटी बातोंपर साधारण गृहस्थी भी न लड़ते होंगे उनके ऊपर ये सत्संग वाले लड़ते हैं और उनसे कोई पूछता है—तो दोनों ही अपनी हठको सिद्ध करनेका प्रयत्न करते हैं, भाँति भाँतिके तर्क देते हैं। अपने अधिकारका प्रश्न बताते हैं और अधिकारके लिये मर मिटनेको कहते हैं।" वास्तवमें दुःख तथा अशान्तिके दो ही कारण हैं। विषय भोगोंकी अधिकतृष्णा और अधिकार प्राप्त करनेकी भावना। इसी प्रकार सुख के भी दो ही कारण हैं सन्तोष और अधिकारका परित्याग। जब तक मनुष्य यथा लाभमें संतुष्ट न रहेगा और अपने अधिकारोंका प्रसन्नता पूर्वक परित्याग न करेगा, तब तक उसे वास्तविक शान्ति नहीं। किन्तु आज हम देख रहे हैं, लोग स्वयं तो अशान्त हैं ही दूसरोंकी शान्ति भंग करनेका सतत प्रयत्न करते रहते हैं। दूसरोंको तो त्यागका उपदेश देंगे। स्वयं छोटी छोटी बातोंके लिये लड़ेंगे, तनिकसे लोभके लिये अड़ जायँगे। परस्परमें जो प्रेम सहानुभूति होती थी, वह अब कहीं दिखायी ही नहीं देती। पहिले लोग किस प्रकार हृदय खोलकर मिलते थे, कितना प्रेम प्रदर्शित करते थे। अब बोलमें, चालमें, मिलनेमें, आचारमें, व्यवहारमें सर्वत्र बनावट आ गयी है। समाजमें, साहित्यमें, राजनीतिमें, कलामें, व्यापारमें धर्ममें कर्ममें सबमें स्वार्थपरताने अड्डा जमा लिया है। जो स्वयं आचरण नहीं करते वे दूसरोंको उपदेश देते हैं, जिनको दीक्षा देनेका अधिकार नहीं, उन्होंने दीक्षा देनेकी दुकान खोल रखी है। जो चाहो उनसे दीक्षा ले जाओ, जिसका चाहो मन्त्र ले जाओ। कोई विचार नहीं, पूछ नहीं, ताछ नहीं।

किसी एक व्यक्तिने किसी सन्यासीसे पूछा—"सन्यासीको तो गृहस्थियोंको मन्त्र दीक्षा देना निषेध है। गृहस्थियोंको दीक्षा देने-

वाले तथा लेने वाले दोनों ही नरकमें पड़ते हैं। शास्त्रोंमें अनेक स्थानपर इसका निषेध है। फिर आप मंत्र दीक्षा क्यों देते हैं?"

इसपर उन्होंने हँसकर कहा—"हाँ भाई! सत्य है। हम भी जानते हैं सन्यासीके लिये यह उपाधि ही है; किन्तु भैया विना मन्त्र दिये लोग फँसते नहीं। यों मन्त्र देनेसे लोग बँध जाते हैं। ऐसे न बाँधे तो काम कैसे चले।" इससे यही सिद्ध हुआ कि हमें दूसरोंकी चिन्ता नहीं। दूसरे चाहें भाड़में जायँ हमें तो अपना उल्लू सीधा करना है। दूसरे नरक जायँ चाहे स्वर्ग। हमारे लोग पैर पूजें, हमें चन्दन माला चढ़ावें, हमारी जय बोलें, हमारा मठ, मन्दिर आश्रम बने। कथा वार्ता कहकर उपदेश देकर लोगोंको फँसाये रखें, स्वयं उनपर आचरण न करें। इसका परिणाम यह होता है, कि यहाँ तो हमारी दुकानदारी चल जाती है, किन्तु अन्तमें नरककी यातनायें झेलनी पड़ती हैं। स्कन्दपुराणमें इस विषयकी एक बड़ी सुन्दर कहानी है—

एक नन्दभद्र नामके परम धार्मिक वैश्य थे। वे नित्य नियमसे शिवजीकी पूजा किया करते थे। वे बड़े धर्मात्मा, इन्द्रियजित त्यागी, सन्तोषी, सरल तथा स्वधर्म निष्ठ थे। आजीविकाके लिये वे अपने स्वधर्म का ही पालन करते। अर्थात् वाणिज्य करके ही अपना काम चलाते बहुत ही न्यून-नाममात्रको-वे लाभ लेते। सदा दूसरोंके उपकारमें ही लगे रहते। जो भी कर्म करते निष्काम भावसे प्रभु प्रीत्यर्थ ही करते। वे जैसे धर्मात्मा थे वैसी ही उनकी धर्मपरायणा सती साध्वी कनका नामकी धर्मपत्नी थी। वह अपने पति को परमेश्वर मानकर पूजती और सदा उनकी आज्ञामें रहती। किन्तु उनके कोई सन्तान नहीं थी। इसका भी उन्हें कोई दुख नहीं था, वे सोचते थे हमारे भाग्यमें यही बदा होगा।

वृद्धावस्था में आकर नन्दभद्र के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। कुछ काल जीवित रहकर वह लड़का मर गया। इसके कुछ काल पश्चात् उनकी सहधर्मिणी भी चल बसी। यद्यपि नन्दभद्र बड़े धैर्यवान् तथा विवेकी थे, किन्तु पत्नी के परलोक गमन से उन्हें दुःख हुआ। गृहस्थाश्रम की जड़ तो धर्मपत्नी ही है। गृहिणी के बिना गृह कैसा। संसार में गृहस्थधर्मावलम्बी पुरुषों के लिये गृहिणी से बढ़कर कोई साथी नहीं, सहायक नहीं, मित्र नहीं, सुख देने वाला तथा प्रेम करने वाला नहीं। बहुत से लोग आकर नन्दभद्र के दुख में समवेदना प्रकट करने लगे।

उनका एक सत्यव्रत नामक पड़ौसी शूद्र था। नाम तो उसका सत्यव्रत था, किन्तु था वह बड़ा धूर्त, दुराचारी तथा नास्तिक। वह नन्दभद्र की इतनी प्रतिष्ठा तथा प्रशंसा सुनकर सदा मन ही मन जलता रहता। उसे उनकी शिवपूजा, सत्यनारायण, समता सुशीलता आदि बातें अच्छी नहीं लगती थीं, वह चाहता था नन्दभद्र मेरी ही भाँति नास्तिक हो जाय, किन्तु उसे उनसे कहने का कभी साहस नहीं होता था। अब जब उन पर विपत्ति के ऊपर विपत्ति आईं तो सत्यव्रत को अवसर मिल गया। वह सहानुभूति प्रकट करने नन्दभद्र के समीप गया और इधर उधर की बातें बनाकर बोला—"नन्दभद्रजी ! मैं बहुत दिनों से आप से एक बात कहना चाहता था, किन्तु आपको दुख न हो इससे कह न सका। आज जब अवसर आ गया, तो मेरी कहने की इच्छा है, आप आज्ञा करें तो मैं कहूँ ?"

नन्दभद्रजी ने कहा—"कहो भाई ! ऐसी कौन-सी बात है, जिसे तुम इतने दिनों तक छिपाये रहे।"

सत्यव्रत ने कहा—"देखिये, आप जो इस पत्थर को महादेव मानकर पूजते हैं, समस्त अनर्थ का हेतु तो यही कार्य है। पत्थर पूजते पूजते आपकी बुद्धि पर भी पत्थर पड़ गये हैं, इस व्यर्थ के

कर्म से लाभ क्या ? यदि इस पत्थर में कुछ भी शक्ति होती तो आप सन्तान हीन क्यों रहते ? जैसे तैसे वृद्धावस्था में आपके एक पुत्र हुआ वह भी पैदा होते ही मर गया। आपकी धर्मपत्नी कितनी अच्छी थी वह भी चल बसी बुरे कर्मों का बुरा ही फल होता है। देवता, पितर, ईश्वर फीश्वर कुछ नहीं। यह तो स्वार्थी ब्राह्मणों की मन गढ़न्त है। देवता के नाम से चढ़ावा चढ़वाते हैं अपना स्वार्थ साधते हैं। पितरों के नाम से खीर पूड़ी बनवाते हैं, अपनी तोंद में भरते हैं। आप ही सोचो—मरा आदमी कभी खाने आ सकता है। ईश्वर के नाम पर कितने पाप करते हैं। लोग कहते हैं इस जगत् को ईश्वर ने बनाया। संसार में सब कार्य स्वभाव वश हो रहे हैं। इसमें ईश्वर की क्या आवश्यकता है। ये सब मिथ्या बातें हैं, धूर्तों ने अपने स्वार्थ के लिए ऐसी अंट संट बातें बना रखी हैं। आप मेरी बात मानों इस पूजा पाठ को छोड़ो। प्रेम से खाओ पीओ भोग भोगो। यही तो संसार में सार है,परलोक फरलोक कुछ नहीं, जो भी कुछ है सब यहीं है।"

सत्यव्रत की ऐसी बात सुनकर नन्दभद्र हँस पड़े। उसकी इन नास्तिकता पूर्ण बातों का उन पर रञ्चक मात्र भी प्रभाव नहीं पड़ा। वे बड़े धैर्य के साथ हँसते हुए बोले—"बन्धुवर ! आपका कहना युक्ति संगत नहीं। यदि धर्म करने से ही मेरी पत्नी तथा पुत्र की मृत्यु हुई, तो जो नित्य अधर्म करते हैं, सदा खाने पीने और भोग भोगने में ही लगे रहते हैं, उन पर कोई विपत्ति न आनी चाहिये, किन्तु हम देखते हैं ऐसे लोगों पर भी विपत्तियाँ आती हैं उनके भी पुत्र मरते हैं, वे लोग तो अत्यन्त अधीर हो उठते हैं, मैं तो भगवान् की पूजा के प्रभाव से उतना अधीर नहीं हुआ हूँ। भैया ! मरना जीना यह सब प्रारब्ध वश है। तुम कहते हो यह संसार स्वभाव से ही चल रहा है। स्वभाव को भी कोई नियन्त्रण करने वाला चाहिये। कोई जड़यन्त्र हैं जब तक उसका

कोई परिचालक न होगा वह चलेगा कैसे। यदि चलना उसका स्वभाव ही मान लें तो फिर वह कभी रुकेगा नहीं चलता ही रहेगा। स्वभाव से भोजन तो नहीं बन जाता। उसे कोई न कोई बनाने वाला चाहिये। तुम ये बातें नास्तिकता की कर रहे हो। मेरे तो शिव जी ही इष्ट हैं सर्वस्व हैं, उनके पूजन से ही मेरा कल्याण होगा। आप अपने ज्ञान को अपने पास ही रखिये, मुझे आपके उपदेश की आवश्यकता नहीं।" इतना कहकर नन्दभद्र चुप हो गये सत्यव्रत भी अपना-सा मुख लेकर अपने घर चला गया।

नन्दभद्र की पत्नी मर चुकी थी, उन्हें संसार से वैराग्य हो गया था। उन्हें संसार की गति जानने की अभिलाषा हुई। यह संसार कैसा चलता है। यदि यह संसार सच्चिदानन्द सदाशिव से ही बना है, तो चैतन्य से तो चैतन्य ही वस्तु बननी चाहिये उनसे यह जड़-जगत् कैसे बना।" ऐसी जिज्ञासा होने पर नन्दभद्र अपना घर छोड़कर बहूदक तीर्थ के समीप चले गये वहाँ कॉपलेश्वर नामक एक शिवजी थे। उनकी पूजा करके वे अपनी शंकाओं के समाधान के लिये वहीं खड़े रहे। चार दिनों तक वे इसी प्रकार शिवजी का चिन्तन करते रहे। न तो उन्होंने कुछ खाया पीया ही और न वे बैठे ही।

चौथे दिन वहाँ पर एक अत्यन्त दुबला पतला सात वर्ष का बालक आया। उसके सम्पूर्ण अंग में गलित कुष्ट था, वह [illegible] कष्ट से चलता था, चलते चलते उसे मूर्छा भी आ जाती थी। नन्दभद्र को वहाँ इस प्रकार बिना खाये पीये खड़े देखकर [illegible] पूछा—"महानुभाव, आप कौन हैं, क्यों इतने अधीर [illegible]

नन्दभद्र ने कहा—"बालक! मेरे एक वृद्धावस्था [illegible] था, वह मर गया मेरी पत्नी भी मर गयी। मेरे मन [illegible] या है। यह संसार कैसे हुआ, इसमें प्राणी इतना [illegible]

बालकने कहा—"मिथ्या विषयोंमें फँसकर [illegible]

नन्दभद्र ने पूछा—"इस दुःख से छूटने का कोई उपाय भी है ?"

बालक ने कहा—"उपाय क्यों नहीं है। अवश्य है। इसका एकमात्र उपाय है, कि चित्त को किसी सांसारिक वस्तु में आसक्त न होने दे। मन किसी स्त्री में या स्त्री का मन किस पुरुष के रूप में फँस जाय, तो विवेक से काम ले। सोचे इसमें प्रियता की कौन वस्तु है। मुख लाल है तो प्रियता हड्डी, मांस, रक्त, थूक, खकार, दाँत या चर्म में है या ललाई में। इस प्रकार सबका विवेचन करे। इस प्रकार जो आसक्ति का त्याग कर देता है वह वैरभाव से रहित हो जाता है, उसकी विषमता नष्ट हो जाती है, सर्वत्र उसका समभाव हो जाता है। फिर वह विषयों की सामग्रियों को जोड़ जोड़कर अपने समीप भी नहीं रखता। जो मिल जाता है उसीमें सन्तुष्ट रहता है। इस प्रकार के अनासक्त, त्यागी, निर्वैर तथा निष्परिग्रह पुरुष कभी दुखी नहीं होते। इसलिये अधिक किसी में स्नेह या आसक्ति न करनी चाहिये। विषयों की तृष्णा ही बन्धन का हेतु है।'

नन्दभद्र ने पूछा—"बालक! तुम हो तो बहुत छोटे किन्तु बात बड़ों की-सी करते हो। अच्छा यह बताओ हमने ऐसे पापी पुरुषों को देखा है, जो सदा पाप करते रहते हैं, किन्तु उनके धन भी है, संतानें भी हैं, सुखोपभोग की सामग्री भी हैं। इसमें विपरीत बहुत से ऐसे लोग भी देखे गये हैं जो सदा पुण्य कर्म करते रहते हैं, किन्तु उन पर खाने को अन्न नहीं युवक पुत्र मर जाते हैं तथा भाँति भाँति की विपत्ति सहते हैं। पाप का फल दुख होना चाहिये और पुण्य का सुख किन्तु विपरीत क्यों दिखाई देता है ?"

बालक ने कहा—"श्रेष्ठिप्रवर! शुभ अशुभ कैसे भी कर्म क्यों न किये जायँ, कर्मों का फल अवश्य ही मिलता है। संसार में चार प्रकार के मनुष्य होते हैं—

१—एक तो वे जिनको इस लोक में तो सुख होता है किन्तु परलोक में दुख मिलता है।

२—दूसरे वे लोग हैं, जिन्हें इस लोकमें दुख मिलता है, किन्तु परलोक में सुख मिलता है।

३—तीसरे वे लोग हैं जिन्हें इस लोकमें भी सुख प्राप्त होता है और परलोक में भी सुख होता है।

४—चौथे वे लोग हैं, जिन्हें न इस लोकमें सुख होता है न परलोकमें।"

नन्दभद्रने पूछा—"ऐसा क्यों होता है, हम कैसे अनुमान लगालें कि जिसे इस लोकमें सुख नहीं उसे परलोकमें सुख होगा अथवा जो इस लोकमें सुखी है उसे परलोक मे दुख होगा।"

बालक बोला—"जिन्होंने पूर्वजन्ममें दान आदि शुभ कर्म किये हैं, किन्तु उन्हें तमोगुणी भावसे किया है, तो दानके प्रभाव–से तो उन्हें संसारी सुखोपभोग प्राप्त होते हैं, किन्तु तमोगुणके प्रभावसे इस जन्ममें उनकी धर्ममें रुचि नहीं होती। पूर्वजन्मकृत पुण्योंका उपभोग करते हैं, किन्तु आगेके लिये सुकृत नहीं करते। वे इस लोकमें तो सुखी-से दीखते हैं, किन्तु परलोकमें उन्हें दुःख ही मिलता है।

दूसरे वे हैं, जिन्होंने पहिले कोई बहुत दान पुण्यादि सत्कर्म नहीं किये हैं, किन्तु बहुत पाप भी नहीं किये हैं। सत्कर्म न करनेसे उन्हें इस लोकमें संसारी भोग प्राप्त नहीं होते, बड़े कष्टसे उनकी संसारयात्रा चलती है, किन्तु सद्भावनाके प्रभावसे उनकी मति सदा जप, तप आदि पुण्यकर्मों में लगी रहती है, निरन्तर वे धर्मका आचरण करते रहते हैं। उनका यह लोक तो दुःखमय बीतता है, किन्तु परलोकमें वे अनन्त सुख भोगते हैं। जो दरिद्री होकर भी सदा सत्कर्मों में लगे रहें, उन्हें समझना चाहिये इनका परलोक सुखमय होगा।

तीसरे जिन्होंने पूर्वजन्ममें भी अच्छे कर्म किये हैं और इस जन्ममें भी निरन्तर अच्छे ही कर्म करते रहते हैं। धन धान्य, पुत्र परिवार, मानप्रतिष्ठा होनेपर भी कभी अहंकार नहीं करते, साधु संत गुरुजनोंका आदर करते हैं यथा शक्ति दान धर्म, व्रत उपवास करते ही रहते हैं उनका यह लोक भी सुखमय बीतता है और परलोकमें भी जाकर अक्षय सुख भोग करते हैं।

चौथे वे होते हैं जिन्होंने न पहिले ही सुकृत किये हैं, सदा पापकर्ममें रत होनेसे दरिद्री, क्रूर, हिंसक ईर्ष्यालु हुए हैं, वे इस-लोकमें भी दाने दानेके लिये तड़पते रहते हैं, शरीरमें भाँति भाँतिके रोग होते हैं और परलोकमें भी जाकर नरककी यातनायें सहते हैं। महात्मन्! सब प्राणी कर्मोंके अधिन हैं, हमें दुःख सुख पूर्वजन्म कृत पापोंसे ही प्राप्त होते हैं। इसलिये वर्तमान सुख दुखकी ओर ध्यान न देकर सदा भगवन्नाम कीर्तन भगवत्पूजा और भगवान्के स्मरण भजनमें लगे रहना चाहिये। अति दुर्लभ मनुष तन पाकर एक क्षण भी व्यर्थ न बिताना चाहिये। मनुष्य शरीर बड़ा दुर्लभ है इसीसे साधन भजन होता है। मनुष्य ही नरकमें जाता है वही स्वर्ग भी प्राप्त कर सकता है। यही कर्मयोनि है' शेष सब भोगयोनि हैं।

नन्दभद्रने पूछा—"बालक! प्रतीत होता है तुम सर्वज्ञ हो। अच्छा बताओ तुम कौन हो? तुम्हें यह कष्ट क्यों मिल रहा है, किस पापके कारण तुम्हारे सम्पूर्ण शरीरमें गलित कुष्ट हुआ?"

इस पर बालक बोला—"श्रेष्ठिप्रवर! यह सब भी मैं अपने कृत कुकर्मोंका फल भोग रहा हूँ। महात्मन्! मेरी बड़ी लम्बी कथा है, मैं अपने आठ जन्मोंकी कथा आपको सुनाऊँगा, इस जन्मसे पूर्व आठवें जन्ममें मैं विदिशा नगरीमें एक बड़ा ही प्रसिद्ध पंडित था, ब्राह्मण कुलमें मेरा जन्म हुआ था। मैं समस्त वेद तथा वेदाङ्गोंका तत्वज्ञ था, धर्म शास्त्रज्ञोंमें मैं सर्वश्रेष्ठ समझा

जाता था, मेरी वक्तृत्व शक्तिकी सर्वत्र-धाक थी। धर्मशास्त्र, इतिहास तथा पुराणोंके मैं प्रसिद्ध व्याख्याता था। लोग मेरे व्याख्यानको सुनते और मुग्ध हो जाते। इतना सब होने पर भी मेरा निजी आचरण अत्यन्त निन्द्य था। लोगोंको तो मैं धर्मका उपदेश देता किन्तु स्वयं अधर्मका आचरण करता, सबसे सदाचार पालन करनेको कहता किन्तु स्वयं दुराचार करता। मैं मांस भक्षण करता, मदिरापान करता, परस्त्री गमन करता कहाँ तक कहूँ असत्य, दम्भ, पाखंड, कपट, लोभ, दुष्टता, शठता सभीमें मैं निपुण था। मैं धर्मका जाल बिछाकर लोगोंको ठगता था इसी लिये विद्वानोंने मेरा नाम धर्मजालिक रख दिया था। लोगों को उपदेश देकर मैंने धन बटोरा साथ ही पाप भी बटोरा। मैं उपदेश तो भगवान् व्यासजीके शास्त्रोंका करता, किन्तु मेरी दृष्टि धनकी ओर लगी रहती। भोली भाली स्त्रियोंको फँसाकर उनसे प्रेमकी मीठी मीठी बातें करके उनके छिपे धनको ले लेता और पीछे उनके धर्मको भी नष्ट करता आयु शेष होने पर अन्त में भयंकर यमदूत मुझे पकड़ लेगये और उन्होंने मुझे अत्यन्त वीभत्स कूटशामलि नामक नरक में डाला। वहाँ मुझे वे यमदूत मेरे पूर्व पापों को स्मरण कराकर भयंकर दुःख देने लगे। कभी काँटोंमें घसीटते, कभी तालाबोंमें डुबाते, कभी तलवारोंसे मेरे टुकड़े टुकड़े कराये जाते, कभी कुत्तोंसे कटवाया जाता। यातना देह होनेसे मैं मरता नहीं था। महात्मन्! उस नरकके दुःखोंको एक क्षणके मैं प्रति क्षण तड़पता रहता और सोचता, हाय! मैंने तनिक से सुखके लिये इतने पाप कर्म क्यों किये। दूसरोंको ठगकर जो मैंने द्रव्य बटोरा, जो भवन बनवाये, उनके बनवाने में कितने कितने पाप किये। वे सब वहाँके वहीं रह गये, उस धनका कौन उपभोग करता होगा, कौन उन भवनोंमें रहता होगा। उनका पापही शेष रह गया। श्रेष्ठिन्!

नरकमें जैसा वैराग्य होता है ऐसा यदि यहाँ दो घड़ी हो जाय, तो कौन इस संसार चक्र से न छूट जायगा, जब नरक में यातना सहते सहते मेरे कुछ पाप शेष रह गये, तब मुझे नरक से मुक्त किया गया, कुछ दिन मैं वृक्षादि हुआ। फिर सरस्वती तटपर एक कीड़ा हुआ।

कीड़े की योनि में नाना कष्ट सहे। एक दिन मैंने रथ की घड़घड़ाहट सुनी, अपने प्राण बचानेको मैं मार्ग से भागा इतने में ही भगवान् व्यासने आकर कीड़ेकी भाषा में मुझे समझाया कि तू मरने से डरता क्यों है, इस कीड़ेकी देह में तुझे क्या सुख है।" मैंने कहा—"भगवन्! मैं इस लिये डरता हूँ, कि कहीं इसके भी खोटी योनि मुझे न मिले।"

व्यासजी ने कहा—"तू घबराये मत, जब तक तुझे ब्राह्मण योनि प्राप्त न होगी, तब तक मैं इसी प्रकार तुझे स्मरण कराता रहूँगा।" यह सुनकर मैंने मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया और उसी मार्गपर आकर लेट गया, वहाँ रथके पहियेके नीचे दबकर मर गया। फिर मैं कौआ, गीध आदि बहुत-सी योनियोंमें गया। कृपासागर भगवान् व्यास उन उन योनियों में जाकर उन उन योनियोंकी भाषा में मुझे उपदेश देते रहे। अन्तमें मुझे यह ब्राह्मण योनि मिली। इसमें भी मुझे बड़ा क्लेश है। जन्मते ही मेरे माता पिताने मुझे त्याग दिया। मेरे सम्पूर्ण शरीरमें गलित कुष्ट है। बाल्य कालमें ही कृपासागर भगवान् व्यासदेव ने मुझे सारस्वत मंत्र दे दिया था, उसके प्रभावसे मुझे समस्त वेदशास्त्र पुनः कंठस्थ हो गये। भगवान् वेदव्यासने ही मुझे आज्ञा दी है कि मही-सागर संगमके निकट बहूदक तीर्थमें नन्दभद्र चिन्तित हो रहा है मैं जाकर उसे उपदेश करूँ। व्यासजी की आज्ञासे ही मैं तुम्हारे संशयोंको छेदन करने आया हूँ।"

वैश्यप्रवर नन्दभद्रने कहा—"ब्राह्मण कुमार! तुम्हारे

चरित्रको सुनकर मेरे समस्त संशय दूर हो गये। धर्म में मेरी पूर्ववत् आस्था होगयी। अब मेरी चित्त स्वस्थ है। फिर भी मुझे एक शंका रह गयी आज्ञा हो तो पूछूँ।"

बालक ने कहा—"हाँ पूछिये। मैं आपके सभी प्रश्नों का यथामति उत्तर दूँगा।"

नन्दभद्रने पूछा—"ब्रह्मन्! आप ब्राह्मण थे समस्त वेद-शास्त्रोंका भी आपने अत्यन्त परिश्रम करके अध्ययन किया। ब्राह्मणका तो परम धर्म है वह दूसरोंको धर्मका उपदेश दिया करे। ब्राह्मण होकर आपने स्वधर्मका भी पालन किया। आप अपने उपदेशोंमें भगवान्का नाम भी लेते होंगे, भगवान् के गुणों का भी कीर्तन करते होंगे। भगवान्के नामोंको भाव से कुभाव से कैसे भी कोई लेता है उसका ही मङ्गल होता है। इन सब शुभ कर्मोंका तो कुछ भी फल नहीं हुआ और मांसभक्षण, मदिरापान, परस्त्री गमन इन पापोंका आपको इतना भारी फल भोगना पड़ा कि सहस्रों वर्षों तक आप नरकोंकी अग्नियोंमें पचते रहे, भाँति भाँतिके कष्ट सहते रहे। कीट पतंग ऐसी अधम योनियोंमें गये मनुष्य भी हुए तो कोढ़ी हुए। इससे तो हमें यही प्रतीत होता है कि स्वधर्म पालन व्यर्थ है। हाँ शूद्र होकर आप वेद शास्त्रोंका उपदेश देते, तब तो स्वधर्म च्युत समझे जाते। आपके शुभ कर्मों का क्या फल हुआ ?"

बालक बोला—"वैश्यवर! कर्मों का फल अवश्य ही भोगना होता है, चाहे कोई कैसा भी धर्मात्मा हो। यदि मैं केवल पाप ही करता रहता तो मुझे चौरासी लाख योनियों में नाना क्लेश सहने पड़ते, फिर पुनः पुनः नरकों से आता जाता रहता। किन्तु पापों के अतिरिक्त मुझसे पुण्यकर्म भी बन पड़े। ब्राह्मण जन्ममें मैंने सब लोगोंको जो नाना प्रकारके धर्मोंका उपदेश दिया था, उसीके प्रभाव से कीट जन्म में भी मुझे भगवान् व्यासजीका

संग प्राप्त हुआ। मैंने व्यासजीके ज्ञान जनता में प्रचार प्रसार किया था, इसी पर वे जगद्वन्द्य महामुनि मुझ पर प्रसन्न हुए। आठ जन्मों में वे आ आकर मुझे उपदेश देते रहे। अब इस जन्ममें भी उन्होंने मुझे उपदेश दिया है। यह सब ब्राह्मण होकर धर्मदान रूप पुण्यका तो फल ही है। पापोंकी अपेक्षा मेरे पुण्य अत्याधिक थे। नियम ऐसा होता है, जो न्यून होते हैं, पहिले उन्हीं का भोग करना होता है। पाप बहुत अधिक हों और पुण्य बहुत न्यून हों तो पहिले पुण्यों का स्वर्गादि फल भोगकर तब उन्हें नहुकादि यातनायें दी जाती हैं। मैंने जो वेदज्ञ ब्राह्मण होकर भी छिपकर इतने पाप किये थे उनका फल तो भोगना ही था। लाखों वर्षों तक नरकों में कीट पतंगादि योनियों मे मैंने भोगे। अब अगले जन्ममें मैं व्यासजीका शिष्य "मैत्रेय महामुनि" हूँगा, फिर मुझे जन्म न लेना पड़ेगा, मेरी मुक्ति हो जायगी। तुम वैश्य हो वर्णाश्रम धर्मका निष्काम पालन करते हुए शिवजीकी आराधाना करो और अपना पुनः विवाह करलो; तुम्हें इसी जन्ममें शिव सायुज्य प्राप्त हो जायगा।"

कथा बड़ी है नन्दभद्रने बालककी बहुत स्तुति की बालकने वहीं शरीर त्याग दिया। नन्दभद्रने उनके नामसे बालादित्य की स्थापना की, पुनः विवाह करके धर्मपूर्वक निष्कामकर्म करता रहा। अन्त में उसे शिव सायुज्य प्राप्त हुआ। फिर उस तीर्थका माहात्म्य है।

कहने का सारांश इतना ही है, कि हम यह चाहें कि आदमी हमारे पैर पूजते हैं, हम चाहें जो करें जैसा चाहें आचरण करें हमारा कुछ नहीं बिगड़ेगा।' यह हमारी भूल है। हम यहाँ लोगोंकी दृष्टिमें भले ही बड़े बने रहें। सर्वसाधारण से अपने पापोंको भले ही छिपा लें; किन्तु यमराज से यहाँ सबका लेखा है, चित्रगुप्तजी वही में सब अंकित है।

सुना ऐसा जाता है, कि कलियुगमें अधिकांश नरक से ही लौटे जीव उत्पन्न होते हैं उनकी पापकर्मोंमें स्वाभाविक ही रुचि होती है। दम्भका पुत्र है लोभ और लोभका पुत्र हुआ क्रोध तथा क्रोधका पुत्र है कलि।

जहाँ लोग दम्भ करते हैं वहीं लोभ आकर घेर लेता है, लोभी मनुष्य के स्वार्थ साधन में जो विघ्न करता है उसी पर क्रोध आता है। जहाँ क्रोध है वहाँ कलह होना अनिवार्य है।

अधर्मके वंश को हम कई बार बता चुके हैं। फिर भी बताते हैं, क्योंकि अधर्म वंशको बार बार सुनने पढ़ने से पुण्य बढ़ता है। ब्रह्माजी के पुत्र अधर्मकी मृषा नाम्नी पत्नी में दम्भ नामक पुत्र और माया नामकी पुत्री हुई। उन दोनों भाई बहनोंने परस्परमें ब्याह कर लिया उनके लोभ और निकृति दो सन्तानें हुईं। इन भाई बहिनों ने भी परस्पर में विवाह कर लिया। इन दोनों से क्रोध पुत्र और हिंसा पुत्री हुई। ये भी पति पत्नी बन गये। इनसे कलि और दुरुक्ति हुई, फिर इन दोनों के भय और मृत्यु तथा भय और मृत्यु से यातना और नरकों की उत्पत्ति हुई।

कलियुग आजकल उपदेशकों, सुधारकों, शासकों और नेताओंके यहाँ घुस गया है। क्योंकि गृहस्थी आपस में द्वेष करें तो दोनों वे ही कट मरेंगे, कलियुगका विशेष प्रचार न होगा। यदि उपदेशकों और नेताओंमें घुसेगा तो वे परस्पर में अपने अपने अनुयायी बनायेंगे। फिर वे एक दूसरे की बुराई करेंगे, दलबन्दी बनेगी, कलह हिंसा होगी लोग परमार्थ च्युत हो जायेंगे। एक दूसरे की निंदा में लगे रहेंगे। इसके उदाहरण इस यात्रा में अधिक देखे। उनका उल्लेख करना तो कलियुगको और बढ़ाना है। यह भी कलियुग का ही प्रभाव है

कि हम भगवत् चिन्तन छोड़कर ऐसी बातें सोचते और लिखते हैं, किन्तु जब सर्वत्र आग लग रही है तो उसके बीच में बैठे हम ही कैसे बच सकते हैं। हम कर्म तो सुख के लिये करते हैं, किन्तु उससे होता है दुःख ही। जहाँ स्वार्थ है, मेरा ही पेट भरे, मेरा ही नाम हो, मेरा ही पल्ला भारी रहे वहाँ सुख शान्ति नहीं होती वहाँ द्वेष तथा कलहका होना अनिवार्य है। धर्मकी आवश्यकता इसीलिये होती है। हमारे यहाँ करोड़ों ग्रन्थों का सार आधे श्लोकमें यही बताया है कि परोपकार करना पुण्य है, परपीड़न करना पाप है। आज परोपकारके नामसे परपीड़न हो रहा है इसीका नाम दम्भ है।

वेदोंमें एक बड़ी सुन्दर कथा आती है उससे पता चलता है सुख शान्तिका सुगम साधन कौन सा है।

एक दद्‌धाङ्गाथर्वण ऋषि थे। उन्होंने सभी मुख्य मुख्य महर्षियोंको एकत्रित किया। एक सभा हुई। उसमें इसी बात पर विचार हुआ कि "संसार में सुख शान्ति कैसे हो।" इस पर बहुत देर तक विवाद होता रहा। किसी ने कुछ कहा किसी ने कुछ कहा। इन्हीं सब बातों में मध्याह्न हो गया। भोजन का समय हो गया।

एक महर्षि हँसते हुए बोले—"भाई, भूख लगी है, पेट में कुछ पड़े भोजन मिले तब शान्ति हो।"

भोजन तो करना ही था। सभी आमने सामने पत्तलें परोस कर बैठे। जब सब सामग्री परस गयी, तब सब इसी प्रतीक्षा में थे कि अब हरिहर की ध्वनि लगे सब प्रसाद पावें। किन्तु मुनिने कहा—"अभी कोई ग्रास मुख में मत देना। सब रुक गये। मुनिने सबके हाथों में कोहनी से ऊपर एक एक लम्बी लकड़ी बाँध दी जिससे कोहनी मुड़ने न पावे। जब सबके लकड़ी बँध गयीं; तब मुनिने कहा—"अच्छा, अब

सब प्रसाद पाओ।"

सबने दाल भात सानकर ज्यों ही ग्रास मुखमें देना चाहा, कि कुहनी न मुड़नेसे हाथ ऊपर उठ गया, मुखमें ग्रास न जा सका सबने कहा—"हाथमें तो लकड़ी बँध रही है, मुखमें भोजन कैसे जाय। लकड़ी खोली जाय, तब भोजन हो।"

मुनिने कहा—"लकड़ी नहीं खोली जा सकती।"

सबने कहा—"तब भोजन भी नहीं हो सकता।"

मुनिने कहा—"जो भोजन नहीं करेगा, उसे दंड दिया जायगा। कोई उपाय सोचो लकड़ी खोले बिना भोजन हो जाय।"

तब मुनि उपाय सोचने लगे। सोचते सोचते उन्हें एक वेदका मंत्र स्मरण हो आया। उसका भाव यह था—तू मुझे दे मैं तुझे दूँ, तू मेरा कार्य कर मैं तेरा करूँ। तब मुनियोंने कहा —"भाई अपने अपने मुखमें न देकर दूसरोंके मुखमें ग्रास दो।"

आमाने सामने पंक्तियाँ बैठी थीं, उसने उसके मुखमें ग्रास दिया उसने उसके मुखमें। इस प्रकार सभिका पेट भर गया। सभीकी भूख निवृत्ति हो गयी।"

इस कहानीका सारांश यह हुआ कि जो हाथको स्वयं अपने मुखमें न मोड़कर ऊपर हाथ उठाता है—"दूसरोंके मुखमें देताहै। उसका पेट स्वतः भर जाता है।" आज हम सब अपने ही मुखमें डालना चाहते हैं। जो भी करते हैं निजी स्वार्थके वशीभूत होकर करते हैं। जो परोपकर और परोप... देश भी हम करते हैं, उसमें भी क्षुद्र स्वार्थ नि... है। इसीसे आज सर्वत्र अशांति है। सभी क्षेत्रोंमें छल, कपट, कलह तथा पाखंडका बोल बाला है।

पाठक यह न समझें कि मैं इससे पृथक् होऊँ, 'हो भी कैसे सकता हूँ'। ऋतुका प्रभाव तो सभी पर पड़ता है। इससे यह न समझा जाय कि मैं किसी व्यक्ति विशेषपर आक्षेप कर रहा हूँ, समयकी महिमा बता रहा हूँ, कि कैसा समय आ गया इन छः सात वर्षों में ही लोगोंके भावों में विचारों में, आचार विचार तथा व्यवहार में कितना परिवर्तन हो गया। अपने ही भाव कितने दूषित हो गये। जिन कार्यों को मैं सोच भी नहीं सकता था, वे विवश होकर—वनसनाके वशीभूत होकर—करने लगते हैं। समय का प्रभाव है, कोई करे भी तो क्या करे। इसलिये मैं तो जहाँ गया इसीका प्रभाव देखा। तीर्थों में, संस्थाओंमें व्यापारियोंमें, साधुसंतोंमें, सुधारकोंमें नेताओंमें, राष्ट्रमें सभीमें कलिका—कलहका—प्राबल्य है। लोग सुख शान्तिकी बड़ी बड़ी बातें बनते हैं, सुन्दरसे सुन्दर सुखोपभोगकी सामग्रियाँ जुटाते है, किन्तु वे उनके दुःखको और भी बढ़ती हैं। इसी यात्रामें बड़े घरोंमें गया। वे ऐसे सुन्दर बने हैं जैसे स्वर्गीय भवन। उनमें इतनी सुन्दरतासे बजले (सिमेंट आदि) लगाया है, कि आँखे गड़ जाती हैं, वे इतने स्वच्छ चिकने हैं, कि मक्खी का भी पैर रपट जाय, वे इतने विशाल बने हैं उनमें सैकड़ों मनुष्य निवास कर सकते हैं, उनके उद्यान उपवन इतने मनमोहक हैं, कि चिन्ता रहित पुरुष का मन मुकुर खिल उठे। दुग्धके फेन के सदृश स्वच्छ सुन्दर शैयायें वे ऐसी गुदगुदी थी कि बैठते ही एक हाथ नीचे धँस जाओ। कुरसियाँ इतनी प्रकारकी हैं कि उनपर बैठ जाओ, लेट जाओ, पड़ जाओ, ढुलक जाओ। बैठते ही ऐसा लगे मानो धुनी रुईके ऊपर बैठे हैं। स्त्रियाँ इतनी सुकुमारी कि अब उनका क्या वर्णन करूँ। बच्चे इतने सुन्दर और भोले कि उन्हें देखते ही चूमनेकी इच्छा हो। किन्तु उनमें

रहने वाले नर नारी इतने अशांत और दुखी कि हे भगवान्, किसी शत्रु को भी इतनी चिन्ता मत देना। कई बार जेल में रहा हूँ, जेल में भी चोर डाकुओं को इतना चिन्तित दुखी मैंने नहीं देखा। हम उनके रहन, सहन वेष भूषा, स्वच्छ कपड़े मोटर, खान पान को देखकर समझते हैं, ये बड़े सुखी होंगे, किन्तु उनका हृदय किस प्रकार दहकता रहता है इसे सब नहीं जानते। ऐसी ही एक बड़ी कोठी मे मैं गया। उसके विशाल भवनों कुरसियों और विचित्र विचित्र शैयाओं को देखकर मैं आश्चर्य चकित की भांति उन पर लेटने और उछलने लगा। एक से उठकर दूसरी पर बैठने लगा। बात बात पर अट्टहास करने का मेरा स्वभाव है। मेरी हँसी को देखकर उस भवन की स्वामिनी महिला बोलीं—"आप क्षण क्षण पर कैसा निर्मुक्त हास्य कर रहे हैं। आपके भीतर कितना आनन्द भरा है जो छलका पड़ता है। हमारे तो आनन्द का श्रोत ही सूख गया है। हमें तो कभी हँसी भी नहीं आती।"

उसके इन शब्दों में कितनी गहरी वेदना छिपी हुई थी। कोई चाहे हम विषय भोग की सामग्री जुटा कर सुखी हो जायँगे यह असंभव है। सुख शांति तो त्याग में है, संतोष में है। सो, त्याग और सन्तोष की भावना अब दिखायी नहीं देती। यह भी कलियुग का ही प्रभाव है, कि हमें सर्वत्र दोष ही दोष दिखाई देते हैं। जब अपने में दोष होते हैं तभी दूसरों के दोष दृष्टिगोचर होते हैं। जिनकी दृष्टि सदा इष्ट में लगी रहती है, उन्हें समस्त जगत् सियाराम मय दिखायी देता है, वह अचर सचर सभी को इष्ट बुद्धि से प्रणाम करता है।

हे नन्द-नन्दन ! मेरी ऐसी बुद्धि बना दो। यह संसार तो गुण दोषमय है ही। कभी गुण बढ़ जाते हैं, कभी दोष बढ़ जाते हैं। घटना बढ़ना तो संसार में लगा ही रहता है। इस घटने बढ़ने

वाले अनित्य पदार्थों के विषय में क्या सोचें। कभी न घटने बढ़ने वाले—एक रस रहने वाले—आप रस रूप सुख स्वरूप सर्वेश्वर के ही सम्बन्ध में हम सदा सोचते रहें। आपकी ही कथाओं के कहते सुनते रहें। आपके ही गुणों को गाते रहें, आपके धाम पवित्र तीर्थों में श्रद्धा से परिभ्रमण करते रहें, आपके ही चरणों से निसृत भगवती सुरसुरि के समीप वास करके उसके ही अमृतोपम पयका पान करते रहें और आपके ही जगन्मंगल, श्रुति मधुर दिव्य—

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे।
हे नाथ नारायण वासुदेव॥

इन नामों का गान करते रहें। यही प्रार्थना है, यही विनय है, यही भिक्षा है, यही वांछा है। हे वांछाकल्पतरो ! प्रभो ! हमारी इच्छा को पूरी कर दो।

छप्पय

दुखमय सब संसार तहाँ सुख जीव न पावै।
तरु, पशु, नर, किंपुरुष भले ही सुर बनि जावै॥
जा जा जनमें योनि रहै चिन्ता निज तनकी।
होहि न तब तक सुखी श्याममहँ वृत्ति न मनकी॥
चहूँ न जग सुख मोक्षपद, नरक स्वरगमहँ रहूँ जहँ।
मंगलमय मधुमय सरस, रटूँ तुम्हारे नाम तहँ॥

संकीर्तन भवन
प्रतिष्ठानपुर (प्रयाग)

आपके इस विश्व नाटक का कुपात्र
प्रभुदत्त

मथुरा में रामश्याम

(१०२६)

एवमुक्तो भगवता सोऽक्रूरो विमना इव ।
पुरीं प्रविष्टः कंसाय कर्मावेद्य गृहं ययौ ॥*
(श्रीभा० १० स्क० ४१ अ० १८ श्लो०)

छप्पय

दरशन तैं अति चकित तुरत रथके ढिंग आये ।
पुनि मथुराकी ओर बैठिरथ अश्व चलाये ॥
पहिले तैं ही गोप बागमहँ डेरा डारे ।
करत प्रतिक्षा रामश्याम लखि भये सुखारे ॥
हरि हँसि बोले—चचाजी ! रथ लै मथुरा जाउ तुम ।
कबहूँ चाची हाथके, माल उड़ावें आइ हम ॥

जो हमारे सुहृद् हैं, सम्बन्धी हैं, प्रेमी हैं, श्रद्धेय हैं, वे यदि कहीं से हमारे ग्राम में, हमारे नगर में आते हैं। तो हमारी हार्दिक इच्छा होती है, वे आकर सर्व प्रथम हमारे घर पर उतरें। हम ही सर्व प्रथम उनका स्वागत सत्कार करें। यदि ऐसी इच्छा रखने वाले कई होते हैं, तब तो प्रेम कलह होने तक की नौबत

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! भगवान् के इस प्रकार कहने पर उदास मन से अक्रूरजी ने मथुरा में प्रवेश किया और कंस को राम श्याम के आने का समाचार देकर अपने घर को चले गये।"

आ जाती है, भगवान् मिथिलापुरी में गये। वहाँ के राजा भी उनके भक्त थे, और एक ब्राह्मण भी भक्त थे। दोनों चाहते थे। भगवान् सर्वप्रथम आकर मेरा सत्कार ग्रहण करें। जिसके यहाँ भी पहिले जायँगे, वह सुखी होगा। दूसरा दुखी होगा, इस कलह को बचाने को भगवान् ने अपने दो रूप बना लिये और दोनोंके ही घर में एक साथ प्रवेश किया, दोनों ही प्रसन्न हो गये। यदि हमारे प्रेमी सम्बन्धी हमारे नगरके निकट आनेपर भी किसी विशेष कर्तव्य वश हमारे घर नहीं पधारते, तो हमें आन्तरिक कष्ट होता है, किन्तु कर्त्तव्यकी गुरुताकी ओर देखकर उस कष्ट को भी सहना ही पड़ता है। कर्त्तव्य पालन के निमित्त सब कुछ सहना पड़ता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अनन्ततीर्थ अक्रूरघाट से भगवान्का रथ चला। अक्रूरजी को अब शीघ्र मथुरा पहुँचनेकी चटपटी लगी हुई थी, वे रथको वेगसे हाँकना चाहते थे, किन्तु हाँक नहीं सकते थे। वे देखते झुंड के झुंड नर नारी मार्ग के दोनों ओर खड़े थे, वे भगवान् वासुदेव के पधारने की बात पहिलेसे ही जानते थे, अतः प्रातःकाल से ही मार्ग में खड़े थे। रथ को दूरसे देखते ही वे उसके आगे खड़े हो जाते और दोनों हाथों को ऊपर उठाकर चिल्लाते—"अक्रूरजी! रथ को रोक दो। हम रामश्याम के दर्शन कर लें।" अक्रूरजी क्या करते, उन्हें विवश होकर रथ रोकना पड़ता। वे सब उन दोनों भाइयों को देखते, उनकी रूप माधुरी के पान करने से ऐसे प्रमुदित हो जाते, कि फिर उनके लिये दृष्टि हटाना असम्भव हो जाता, वे अमृत भावसे रामश्याम दोनों भाइयों को निहारते निहारते ही रह जाते। वे बार बार कहते—"हटो, हटो अब जाने दो।" किन्तु नरनारी कहते—"अक्रूर! हमें एक बार नेत्र भरकर देख तो लेने दो। अभी तो हमने भली प्रकार इन्हें निहारा भी नहीं।" जैसे तैसे अक्रूर

रथ को हाँक देते, किन्तु ग्रामवासी जब तक रथ दीखता रहता, तब तक अपनी दृष्टि उधर ही लगाये रहते, उनके लिये उधर से दृष्टि हटा लेना असम्भव हो जाता। इस प्रकार बीच बीच में रुकते हुए, मार्ग में पड़ने वाले ग्रामों के नर नारियों को अपने देव दुर्लभ दर्शनों से कृतार्थ करते हुए, अक्रूरजी के रथ पर बैठकर रामश्याम अपरान्ह काल में मथुरापुरी में पहुँचे।

व्रजराज श्रीनंदजी अपने समस्त गोपों और छकड़ोंके सहित बहुत पहिले से ही मथुरा पहुँच गये थे। उन्होंने मथुरा के बाहर जलका सुपास देखकर एक ग्रामके बगीचेमें अपने डेरे लगा लिये थे। सब छकड़े अर्ध चन्द्राकार खड़े कर दिये थे, बैल चरने छोड़ दिये थे। वे बार बार मार्ग की ओर देखते मनमें विविध भाँतिकी शंका करते—"अभी तक रामश्याम क्यों नहीं आये। अक्रूरजी तो रथको हाँककर हमसे पहिले चल दिये थे, कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि हमारे आने के पूर्व ही ये रथ से आगे निकल गये हों, किन्तु कोई तो बताता, ये नगरशुल्क वाले व्यक्ति तो अक्रूरजीको, कंसके रथको सभी जानते हैं, यदि जाते तो ये अवश्य बताते। ये कहते हैं, रथ अभी गया नहीं। रथ आता भी तो प्रधान फाटकसे हो जाता। ये गोपुरवाले प्रहरी कह रहे हैं, अभी रथ आया नहीं। तो फिर बीचमें कहाँ रुक गया, इतनी देरीका तो कोई काम नहीं था। बीचमें कोई दुर्घटना घटित तो नहीं हो गई।" इस प्रकार नन्दजी तथा अन्यान्य गोपगण भाँति भाँतिके अनुमान लगा रहे थे, कि इतने में ही उन्हें रथकी खनखनाहट सुनाई दी। वे सबके सब दौड़कर सड़कपर आ गये। इतनेमें ही उन्होंने देखा, विशाल ध्वजावाला सुवर्णसे मढ़ा हुआ चार घोड़ों वाला रथ सामने आ रहा है, उस पर रामश्याम विराजमान हैं। अक्रूरजी उसे हाँक रहे हैं। व्रजराज तथा अन्यान्य गोपोंको देखकर अक्रूरजीने तुरंत रथ खड़ा कर दिया। छुटते ही नन्दजी ने कहा—"अरे, भैया!

तुम लोग इतने पीछे कहाँ रह गये। हमें बड़ी चिन्ता हो रही थी सो गये थे क्या ?"

हँसकर श्यामसुन्दर बोले—"बाबा ! न जाने चाचाजी जलमें चुड़की मारकर क्या करते रहे। हमें तो देर हुई नहीं, चाचाजीने ही सब देर की है।"

यह सुनकर सभी गोप खिलखिलाकर हँस पड़े। रामश्याम दोनों रथ परसे उतर पड़े। उनके उतरने पर अक्रूरजी भी घोड़ों की रास को रथ के डंडे से बाँधकर उतर पड़े। वे अत्यन्त विनय और संकोच के सहित सिर नीचा किये श्याम सुन्दर के समीप खड़े थे। उन्हें अत्यन्त विनय और संकोचयुक्त देखकर उनके संकोच को दूर करने के निमित्त प्रेम पूर्वक उनके हाथको पकड़कर मन्द मन्द मुसकराते हुए मदनमोहन बोले—"अच्छा, चाचाजी ! नमस्कार। आप तब तक चलें। महाराज कंस को सूचना दें, कि मैं सब गोपों के लिवा लाया, फिर घर चलकर जलपान करें, थक गये होंगे। चाचीजी प्रतीक्षा कर रही होंगी।"

"सकुचाते हुए अक्रूरजी ने कहा—"तब, प्रभो ! आप संग न चलेंगे ?"

भगवान् शीघ्रताके साथ बोले—"नहीं, चाचाजी ! इस समय आपके साथ हमारा जाना उचित नहीं। अभी हम कुछ देर यहाँ अपने डेरे पर विश्राम करेंगे। फिर हम अपने ग्वाल बाल बन्धुओं के साथ नगरी की शोभा देखने जायँगे। हमने अभी तक मथुरा-पुरी देखी ही नहीं।

अक्रूरजी ने कहा—"महाराज ! रथ पर ही बैठकर चलें। रथ से ही मैं आपको सब हाट बाट दुराहे, तिराहे चौहाहे एकखने, दुखने, तिखने, सतमकान,मन्दिर,सभागृह तथा अन्यान्य भवन दिखाऊँगा। नगरी के बाग बगीचोंमें भी ले जाऊँगा।"

भगवान् बोले—"नहीं, चाचाजी ! रथ से क्या दीखेंगे। बन्दी

की भाँति रथमें बैठकर निकल जायँगे। हम तो पैदल ही सखाओं के सहित हँसते खेलते कबड्डी लगाते हुए नगरके बाजारोंको देखेंगे, जहाँ इच्छा हुई, वहाँ खड़े हो गये, जिससे इच्छा हुई, बात कर ली।"

आँखों में आँसू भरकर अक्रूरजी ने कहा—"प्रभो! मैं नीच, पतित, कायर, कलंकी जैसा भी कुछ हूं, आपका दास हूँ, आपका शरणागत हूँ, भक्त हूँ, आप शरणागत, प्रतिपाल तथा भक्तवत्सल हो, हे अशरण शरण! हे अनाथों के नाथ! आप मेरा परित्याग न करें।"

भगवान् ने अत्यन्त स्नेह से कहा—"चाचाजी! आप कैसी बातें कर रहे हैं। परित्याग का तो प्रश्न ही नहीं। आप चलें, हम आ रहे हैं।"

अक्रूरजी ने कहा—"हे अधोक्षज! आप मेरे प्रिय अतिथि हैं। बड़े भाग्य से आपके दर्शन मिलते हैं। आप सर्वप्रथम मेरे घर पर पधारें, मुझ अनाथ को सनाथ करे, मेरा आतिथ्य ग्रहण करें।"

भगवान् ने कहा चाचाजी! बहुत भीड़ भाड़ है, ऐसे सबको यहाँ छोड़कर अकेले आपके घर जाना उचित नहीं।"

शीघ्रता के साथ अक्रूरजीने कहा—"अकेले न चलें। अपने बड़े भाई बलदेवजी को भी ले चलें। समस्त अपने ग्वाल बाल सखाओं को भी ले चलें। आपकी दया से किसी प्रकार की कमी नहीं है। आपके चरण कमलों की रज पड़ने से हमारे घर पावन बन जायँगे। हम आपके चरणोंको धोकर, उस चरणामृतको सिर पर चढ़ायेंगे, अपने घर में छिड़केंगे। श्रीगंगाजी आपके चरण कमलोंका धोवन ही तो हैं, जिनसे अग्नियोंके सहित पितृगण तथा समस्त देवगण तृप्त हो जाते हैं। जिसने आपके चरण कमलों का

आश्रय लिया है, जिसने इन अरुण चरणोंको श्रद्धा पूर्वक पखारा है, वे संसार में यशस्वी हुए हैं। दैत्यराज महाराज बलि इन चरणों को पखार कर ही परम यशस्वी बन गये। उनके लोक परलोक बन गये। इस लोक में सुतल लोक का दिव्य ऐश्वर्य भोग रहे हैं, अग्रिम मन्वन्तर में इन्द्र पद पर प्रतिष्ठित होंगे और अन्त में आपके परम पद को प्राप्त होंगे। आपके चरण कमलों को वेदगर्भ ब्रह्माजी ने अपने कमंडलु के जल से धोया था, जिससे त्रिपथगामिनी सुरसरि भगवती गंगा उत्पन्न हुईं, जिनके जल ने तीनों लोकों को पावन बना दिया। उसी जल को भगवान् सदाशिवने श्रद्धा सहित सिर पर धारण किया, सहस्त्रों वर्ष के भस्म हुए सगर पुत्रों की राख से जहाँ इस जल का स्पर्श हुआ, तहाँ वे सबके सब तर गये। जिन चरण कमलों का इतना प्रभाव है। ऐसा महान् महात्म्य है, उन्हें द्वार पर आकर मैं कैसे छोड़ सकता हूँ ? हे मधुसूदन ! आप मुझ मलिन मति पर कृपा करो। हे देवाधिदेव ! इस दीन पर दया करो। हे सम्पूर्ण जगतके एक मात्र स्वामी ! मेरी प्रार्थना को स्वीकार करो ! हे पुण्य श्रवण कीर्तन ! मेरे घरको अपनी पदरज से पावन बनाओ। हे यदुश्रेष्ठ, अपना सगा सम्बन्धी समझकर मुझे सौहार्द्रदान देकर अपनाओ। हे पुण्य कीर्ति ! अपनाकर मुझे न ठुकराओ। हे नारायण ! आप इस नगण्य की विनती स्वीकार करो। आपके पुनीत पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।"

अक्रूरजी की ऐसी विनीत वाणी सुनकर भगवान् अत्यन्त प्रसन्न हुए, उनका हाथ पकड़े ही पकड़े वे उन्हें एकान्त में ले गये और धीरे से उनके कान में बोले—"देखिये, चाचाजीसे कह देना हमारे लिये सुन्दर सुन्दर बुरजीदार बड़े बड़े लड्डू बनाकर रख दोड़ें। हम भर पेट लड्डू खायँगे। मलाई खुरचनका भी प्रबन्ध रहे।"

अक्रूरजी ने सरलता के साथ कहा—"प्रभो! आपतो सबको खिलाने वाले हैं। प्राणीमात्र आपका ही दिया हुआ खाते हैं, आप को कौन खिला सकता है। मेरी इच्छा है, यदुवंशियों में सर्वप्रथम मुझे ही आपके दर्शन हुए हैं, अतः सर्वप्रथम मेरे ही घर को आप अपनी चरण रज से पवित्र करें।

भगवान् ने धीरे से कहा—"चाचाजी! सब आगे पीछे की बात सोच लेनी चाहिये। अभी मैं आपके यहाँ जाता हूँ, तो न जाने कंस क्या सोच ले। आप पर वह कुछ शंका करने लगेगा। व्यर्थ में बात का बतंगड़ हो जायेगा। दो दिन और धैर्य धारण करें। इस यदुकुल के कलंक रूप कंस को मारकर ही मैं आपके घर जाऊँगा। तब निर्भय होकर अपने बन्धु बान्धव तथा जाति वालों से मिल सकूँगा, सबके मनोरथों को पूर्ण करूँगा। इस समय जाना नीति के विरुद्ध है। आप स्वयं बुद्धिमान है। हठ करना उचित नहीं। मैं तो आपका हूँ ही, अब तो आपकी छत्र-छाया में ही रहना है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् की ऐसी नीतियुक्त बात सुनकर अक्रूरजी ने फिर आग्रह नहीं किया। वे रामश्याम को प्रणाम करके रथ पर चढ़ कर सीधे कंस के भवन में पहुँचे। कंस बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा था। अक्रूरजी को देखते ही उसने सर्व प्रथम यही प्रश्न किया—"क्या रामश्याम को आप लाये?"

अक्रूरजी ने कहा—"जी हाँ महाराज! मैं नन्दादि समस्त गोपों के सहित रामश्याम को यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये, ले आया हूँ। वे सब पुर के बाहर आमों के बगीचे में ठहरे हैं। संभवतया वे सब के सब कल महाराज के दर्शन करेंगे, और अपनी अपनी भेंट अर्पण करेंगे।"

कंस यह सुनकर प्रसन्न हुआ, किन्तु न जाने .

अव्यक्त चिन्ता ने घेर लिया। उसका मुख फक्क पड़ गया। उसने कहा—"अच्छा, अक्रूरजी ! आप बहुत दूर से आये हैं, थक गये होंगे, अब अपने घरमें जाकर विश्राम करें, स्नान, सन्ध्या करके भोजन करें, कल फिर सब बातें होंगी।"

अक्रूरजीने कहा—"जैसी महाराज की आज्ञा। मैं अवश्य ही थक गया हूँ, कल सब निवेदन करूँगा।"

सूतजी कहते हैं—"इस प्रकार कंसको सूचना देकर अक्रूरजी अपने घर चले गये और वहाँ नित्य कर्मसे निवृत्त होकर भगवान्‌के ही विषयमें सोचते रहे। इधर रामश्याम जैसे मथुरापुरी की शोभा निहारने चले। उनका वर्णन मैं आगे करूँगा।"

छप्पय

समुझि गये अक्रूर श्याम अब ही नहिं जावें।
मारि कंस कूँ बन्धु सहित मेरे घर आवें॥
रथ लै पहुँचे कंस निकट सब वृत्त सुनायो।
रामश्याम आगमन सुनत खल अति हरपायो॥
घर पहुँचे अक्रूर इत, उत हरि अति उत्सुक भये।
ग्वाल बाल बल सहित लै, मथुरा निरखन चलि दये॥

प्रभुका मथुरापुरी में प्रवेश

(१०३०)

तां सम्प्रविष्टौ वसुदेवनन्दनौ,
वृतौ वयस्यैर्नरदेववर्त्मना ।
द्रष्टुं समीयुस्त्वरिताः पुरस्त्रियो—
हर्म्याणि चैवारुरुहुर्नृपोत्सुकाः ॥*

(श्रीभा० १० स्क० ४१ अ० २४ श्लो०)

छप्पय

देखी मथुरापुरी सजी नव बधू सरिस अति ।
घर घर बन्दनवार पताका ध्वज शुभ सोहति ॥
परम रम्य उद्यान मनोहर घर पथ मन्दिर ।
परिखा चहुँ दिशि खुदी सुघर गोपुर अति सुन्दर ॥
विद्रुम मोती नीलमणि, वेदिनि महँ जगमग करत ।
शुक पिक पारावत मधुर, करि कलरव इत उत फिरत ॥

बालकों को नित्य नूतन वस्तु देखने की बड़ी उत्सुकता होती है। उन्हें यदि किसी नवीन नगर में जाना हो, तो रात्रि में नींद न

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! जब वसुदेवजी के दोनों पुत्र रामश्याम मथुरापुरी में अपने साथियों के सहित मार्ग से जाने लगे, तब उनके दर्शन से तुरन्त नगर की नारियाँ एकत्रित होकर अत्यन्त उत्सुकता के साथ महलों के ऊपर चढ़ गयीं ।

आवेगी। सबसे पहिले उठ पड़ेंगे, बड़े चावसे आगे आगे जायँगे, नगर में पहुँचकर उसकी शोभा को देखकर प्रसन्न होंगे। जिस वस्तु को भी देखेंगे, उसी के सम्बन्ध में पूछेंगे। बड़े बूढ़े हाटबाट में चलने को देरी भी करेंगे, तो वे हठ करेंगे या जिस किसी के साथ भग जायँगे और सबको बड़े ध्यान से देखेंगे। कोई बाजा बजाता सुनाई देगा, तो उसे ही सुनते रह जायँगे। कोई वस्तु बेच रहा होगा, तो उससे ही बहुत से व्यर्थ के प्रश्न पूछने लगेंगे। पैसा होगा तो आवश्यकता न रहने पर भी वस्तुओं को क्रय करने लगेंगे, इस प्रकार बाल सुलभ चंचलता करते हुए वे नगर में भ्रमण करेंगे, यदि कोई साहसी बालक हुआ, तो वह अकारण दूसरों से भिड़ जायँगे, बिना बात छेड़खानी करेंगे। बाल्यकाल की उत्सुकता और चपलता दोनों ही कितनी सुन्दर होती हैं। भाग्यशाली हैं, इन्हें देखकर जो प्रसन्न होते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! ब्रजराज के समीप डेरा में आकर भगवान् ने हाथ पैर धोये, मैया ने जो टासर बाँध दिया था, बाबा के बहुत कहने पर जलपान किया। फिर नन्दजी से बोले—"बाबा! हम मथुरापुरी को देख आवें।"

नन्दजी बोले—"अरे, भैया! तुम बड़े ऊधमी हो। अकेले जाओगे तो कुछ उपद्रव करोगे। इसलिये कल हमारे साथ चलना तब हम सब दिखा देंगे।"

आग्रह के साथ भगवान् ने कहा—"न, बाबा! हम उपद्रव कुछ भी न करेंगे। मथुरा देखने की हमारी बड़ी इच्छा है, हमने कभी मथुरापुरी देखी नहीं। बलदाऊजी को साथ ले जायँगे और यहाँ आस पास ही घूम फिर कर शीघ्र ही लौट आवेंगे।"

श्यामसुन्दर तथा अन्य ग्वाल बालकोंकी अति उत्सुकता देखकर ब्रजराज मना न कर सके, वे बोले—"अच्छा, जाते तो हो, किन्तु देखना वहाँ किसी से लड़ाई झगड़ा मत करना। बहुत देरी

भी मत लगाना, यहीं आस पासमें चौराहे तक घूमकर चले आना।"

भगवान् बोले—"अच्छी बात है बाबा ! आप कुछ भी चिंता न करें, हम पुरी को देखकर सूर्यास्त के पूर्व ही लौट आवेगे।"

यह कहकर भगवान् ने ग्वाल बालों से चलने का संकेत किया। ग्वाल बाल तो बगलबन्दी, मिरजई और चिलकनी टोपी पहने तैयार ही खड़े थे। वे भगवान् का संकेत पाते ही अपने अपने हाथों मे लठिया लिये चल दिये। उनके पीछे पीछे बलराम जी तथा श्यामसुन्दर भी चल दिये।"

जब तक नंदजी दिखाई देते रहे, तब तक तो सब बड़े समय से अत्यन्त सरलता के साथ चलते रहे। जहाँ वह बगीचा ओट में हुआ, तहाँ सभी स्वच्छन्द होकर उछलने कूदने लगे। कबड्डी मारने लगे। ग्वालबालों के लिये मथुरा का दृश्य अत्यन्त ही आकर्षक था, उन्होंने इसके पूर्व इतनी बड़ी नगरी कभी देखी नहीं थी। सर्व प्रथम वे नगर प्रधान द्वार गोपुर के समीप पहुँचे, वहाँ उन्होंने देखा, बड़ी बड़ी चौड़ी सड़कें बनी हुई हैं। उनके दोनों ओर फल पुष्पों से लदे वृक्ष खड़े हुए हैं। भगवान् अपने ग्वाल-बालों से घिरे जिस राजपथ से पुरी में प्रवेश कर रहे थे, वह प्रधान पथ था, नगर के लोग इसी पथ से आते जाते थे। नगर के चारों ओर परकोटा खिंचा हुआ था। यह नहीं कि जो जिधर से चाहे उधर से ही नगरी में घुस जाय, चारों दिशाओं में चार दरवाजे थे। भगवान् पश्चिम के दीर्घ दरवाजे से प्रवेश करना चाहते थे। इसलिये वे गोपुर (पुरी के प्रधान द्वार) पर आकर खड़े हो गये। वहाँ हाथों में संगीन लिये हुए इधर से उधर प्रहरी घूम रहे थे। नगर के असंख्यों नर-नारी उस द्वार से आते जाते थे। प्रहरी किसी से कुछ बोलते नहीं थे। जिसे अपरिचित देखते, जिस पर कुछ संदेह होता, उससे एक दो प्रश्न पूछ लेते। कंस महाराज के यहाँ बड़ा भारी उत्सव हो रहा है, अतः दूर दूर से बहुत से लोग

आये हुए हैं, नगरी सब ओर से सजाई गई है। परकोटा के चारों ओर पक्की खाई है। जिसमें अगाध जल भरा है। उसके किनारे किनारे पक्की सड़क है। प्रधान द्वार पर एक पुल है, वहाँ पर दो, परकोट के इधर की ओर से तथा एक और प्रधान सड़क, इस प्रकार तीन सड़कें मिली हैं, राजद्वार आजतोरण, बन्दनवार आदि से भली भली भाँति सजाया गया है नगर के गगनचुम्बी द्वार स्फटिक आदि मणियों के बने हुए थे। बीच बीच में सोने का काम हो रहा था, घरों में जो बड़ी बड़ी किवाड़ें थीं, वे सुवर्ण की बनी हुई थीं। भगवान ने उसी प्रधान द्वार से ग्वाल-बालों के सहित पुरी में प्रवेश किया। उनके अद्भुत रूप लावण्य को जो भी देखता वही विमुग्ध हो जाता। गोप ग्वालों से घिरे हुए बलरामजी सहित श्यामसुन्दर को आते देखकर प्रहरी सतर्क होकर खड़े हो गये। भगवान् के प्रति उन्होंने सम्मान प्रकट किया। हँसकर भगवान् ने प्रहरियों से पूछा—"कहो, भाई ! हम पुरी को देख आवें।"

यह सुनकर प्रहरियों ने कहा—"प्रभो ! आपकी ही तो पुरी है, पधारिये और अपने दर्शनों से नगर निवासी नरों के तथा नारियों के नयनों को निहाल कीजिय।"

यह सुनकर हँसते हुये श्यामसुन्दर पुरी के भीतर घुस गये। वहाँ उन्होंने देखा, बड़े बड़े पीतल के और ताँबे के कोठा कुठिला बने हुए हैं, जिनमें धन धान्य भरा है। स्थान स्थान पर सुरम्य उद्यान तथा उपवन लगे हुए हैं, जिससे नगर की वायु विशुद्ध बनी रहे। सड़कों के चौराहों पर सुवर्ण की कारीगरी की गई है। राजपथ के दोनों ओर धनिकों के सात, सात खने एक से भवन बने हुए हैं। बीच बीच में दायें बायें बड़ी बड़ी गलियाँ बनी हैं, जिनमें रथ, वाहन जा सकते हैं। सर्वत्र बन्दनवार लगे हैं, सभी घर ध्वज पताका तथा रंग बिरंगे वस्त्रों से सजाये गये हैं। स्थान स्थान पर सार्वजनिक सभा भवन बने हुए हैं। जिनमें सार्वजनिक [illegible]

होते हैं, बारातें आकर ठहरती हैं। सार्वजनिक उद्यान भी हैं, जिनमें रंग विरङ्गे पुष्प खिले हैं। बैठने के लिये बहुत सी वेदियाँ बनी हुई हैं, बीच बीच में तालाब बने हैं। जिनमें रंग विरंगे कमल खिले हुए हैं, विविध रंगों की बड़ी बड़ी मछलियाँ किलोल कर रही हैं, कुछ लोग उनको आटे की गोलियाँ खिला रहे हैं, इससे वे जल के ऊपर आकर नाना भाँति की उछल कूद और चंचलता कर रही हैं। वहाँ के सभी भवन विचित्र और दर्शनीय बने हैं, उनमें बहुमूल्य मणियाँ जड़ी हुई हैं। वैदूर्यमणि, वज्रमणि, निर्मलनीलमणि विद्रुम मोती तथा हीरा आदि से जड़े हुए घरों के छज्जे तथा कँगूरे हैं। वेदियों में भी मणियाँ जड़ी हुई हैं, आले, मोखे, झरोखे तथा घरों के प्रांगणों में मणि मुक्ता जड़े हुए दमक रहे हैं। घरों के ऊपर जो कँगूरे बने हुए हैं, उन पर शुक, पिक, मयूर तथा पारावत आदि मधुर ध्वनि करने वाले पक्षी बोल रहे हैं। राजपथ पर चंदनमिश्रित जल का तथा सुगन्धित तैलों का छिड़काव हो रहा है। सुगंधित मालायें पंक्तिबद्ध टँगी हुई हैं। स्थान, स्थान पर अगुरु, चन्दनका चूर्ण, कर्पूर तथा घृत मिलाकर धूप जलाई गई है, उसका धूँआ चारों ओर फैल रहा है। इसी प्रकार गलियाँ तथा समस्त हाट बाट सजाये गये हैं। दूब, खील, बतासे, लावा तथा अक्षत आदि मंगल द्रव्य स्थान स्थान पर रखे गये हैं, सबने अपने द्वारों मे फल युक्त दो केले के वृक्ष लगाये हैं। उन पर वन्दनवार तथा रंग विरंगी झंडियाँ बाँधी गई हैं। दोनों ओर दो सजल मङ्गलघट स्थापित हैं, जो दधि तथा चंदनादि मङ्गल द्रव्यों से चर्चित हैं। उनके कंठ में लाल वस्त्र तथा सुगंधित पुष्पों की मालायें पहिनाई गई हैं। उनके ऊपर चौमुख घृत दीप रखे हुए हैं। पंचपल्लव उनमें पड़े हैं। केले तथा सुपारी के पादप क्षुद्र झंडियों, रेशमी वस्त्रों तथा चिकने पल्लवों से भली भाँति सजाये हुए हैं।

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! सखाओं से आवृत्त वसुदेव-

नन्दन रामश्याम ने जब पुरी में प्रवेश किया, तो सम्पूर्ण पुरी में हल्ला मच गया। उनके रूप लावण्य की क्षण भर में चर्चा फैल गई, नर नारियों के मन में उन अद्भुत रूप लावण्ययुक्त परम सुकुमारी कुमारों को निहारने की उत्कंठा उत्पन्न हो गई। नगर की नवेली नारियाँ नंदनन्दन को निहारने के निमित्त, उत्सुकतावश भवनों की छतों पर चढ़ गईं और सतृष्ण नेत्रों से लज्जा पूर्वक घूँघट की ओट से श्यामसुन्दर की रूप माधुरी का पान करके अपने नेत्रों को सफल बनाने लगीं।

नगर भर में धूम मच गई। हल्ला हो गया कि वसुदेवजी के लल्ला राजपथ पर घूमकर सबके मन को चुरा रहे हैं। सबको बड़ी उत्सुकता हुई, कि ये दो अद्भुत चोर हैं, दिन दहाड़े सबके देखते देखते चोरी करते हैं और पकड़े नहीं जाते। उन्हें देखने को चित्त में चुलबुलाहट होने लगी। शीघ्रता के कारण किसी ने उलटी ही चोली पहिन ली, किसी ने ओढ़नी उलटी ही ओढ़ ली, उसमें गोटे की किनारी और फूल ढक गये, केवल सिलाई ही दिखाई देने लगी। किसी ने कानों के झुमके उलटे ही लटका लिये। आरसी को अँगूठे में न पहिनकर उँगली में पहिन लिया। किसी ने एक ही पैर में छमछम दूसरे में रमझोल पहिन लिये। कोई अपने कपोलों पर पत्रावली की रचना करा रही थी, वह एक कपोल पर ही पत्रावली कढ़वाकर भाग गई। कोई नेत्रों में अंजन आँज रही थी, एक आँख में ही अंजन आँजकर अंजनपात्र को पृथिवी पर पटककर दौड़ी गई।"

कोई कोई भोजन कर रही थीं, अपने मुख का ग्रास मुख में, हाथ का ग्रास हाथ में ही लिये हुए परसी थाली को छोड़कर दौड़ गईं। कोई अपने अंग में उबटन लगा रहीं थीं। वे तेल वेसन सने शरीर से ही बिना स्नान किये ज्यों की त्यों मदनमोहन को निहारने चल दीं। कुछ सो रहीं थीं, वे सोते सोते उन्हीं वस्त्रों से

बाल बखेरे अस्त व्यस्त भाव से पलंग से उठकर ऊपर चली गईं
और बार व र बड़े बड़े करारे नयनों को भीड़ाती हुई श्यामसुन्दर
के ऊपर श्र ने कटाक्ष बाणों को छोड़ने लगीं। कुछ अपने अबोध
बालकों को दूध पिला रही थीं, उन्हें अतृप्त ही छोड़कर वहीं
बिठाकर रा श्याम के दर्शनों को दौड़ी गईं।

चिरका त से वे सुन रही थीं। श्यामसुन्दर ऐसे हैं, वैसे हैं,
करोड़ों काम देव उनके ऊपर वारे जा सकते हैं। दिन रात्रि नारी
समाज में श्यामसुन्दर के सौंदर्य की ही चर्चा होती रहती थी।
निरन्तर की चर्चा से सभी के हृदय में आवश्यकता से अधिक
उत्कंठा उत्पन्न हो गई थी। अतः अच्युत का आगमन सुनते ही
वे आपसे बा हर, हो गईं जब उन्होंने देखा। रामश्याम तो शोभा-
धाम हैं, सौंद र्य के साकार स्वरूप हैं, लावण्य के सिन्धु हैं, माधुर्य
के महोदधि हैं, तब तो वे एकटक दृश्य से पुनः पुनः सखाओं से
घिरे रामश्या म की सौंदर्य सुधा का पान करने लगीं और उनकी
चितवन के हा स्यसुधा से सींची जाकर अपने को सत्कृत हुई सम-
झने लगीं। उन्होंने उस परम आनन्ददायिनी मनोहारिणी मृदुल
मूर्ति को नयन पथ से हृदय में ले जाकर वहाँ भगवान् से कसकर
उसका दृढ़ आलिङ्गन किया। उस मानसिक आलिंगन के भावो-
द्रेक के कारण उनका सम्पूर्ण शरीर पुलकित हो उठा। नयनों से
नेह का नीर निकलने लगा। इस प्रकार वे चिरकाल की अनन्त
विरह व्यथा से विमुक्त बनकर, दिनकर के दर्शनों से कमल
कलिका के सदृश विकसित हुईं। प्यारे के प्रणय कटाक्षों को प्राप्त
करके वे प्रसन्नता के कारण प्रफुल्लित हो उठीं। उनका मुख कमल
खिल गया, वे अपने कमल नयनों से निहारती हुई, मुख कमल
से उनकी जय बोलती हुई, कर कमलों को उनके ऊपर फेंकती
हुईं, अपने प्रेम की पुष्पाञ्जलि समर्पित करने लगीं।

जब स्त्रियों ने श्यामसुन्दर के स्वागत की धूम मचा दी, अपने

आभूषणों की खनखनाहट और सुमनों की वृष्टि से श्यामसुन्दर को चौंका दिया, तब पुरुष क्यों चूकने लगे। उन्होंने भी राजपथ से जाते हुए श्यामसुन्दर और उनके साथियों का पुष्पमाला, पान, इलायची से स्वागत सत्कार किया। द्विजातियों ने दधि, अक्षत, सजल पात्र, फल, फूल, माला और चन्दनादि पूजा सामग्रियों से उन दोनों पुरुषोत्तम को प्रसन्नता के साथ पूजा की।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! मथुरावासी समस्त नर-नारी भगवान् के अलौकिक रूप लावण्य सिन्धु में उतरने और गोता खाने लगे। वे भगवान् वासुदेव के दर्शन करते करते अघाते ही नहीं थे। वे कहते थे—"अहा! वृन्दावन ही धन्य है, जहाँ ये शोभा के धाम सदा निवास करते हैं। अहा! वे व्रजवासिनी व्रजवनिता ही बड़भागिनी हैं, जो इन आनन्दधाम लावण्यसारसिन्धु श्यामसुन्दर और बलराम दोनों मनोहर मूर्तियों का निरन्तर दर्शन पाती हैं। उन भाग्यशालिनी गोपियों ने ऐसा कौन महान् तप किया था, जिसके फलस्वरूप उन्हें ऐसा सौभाग्य प्राप्त हुआ।" इस प्रकार नर-नारियों की बात सुनते हुए, नववधू के समान सजी बजी मथुरा पुरी को उत्कंठा और उत्सुकता के साथ निहारते हुए जा ही रहे थे, कि मार्ग में उन्हें मामाजी का एक बड़ा ढीट धोबी मिला। उसका जैसे उद्धार किया, उस प्रसंग को आगेके अध्यायमें कहूँगा, मुनियो! यह मामाके पुरमें माधवकी प्रथम दृष्टता पूर्ण लीला है।

छप्पय

शुभागमन वसुदेव सुतनि को मुनि सब नारीं।
तन की सुधि बुधि भूलि चलीं जनु चन्द्र उजारीं॥
असन बसन परिधान न्हान अंजन तजि भागीं।
चितवति लीला सहित श्याम शोभा अनुरागीं॥
अटा अटारिनि पै चढ़ीं, रूपा सुधा नयननि भरहिँ।
मूँदि नयन हिय भाव तैं, पुनि पुनि आलिङ्गन करहिँ॥

मथुरा में रजकोद्धार

(१२३१)

रजकं कञ्चिदायान्तं रङ्गकारं गदाग्रजः ।
दृष्ट्वायाचत वासांसि धौतान्यत्युत्तमानिच ॥*
(श्री भा० १० स्क० ४१ अ० ३२ श्लो०)

छप्पय

मथुरामहँ हरि रूप सुधाको स्रोत बहायो ।
तबईं लैकें धुवे बसन धोबी तहँ आयो ॥
रँगे रँगाये धुवे सुघर पट लखि बोले हरि ।
देहु चौधरी नील पीत पट हमहिं कृपा करि ॥
रङ्गकार उद्धत रजक, बोल्यो आँखिनि लाल करि ।
क्यों छोरा बौरे भये, अबहिं लेहिंगे चर पकरि ॥

जो लोग दूसरे के बल पर उछलते कूदते हैं, दूसरे के बल पर अपने को बली समझते हैं, जिस के बल पर वे इतराते हैं, ऐंठते हैं, यदि उससे भी कोई बली आ जाता है, और उसके आगे भी वे स्वभावानुसार वैसी ही दर्पकी बातें करते हैं तो उनका सब दर्प चकना चूर हो जाता है।

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! भगवान् ने अपनी ओर आते हुए एक धोबी को देखा जो रङ्गकार भी था। उसे देखकर भगवान् उस से अत्युत्तम धुले वस्त्रों की याचना की।

उनकी सब सिटिल्ली भूल जाती है। यदि दर्प ही करना हो तो भगवान् से करे, क्यों कि वे तो दर्प हारी हैं, जिसके दर्पको वे चकना चूर करते हैं, उसका आवागमन छुड़ा देते हैं। भगवान् से कैसे भी जीवका साक्षात्कार हो जाय, प्रेम से, द्वेष से, स्तुति करता हुआ, गाली देता हुआ कैसे भी उनके आगे आ जाय; उसका कल्याण ही कल्याण है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान मथुरापुरी की शोभा निहारते हुए, नगर निवासी नर नारियों के स्वागत सत्कार को स्वीकार करते हुए राज पथ से जा ही रहे थे कि सामने से उन्हें धुले हुए कपड़े लिवाये मूछों को मरोड़ता हुआ, आँखों को तरेरता हुआ एक धोवी दिखाई दिया। उसके साथ बहुत से सेवक थे। वे सब धुले हुए कपड़ों के गट्ठर अपने अपने सिरों पर लादे हुए थे। बहुत से कपड़े धुले हुए सफेद थे, कुछ सूती रेशमी रँगे हुए थे, प्रतीत होता है, वह धोवी उन सब का चौधरी था, वह कपड़े धोता भी था और रंगता भी था। राजा का धोवी होने से वह धनी भी था। कुछ तो धन की गरमी और कुछ राजाश्रय की गरमी। इन दोनों गरमियों से उसका अभिमान आवश्यकता से अधिक बढ़ गया था। सब उससे डरते थे। वह मूछों को मरोड़ता हुआ। कुछ रेशमी कपड़ों को लिये हुए आगे आगे चल रहा था। पीछे उसके सेवक। जब वह भगवान् के आगे आया तो भगवान् को एक खेल सूझी। भगवान् तो चंचल शिरोमणि ही ठहरे। उसके सम्मुख आकर बोले—"चौधरीजी! राम राम। कहो बाल बच्चे अच्छे हैं?"

चौधरी चौंक पड़ा, उसने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। आँखे फाड़ फाड़कर भगवान् को तथा सभी गोप ग्वालों को देखता रहा। भगवान् बोले—"चौधरीजी कहाँ कपड़े लिये जा रहे हैं?"

ऐंठकर वह बोला—"क्यों क्या करोगे ? महाराजा के कपड़े हैं।"

भगवान् भोले बालक की भाँति बोले—"अरे, कपड़े तो बड़े सुन्दर हैं। हमें भी इनमें से दो चार दे दो। परन्तु देखना चौधरी ! ऐसे ढीले ढाले मत दे देना हमारे अङ्गों में ठीक ठीक आ जायें, ऐसे नाप के देना। वस्त्र तो हमारे योग्य ही हैं, कल हमें भी राज-सभा में राजा को फल देने जाना है। क्रोध से लाल लाल आँखें करके अकड़ता हुआ धोबी बोला—"जाओ जाओ; भाग जाओ। आये हैं बड़े कपड़े माँगने वाले। तुम्हारे बाप दादों ने भी कभी ऐसे वस्त्र आँखों से देखे हैं ?"

भगवान् हँसते हुए बोले—"हमारे बाप दादों ने आँखों से देखे हैं या नहीं, इसका तो हमें पता है नहीं। किन्तु हमने तो इन्हें आँखों से देखा ही है और तुम देखना, हम इन्हें देखकर ही न छोड़ देंगे, पहिनेंगे और अवश्य पहिनेंगे।"

आपे से बाहर होकर धोबी बोला—"तुम लोग बड़े ढीठ हो रे ? वन-वन में नंगे पैरों घूम घूम गौएँ चराते हो और मन चलाते हो राजा के कपड़ों पर।

भगवान् सरलता के साथ बोले—"कोई बात नहीं। वन में घूमते तो पैरों से हैं, हम पैरों के कपड़े तो मांगते नहीं। हम तो पाग, दुपट्टा, अँगरखी, पिछोरा और धोती आदि माँगते हैं। दे दो चौधरी सीधे से देने पर तुम्हारा कल्याण होगा। न दोगे तो भी कल्याण तो होगा ही, किन्तु दूसरे लोक में जाने पर होगा।"

वह राजा का धोबी था, अपने को राजा से कम नहीं लगाता था। भगवान् को माँगने की क्या आवश्यकता, वे तो पूर्ण काम हैं, उन्हें तो इस अभिमानी के अभिमान को चूर करना था। यह असुर भक्त था। असुर भक्त भगवान् के सम्मुख क्रोध करके ही तरते हैं, अतः वह कुपित होकर बोला—"क्यों रे ग्वारियो !

तुम्हारी मृत्यु तुम्हारे सिर पर नाच रही है क्या ? तभी तो तुम ऐसी बढ़कर बातें बना रहे हो। अरे, मूर्खो ! तुम्हें अपने प्राण प्यारे हैं तो चुपके से भाग जाओ। फिर कभी किसी राज-पुरुष के साथ ऐसी धृष्टतापूर्ण बातें मत करना। तुम्हारी आँखें फूट गई हैं। तुम्हें ये सम्मुख शस्त्र लिये राज पुरुष दिखाई नहीं देते क्या ?

भगवान् हँसकर बोले—"ये राज पुरुष भी दिखाई देते हैं और राजा के धोबी पुरुष भी दिखाई देते हैं। तुम और तुम्हारे कर्मचारी हमारा क्या कर लेंगे ?

दाँतों को पीसकर, मुँह को बनाकर अत्यन्त क्रोध के स्वर में धोबी बोला—"क्या कर लेंगे, बच्चू जी। अभी दाल आटे का भाव मालूम पड़ जायेगा। ये राज कर्मचारी तुम जैसे चोर लुटेरों को दंड देने ही के लिये तो नियुक्त हैं। तुम जैसे उचक्का उठाईगीरों को ये बाँध लेते हैं और चूतड़ों पर ऐसे बेंत जमाते हैं कि सब मैया बप्पा याद हो जाते हैं। पास जो कुछ माल मसाला होता है उसे छीन लेते हैं। प्रतीत होता है, तुम भी अपनी ऐसी ही दुर्दशा कराना चाहते हो ?

भगवान् हँसकर बोले—"कोई बात नहीं। राज कर्मचारियों की चिन्ता तुम छोड़ दो। उनसे तो हम निपट लेंगे। तुम हमें वस्त्र दे दो। तुम्हें देने में संकोच हो तो लाओ हम वस्त्र लेलें।" यह कहकर भगवान् वस्त्र लेने उसकी ओर झपटे। वह आपेसे बाहर होकर बोला—"खबरदार कपड़ों से हाथ लगाया तो फिर तुम्हारा कल्याण नहीं। मेरे रहते तुम कपड़ों को छू भी नहीं सकते। तुम बड़े विचित्र चोर हो रे। जो दिन दहाड़े सबके सामने भरे राज मार्ग में चोरी करते हो। यहाँ तुम्हारा उचक्कापन न चलेगा। मेरे जीते जी तुम कपड़े नहीं ले सकते।"

भगवान् बोले—"जब ऐसी ही बात है, तो चौधरी जी !

सूतजी बोले—"महाराज! भगवान सर्वायुध हैं। उनके समस्त अङ्ग, प्रत्यङ्ग, आयुध का काम करते हैं। भगवान् के लिये कोई बात असम्भव नहीं।"

शौनकजी ने कहा—"हाँ सूतजी! मैं भूल गया था, विष्णु सहस्र नाम में ही लिखा है, सर्वप्रहरणायुध सर्वप्रहरणायुधेति' अच्छा तो फिर क्या हुआ?"

सूतजी बोले—"हुआ क्या महाराज! इस अद्भुत कृत्य को देखकर धोबियों में भगदड़ मच गई। वे सोचने लगे। यह विचित्र पुरुष है, जो हथेली से ही सिर काट लेता है। वे कपड़ों के गठरों को फेंक फेंक कर, ये गये वे गये। न कोई राज-कर्मचारी वहाँ आया न किसी नगर निवासी ने ही भगवान् के कार्य में हस्तक्षेप किया। ग्वाल बाल धोबियों की भगदड़ देखकर हँसने लगे।

हँसते हँसते भगवान् बोले—"अरे सारे ओ! अब क्या देखते हो, मारो हाथ। अब तो हम ही हम हैं, छाँट लो अपने अपने मन के वस्त्र।"

यह कहकर भगवान् स्वयं पीले पीले नये रेशमी वस्त्रों को छाँटने लगे। बलदाऊ जी बोले—"अरे कनुआ! हमारा भी ध्यान रखना भैया।"

भगवान् बोले—"दादा! आहार व्योहार में लजाने का काम नहीं। छाँट लो तुम भी अपनी इच्छा के अनुसार। यहाँ कपड़ों की कमी थोड़े ही है। मामा का माल है। मामा की वस्तु पर भानजे का स्वत्व होता है। लजाओ मत। छाँट लो।"

यह सुनकर बलदेवजी भी सुन्दर नीले रंग के रेशमी वस्त्र छाँटने लगे। उस धोबी से सभी मन ही मन जलते थे। अभिमानियों से प्रसन्न कौन रहता है, इसलिये कोई भगवान् के सम्मुख नहीं आया। ग्वाल-बाल बड़ी देर तक वस्त्रों को छाँट छाँटकर

पहिनते रहे। वे वस्त्र कंस के नाप के थे, इन छोटे छोटे ग्वाल-बालों के अंगों में कैसे आते। पहिले तो ग्वाल बाल अपने नाप के ही ढूँढ़ते रहे। जब नाप के न मिले तो ढीले ढाले ही पहिन लिये। एक दूसरे को देखकर हँसने लगे। मुँह मटकाने लगे।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार उस उद्धत धोबी को मारकर उसे परम पद देकर, इच्छानुसार वस्त्रों को लेकर, शेष वस्त्रों को ज्यों का त्यों पथ पर ही पड़ा छोड़कर गोप, ग्वालों के सहित भगवान् आगे बढ़ गये।

छप्पय

बनचारी तुम ग्वाल कबहुँ देखे अस अम्बर।
जाउ चराओ गाय लपेटो कारो कम्बर॥
सुनि धोबी की बात श्याम तकि मुक्का मारयो।
धड़तें सिर करि प्रथक् बीच चौराहे डारयो॥
भगदड़ धोबिनि महँ मची, डारि वस्त्र सबई भगे।
राम श्याम गोपनि सहित, चुनि चुनि पट पहिनन लगे॥

वायक भक्त पर कृपा

(१०३२)

तवस्तु वायकः प्रीतस्तयोर्वेषमकल्पयत् ।
विचित्रवर्णैश्चैलेयैराकल्पैरनुरूपतः ॥*

(श्रीभा० १० स्क० ४१ अ० ४० श्लो०)

छप्पय

ढीले ढाले पहिन वस्त्र हरि आगे आये।
वायक निरखे श्याम आइ मृदु वचन सुनाये॥
काटि छाँटिके प्रभो वेष हौं सुघर बनाऊँ।
करिकैं कछु कैंकर्य मनुज जीवन फल पाऊँ॥
मानी यदुवरने विनय, वायक पट अनुपम किये।
सजे सजाये करि कलभ, सम हरि बल शोभित भये॥

जीव के मन में भगवान् को सजाने की भावना आ जाय तो उसका बेड़ा पार हो जाय। भगवान् तो सजे ही सजाये हैं। उन्हें क्या सजाना फिर भी भगवान् तो भाव के भूखे हैं। जैसे सूर्यदेव नमस्कार से प्रसन्न होते हैं, शिवजी

---

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! तदनन्तर भगवान् के आगे बढ़ने पर एक वस्त्र सीने वाला वायक मिला। भगवान् के रूप माधुर्य से प्रसन्न होकर उसने उन रंग बिरंगे ढीले ढाले वस्त्रों को यथोचित सजावट के साथ काट छाँट कर, उनके अनुरूप उनका वेष बना दिया।"

जल धारा से प्रसन्न होते हैं, वैसे ही भगवान् अलंकारों से प्रसन्न होते हैं। उन्हें कोई शक्ति के अनुसार श्रद्धा से सजा दे, वे प्रसन्न हो जायेंगे। सोने चाँदी के अलंकार नहीं हैं, तो श्रद्धा सहित सुमनों से ही सजा दो, कोमल कोमल पत्तों से ही उन्हें मंडित कर दो। वे जीव धन्य हैं, प्रशंसनीय हैं, जो निरन्तर भगवान् को सजाने में ही लगे रहते हैं। आज फूल बँगला बनेगा, आज फूलों का शृंगार होगा, आज वन का शृंगार है। आज से झाँकी की रचना होगी। इस प्रकार प्रभु को ही सजाने बजाने में जिनका समय बीतता है, मनुष्य जन्म पाने का फल उन्होंने प्राप्त किया है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् अपने ग्वाल बालों सहित मामा के माल को मारकर उनके वस्त्रों को पहिनकर आगे चल दिये।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! भगवान् ने दूसरे के पहिने कपड़ों को क्यों पहिना ?"

हँसकर सूतजी बोले—"अजी, महाराज! वे कपड़े पुराने थोड़े थे, नये थे। अच्छा, मानलो पुराने ही सही, तो भगवान् के लिये क्या पुराना, क्या नया, कौन अपना, कौन पराया। सब उन्हीं के तो रूप हैं। गोपिकाओं के कुचकुंकम से रंजित वस्त्रों को ओढ़ते ही थे, उन पर बैठते ही थे। भगवान् को तो जूठे कूठेका विचार नहीं है। उन्होंने भीलनी के जूठे बेर खाये। दामा पन्त के लिये ढेड़ बन गये। भगवान् अपने भक्तों के लिये सब कुछ कर सकते हैं। इन वस्त्रों को निमित्त बनाकर कई भक्तों का उद्धार करना था। स्वयं उस धोबी का भी उद्धार करना था, इसलिये यह लीला रची।

शौनकजी ने पूछा—"हाँ, तो फिर क्या हुआ ? भगवान् फिर कहाँ गये ?"

सूतजी बोले—"मुनियो ! धोबी को मार कर ढीले ढाले वस्त्रों को पहिनकर बनवारी आगे बढ़े कि एक वस्त्रों को सीने वाला वायक (दरजी) उन्हें आगे मिला। भगवान् के त्रिभुवन मोहन रूप को देखकर वह तो आत्म विस्मृत हो गया। उसने आज तक इतना सौंदर्य, ऐसा लावण्य कभी देखा ही नहीं था। माधव की कैसी मनमोहिनी छटा है, ऐसा उनका भुवन मोहन स्वरूप है। तुरन्त वह अपनी दुकान से उतर कर प्रभु के सम्मुख आया। जो प्रभु के सम्मुख हो गया, उसके उद्धार में क्या संदेह हो सकता है। आते ही उसने भगवान् के पाद पद्मों में साष्टाङ्ग प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया। भगवान उसके भक्ति भाव से अत्यन्त ही प्रसन्न हुए और बोले—"कहो, भाई ! क्या चाहते हो ?"

उसने विनीत भाव से कहा—"प्रभो ! मेरी प्रार्थना है, मुझे कुछ सेवा का अवसर दिया जाय।

हँसते हुए भगवान् बोले—"तुम क्या सेवा करना चाहते हो ?"

वायक बोला—"प्रभो ! मेरी सामर्थ्य ही क्या है, जो कुछ सेवा कर सकूँ। मैं तो अत्यन्त ही दीनहीन मतिमलीन निर्धन व्यक्ति हूँ। हाथ से कुछ सेवा करके जीवन को सफल बनाना चाहता हूँ, जो कुछ सीने की कला जानता हूँ, उसका उपयोग आपके सेवा में करके उस कला को सार्थक बनाना चाहता हूँ। जैसे आपका भुवन मोहन स्वरूप है, उसके अनुरूप ये वस्त्र नहीं हैं। मैं काट छाँटकर ठीक करना चाहता हूँ, आपके अनुरूप बना देना चाहता हूँ।"

भगवान् ने हँसते हुए कहा—"वाह भैया ! हम भी यही चाहते थे। तुम अच्छे समय से मिल गये। बड़े बड़ों को

काट छाँटकर नाप के बना दो जिन वस्त्रों में घुंडी तनी हो उनमें घुंडी तनी टांक दो।"

भगवान् की स्वीकृति पाकर वह फूला नहीं समाया। भगवान् को साथ लेकर वह अपनी दुकान पर गया। वहाँ बड़े आदर सत्कार से भगवान् को बिठाया। यथा लब्धोपचारों से उनकी पूजा की। फिर उनके रंग विरंगे कपड़ों को काट छाँटकर उनके अनुरूप बनाया। बलरामजी के वस्त्र भी ठीक किये।

ग्वाल-बालों ने कहा—"अरे, भैया वायक! तू इनके ही वस्त्रों को ठीक कर दे। हम तो ऐसे ही रखेंगे क्योंकि जब हम बड़े हो जायँगे तब ये वस्त्र हमारे ठीक बैठ जायेंगे। हमें तो ऐसे ही ढीले ढाले वस्त्र अच्छे लगते हैं।"

हँसकर भगवान् बोले—"अरे सारेओ! ढीले ढाले कपड़े पहिनोगे तो तुम भी ढीले ढाले हो जाओगे। बहू भी तुम्हें ढीली ढाली ही मिलेगी।

ग्वाल-बाल बोले—"मिलने दे भैया! ढीली ढाली बहू तो अच्छी होती है। तेरी तरह चंचला चपला मिली तो नित्य कान गरम करेगी। तू ही अपने वस्त्रों को कसकर ठीक करा ले। हमारे तो ढीले ढाले ही सुन्दर हैं।"

भगवान् यह सुनकर हँसने लगे। फिर वे उस भक्त वायक से बोले—"सुनते हो सूचीधर भक्त! हम तुम पर बहुत प्रसन्न हैं, जैसे तुमने हमारे वस्त्रों को काट दिया है, वैसे ही हम तुम्हारा संसार बन्धन काट देना चाहते हैं। जाओ, हमने तुम्हें इस लोक और परलोक दोनों लोकों का सुख दिया।"

यह सुनकर वायक बोला—"प्रभो! मुझे सुख दुःख न चाहिए। मैं तो आपके चरणारविन्दों की भक्ति चाहता हूँ

भगवान् बोले—"हमारी भक्ति का फल ही तो इस लोक और परलोक का सुख है। मैं स्वयं सुखस्वरूप हूँ। जिस पर मैं प्रसन्न होता हूँ। उसे परलोक में सुख देता हूँ और इस लोक में भी उन्हें किसी वस्तु की कमी नहीं रहती। तुम्हें इस लोक में लक्ष्मी, बल, ऐश्वर्य, स्मृति और कभी भी शिथिल न होने वाली इन्द्रियों की शक्ति प्राप्त होगी और परलोक में सारूप्य मोक्ष की प्राप्ति होगी। यद्यपि तुम्हारी कुछ इच्छा नहीं है, किन्तु मेरी प्रसन्नता व्यर्थ तो जाती नहीं। उसका फल तो प्राप्त होगा ही।"

हाथ जोड़कर वायक ने कहा—"प्रभो! आप जो भी दें, उसी में सन्तुष्ट रहना और आपकी आज्ञा का यथाशक्ति पालन करना यही जीवों का कर्तव्य है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार उस वायक ने प्रभु की सजावट करके भगवान् की कृपा प्राप्त की। इस लोकमें अनन्त ऐश्वर्य का सुख कर मरकर, परम धाम को प्राप्त हुआ। यह मैंने अत्यन्त संक्षेप में वायक के ऊपर की हुई कृपा का वर्णन किया। अब आगे जैसे मालाकार पर कृपा की, उस प्रसंगको आगे वर्णन करूँगा। आप सब समाहित चित्त से इस पुण्य प्रसंग को श्रवण करने की कृपा करें।

छप्पय

अति प्रसन्न हरि भये कृपा वायक पै कीन्हीं।
लक्ष्मी बल ऐश्वर्य भक्ति अनपायिनि दीन्हीं॥
लौकिक सुख परलोक मोक्ष फल दोनों पाये।
वायक भयो कृतार्थ लौटि प्रभु पुनि पथ आये॥
ग्वाल-बाल बलदेव सँग, हँसत जात मोहन मदन।
आगे माला हार युत, निरख्यो मालीको सदन॥

सुदामा मालीके ऊपर कृपा

(१०३३)

ततः सुदाम्नो भवनं मालाकारस्य जग्मतुः ।
तौ दृष्ट्वा स समुत्थाय ननाम सिरसा भुवि ॥*

(श्री भा० १० स्क० ४१ अ० ४३ श्लो०)

छप्पय

करन कृतारथ चले सुदामा माली घर हरि।
हड़बड़ाइ सो उठ्यो दंडवत करी भूमिपरि॥
विधिवत पूजा करी विविध विधि विनती कीन्हीं।
सबकूँ चन्दन, फूल, पान अरु माला दीन्हीं॥
मालीकी माला गरे, धारें यों राधारमन।
इन्द्रधनुष धारन किये, शोभित मानहु सजल घन॥

सेवक के घर स्वामी के चरण पड़ जायँ तो सेवक को कितनी प्रसन्नता होती है। यदि स्वामी सहसा पधारें, बिना सूचना दिये अकस्मात् आ जायँ, तब तो संभ्रम, विस्मय, प्रसन्नता तथा लज्जा आदि भाव एक साथ उदय होते हैं। स्वयं पधार कर भी

---

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! वायकको वर देकर वनमाली सुदामा माली के घर गये। बलरामजी के सहित भगवान् को आते देखकर सुदामा खड़ा हो गया और उसने सिर से दोनों भाइयों को प्रणाम किया।"

स्वामी सेवा स्वीकार करें या अपने आप ही सेवा करने की आज्ञा प्रदान करें तो उस सेवक से बढ़कर बड़भागी, भाग्यशाली दूसरा कौन हो सकता है। जिस सेवक के घर स्वयं सच्चिदानन्द परात्पर प्रभु पधारकर उसके स्वागत सत्कार को ग्रहण करें, ऐसे सच्चे सेवकके पाद-पद्मों में हमारा पुनः पुनः प्रणाम है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! वायक भक्तको कृतार्थ करके बलदेवजी तथा ग्वाल बालों से घिरे श्यामसुन्दर आगे बढ़े। नई नगरी में ननसाल या ससुराल में जायँ तो नये वस्त्र पहिनकर माला, चन्दन धारण करके ठाठ बाट से जाना चाहिए। भगवान् ने सोचा—"ननसाल में जाना है, सजधजकर जाना चाहिये। नये नये कपड़े तो मिल गये। वायक भक्त ने उन्हें सींसाकर ठीक भी कर दिया। अब चन्दन मालाकी कसर और रह गई।" भगवान् यह सोच ही रहे थे, कि सम्मुख सुदामा मालीका घर दिखाई दिया। बाहर उसकी फूल मालाओंकी दुकान थी, भीतर वह रहता भी था। दुकान पर बड़े सुन्दर सुन्दर हार लटक रहे थे। टटके पुष्पोंकी सुगंधित मालायें रखीं थीं। ग्वालबालोंको तो अब लूटने में कोई संकोच रहा नहीं था। सुन्दर सुन्दर फूलोंकी मालाओंको देखकर वे बोले—"कनुआ भैया! तू कहे तो मारे हाथ। कैसी सुन्दर सुन्दर सुगन्धित सुमनोंकी मनोहर मालायें हैं। इन्हें पहिनकर तो फिर हम लोग हम ही हम दिखाई देंगे। तेरी आज्ञा की देरी है।"

हँसकर भगवान् बोले—"ओ, तुम लोगोंकी दाढ़ गदक गई। भैया! सबके साथ एकसा बर्ताव नहीं होता। लूटपाट तो वहाँ की जाती है, जो अकड़ता है, अपने को शुद्ध लगाता है। यह माली तो सीदा सादा है, माँगनेसे ही दे देगा। जो वस्तु माँगने से मिल जाय, तो फिर उसके लिये बलप्रयोग क्यों किया!

जाय। जो गुड़ से ही मर जाय, उसे विष क्यों दिया जाय। चलो इसके घर चलें।" यह कहकर भगवान् उसके घर में घुस गये।

कोटि कंदर्पों के सदृश सुन्दर श्यामसुन्दर को बलराम तथा ग्वाल बालों के सहित सहसा अपने घर में आते देखकर सुदामा माली तो अपने आपको भूल गया। संभ्रम के साथ तुरन्त उठ खड़ा हुआ और भूमि में लोटकर उसने भगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम किया। भगवान् ने उसे अपने करकमलों से बलपूर्वक उठाया। भगवान् अपने आप ही भूमि पर बैठने लगे। तुरन्त वह दौड़ा दौड़ा गया, सुन्दर आसन ले आया। पहिले राम श्याम को आसनों पर बिठाया। फिर सब ग्वाल बालों के लिए भी आसन दिये। फिर अपनी स्त्री से बोला—"अरे, सुनती है सकट्टू की माँ! देख घर बैठे गंगा आ गई। जिनके दर्शनों को बड़े बड़े ऋषि मुनि कोटि कोटि जन्मों तक जप तप करते हैं, उन्हें भी कभी हृदय में ही दर्शन होते हैं, वे ही परातपर प्रभु प्रत्यक्ष हमारे इन चर्म चक्षुओं के विषय हुए। पूजा की सामग्री तो ले आ।"

यह सुनकर सुदामा की घर वाली तुरन्त कोठरी के भीतर गई। लहँगा के नारेसे बँधे हुए तालियों के गुच्छे में से एक ताली से संदूक खोली। उसमें से केशर कपूर निकाला, धूपबत्ती निकाली। तुरन्त उसने केशर कपूर मिलाकर चन्दन घिसा। एक थाल में अर्घ्य की वस्तुएँ, वस्त्र, धूप, दीप नैवेद्य, पान सुपारी फूल तथा माला आदि पूजा की सामग्री सजाकर कलश में जल भरकर ले आई।

सुदामा ने श्यामसुन्दर के सुकुमार चरणों को विधिपूर्वक प्रक्षालन किया। बलदेवजी के चरणों को धोया। फिर विधिवत अर्घ्य दिया, आचमन कराके उनके ऊपर जल छिड़का, सुन्दर

वस्त्र दिये, चन्दन लगाया, धूप सुलगाकर आगे रखी। दीप दिखाया और फिर मथुरा के पेड़े आगे रखे। सुन्दर लगे हुए पान अर्पण किये, सुपारी ईलायची आदि मुखशुद्धि के निमित्त दी। फिर हाथ जोड़कर गद्‌गद् वाणी से विनय करने लगा— "प्रभो! जीव को जब तक आपके दर्शन नहीं होते, तब तक उसका जन्म व्यर्थ है। जिसने आपका दर्शन कर लिया, उसका जन्म सफल हो गया। आप दोनों भाइयों के पधारने से मेरा संसार-बन्धन सदा के लिए छूट गया। मैं सपरिवार कृतार्थ हो गया। भगवान्! मनुष्य जन्म लेते ही पितृऋण, ऋषिऋण और देवऋण इन तीन ऋणों से दबा रहता है। पितृऋण तो पुत्र उत्पन्न करके छुड़ाया जाता है, ऋषिऋण ज्ञानार्जन करके और देवऋण यज्ञादि से छूटता है। किन्तु जिसने आपके दर्शन कर लिये जो सर्वात्मभाव से आपकी शरण में आ गया, उसके सभी ऋण स्वतः ही छूट जाते हैं। वह न किसी का ऋणी रहता है न किंकर। आज मेरे समस्त पितृगण तर गये, ऋषिगण तृप्त हो गये। देवगण तृप्त हो गये।

आपके यथार्थ स्वरूप को तो ब्रह्मादिदेव, इन्द्रादिलोकपाल भी नहीं जानते, फिर मैं साधारण माला बनाने वाला माली तो जान ही क्या सकता हूँ। फिर भी इतना अवश्य ही जानता हूँ कि आप संसार के कल्याण और उन्नति के ही निमित्त इस अवनि पर कलाओं के सहित अवतीर्ण हुए हैं। यद्यपि आप कल्पवृक्ष के सदृश भजने वालों को ही भजते हैं, उनकी भावना के अनुसार फल देते हैं। फिर भी आप में विषम दृष्टि नहीं है। आप चराचर जीवों के परम सुहृद् हैं, जगत् के आत्म स्वरूप हैं और परम कारुणिक तथा कृपा के सागर हैं। सभी जीव आपकी दृष्टि में समान हैं। यद्यपि मैं पूर्ण भक्त नहीं, आपके चरणों में अनन्य भाव से अनुरक्त नहीं, फिर भी मैं आपका

किङ्कर हूँ, अनुचर हूँ, चरण सेवक हूँ। मेरे योग्य जो सेवा हो उसके लिए आज्ञा प्रदान करें। स्वामी की आज्ञा प्रदान करना, सेवक के ऊपर महती कृपा है।

भगवान हँसकर बोले—"अरे, भैया! इन गाँव के गँवार ग्वारियों ने वन में इतने बड़े बड़े सुगन्धित हार गजरे देखे नहीं, तुम्हारे हारों को देखकर इन सबका मन ललचा उठा है, सबको तू हार पहिना दे। तेरे हार बड़े ही सुन्दर हैं।

५

प्रसन्नता प्रकट करते हुए माली ने कहा—"मेरे काहे के हैं प्रभो! सब आपके ही हैं। आप ही सबके स्वामी हैं। मैं तो आपका नियुक्त किया हुआ सेवक हूँ। स्वामी अपनी वस्तु को सेवक के द्वारा स्वीकार करते हैं, तो इसमें सेवक का क्या जाता है। केवल स्वामी उसके हाथ से ग्रहण करके उसका गौरव बढ़ाते हैं। ये हार, ये मालायें, यदि आपके अनुयायियों, कृपापात्रों के काम आ जायँ तो इससे बढ़कर इनका दूसरा सुन्दर सदुपयोग और हो ही क्या सकता है।"

यह कहकर सुदामा ने प्रसन्न मन से परम प्रशंसनीय सुगंधित पुष्पों की बनी मालाएँ भगवान् को तथा उनके सखाओं को सादर समर्पित की।

अपने सखा साथियों के सहित उन सुगंधित सुन्दर पुष्प मालाओं को पहिनकर भगवान् परम प्रसन्न हुए। उन मालाओं को पहिनकर भगवान् की शोभा बढ़नी ही क्या थी, हाँ भगवान् के श्रीअङ्ग को पाकर वह माला अत्यधिक सुशोभित होने लगी। अपनी प्रसन्नता रूपी सुधा को उस भाग्यशाली पर छिड़कते हुए श्यामसुन्दर कहने लगे—"तुमने हमारे गले में हार पहिनाया, अब हम भी तुम्हें अपने कंठ का हार बनाना चाहते हैं। माँग लो तुम क्या माँगते हो। मैं वर देने के लिए तुम्हारे सम्मुख उपस्थित हूँ, तुम अपनी इच्छानुसार वर माँग लो। संकोच मत करो।"

भगवान् को प्रसन्न देखकर तथा वर देने के लिये उत्सुक देखकर लजाता हुआ सुदामा माली बोला—"हे वर दानियों में श्रेष्ठ प्रभो! यदि आप मुझे वर देना ही चाहते हैं, तो यह वर दीजिये कि योगिजनों द्वारा पतित विश्व वन्दित आपके अरुण वरण के चरणारविन्दों में मेरी अविचल अहैतुकी भक्ति हो।"

भगवान ने कहा—"अच्छी बात है, इसके अतिरिक्त तुम

और भी कोई वर चाहते हो तो माँग लो।"

भगवान् को परम अनुकूल देखकर सुदामा बोला—"हे वरद! यदि आप मुझे दूसरा और भी वर माँगने की आज्ञा देते हैं, तो मेरा दूसरा वर यही है कि जो आपके अनन्य भक्त हैं, जिनको आपकी भक्ति के अतिरिक्त कभी अन्य किसी वस्तु की इच्छा ही नहीं, आपके उन निष्काम अनन्य भक्तों के चरणों में मेरी अनुरक्ति हो। आपके प्रिय भक्तों में मेरा निष्छल प्रेम हो।"

भगवान् ने कहा—"अच्छा यह वर भी दिया। और कोई तीसरा वर माँग लो।"

सुदामा ने दीनता के साथ कहा—"स्वामिन्! और अब वर क्या माँगू। भक्त और भगवान् के चरणों में अनुराग होने पर फिर शेष रहा ही क्या? फिर भी जब आप आज्ञा दे रहे हैं, तो मेरा तीसरा वर यह है कि जितने अण्डज (अण्डों से उत्पन्न होने वाले पक्षी आदि जीव) उद्भिज (पृथिवी को फोड़कर उत्पन्न होने वाले वृक्ष आदि जीव) स्वेदज (पसीना से उत्पन्न होने वाले जूँआ खटमल आदि जीव) तथा जरायुज (झिल्ली से बँधकर उत्पन्न होने वाले मनुष्य, पशु आदि जीव) इस प्रकार सम्पूर्ण जीवों के प्रति मेरे मन में दया के भाव हों। मैं प्राणिमात्र से प्रेम करूँ, मेरे मन में किसी के प्रति द्वेश मात्र न हो।"

भगवान् ने कहा—"अच्छी बात है, यह भी होगा, इसके अतिरिक्त तुम्हें और भी जो वर माँगना हो, माँग लो।"

यह सुनकर सुदामा माली बोला—"प्रभो! मुझे तो जो माँगना था सो माँग लिया, अब मुझे कुछ भी नहीं चाहिए।"

प्रसन्नता प्रकट करते हुए भगवान् बोले—"अच्छी बात है, ये तीन वर तो तुमने माँगे और हमने उन्हें दिया भी। अब हम अपनी ओर से तुम्हें ये वस्तुएँ और देते हैं। तुम्हारी संतानें सुयोग्य होंगी। तुम्हारे वंश का विच्छेद न होगा, तु

यहाँ लक्ष्मी अपने चंचलता के स्वभाव को छोड़कर निश्चल भाव से रहेगी। तुम्हारी इन्द्रियों में अन्त तक यथेष्ट बल रहेगा। तुम्हारी दीर्घायु होगा। संसार में तुम्हारा बड़ा यश होगा और तुम्हारी कान्ति सदा दिव्य बनी रहेगी। जब तक तुम संसार में रहोगे, संसारी भोगों को सुखपूर्वक भोगोगे। अन्त में मेरे लोक को प्राप्त होगे।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् की ढरन ही तो है, न जाने किस पर कब ढर जायँ, कब किस पर प्रसन्न हो जायँ, कब किस पर कृपादृष्टि की वृष्टि कर दें। इस प्रकार माला पहिनाने वाले उस माली को इहलोक तथा परलोक के परमोत्कृष्ट सुखों का वरदान देकर साथियों और बलदेवजी के साथ उसके घर से चल दिये। अब वस्त्र धारण कर लिये। माला पहिन ली, अब सुगन्धित चन्दन सम्पूर्ण अङ्गों में चर्चित करना और शेष रहा, उसके लिए किसी जिजमानिन की खोज, श्यामसुन्दर और आँखें फाड़ फाड़ कर करने लगे।

छप्पय

पूजा तैं प्रभु तुष्ट कहैं वर माली माँगो।
नहिं अदेय कछु मोई व्यर्थ लजाभय त्यागो॥
माँगी माली भक्ति भक्त भगवन्त चरन महँ।
जीवमात्र पै दया रहूँ नित नाथ शरन महँ॥
इच्छित वर, बल, आयु, यश, श्री लौकिक सुख हू दये।
यों माली पै कृपा करि, पुनि हरि आगे बढ़ि गये॥

कुब्जाके ऊपर कृपा

(१०३४)

अथ व्रजन् राजपथेन माधवः,
स्त्रियं गृहीताङ्गविलेपभाजनाम्।
विलोक्य कुब्जां युवतीं वराननाम्,
पप्रच्छ यान्तीं प्रहसन् रसप्रदः ॥*
(श्री भा० १० स्क० ४२ अ० १ श्लो०)

छप्पय

आगे निरखी श्याम कूबरी युवती नारी।
कर महँ चन्दन पात्र लिये मनहर मुखवारी॥
रंग रँगीले रसिक शिरोमनि बोले भामिनि!
चन्दन लैकें जाहु कहाँ सुमुखी गज गामिनि!!
हमें देहु चन्दन सुखद, गंधयुक्त शीतल सरस।
बोली दासी कंस की, धन्य पाउँ हौं प्रभु परस॥

यद्यपि ब्रह्माजी के एक अङ्ग के ही दो भाग हो गये थे। एक से स्त्री बनी, दूसरे से पुरुष। फिर भी बीच में वयमाता ने स्त्रियों के साथ पक्षपात किया। पुरुष तो जहाँ पन्द्रह सोलह वर्षका

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! मालाकार के घर से भगवान् राज मार्ग में जा ही रहे थे कि उन्होंने एक युवती स्त्री को, जिसका मुख सुन्दर था, किन्तु शरीर से कुबड़ी थी, जाते हुए देखा। वह अपने हाथ में चन्दन भरा पात्र लिये हुए थी। उसे देखकर रसप्रद भगवान् हँसते हुए उससे पूछा।

हुआ कि उसका मुँह काला हो जाता है, किन्तु स्त्रियों का मुँख कभी काला नहीं होता। पुरुष तो जहाँ बड़ा हुआ कि उसकी वाणी भारी हो जाती है, स्त्रियों की सदा एकसी बनी रहती है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में सरसता, सुकुमारता, कोमलता, मृदुता, मोहकता, आकर्षण तथा सेवापरायणता अधिक होती है। साहित्य में नवरस बताये हैं किन्तु सब रसों में प्रधान रस है शृङ्गार। शृङ्गार, रस की प्राण नारी है। नारी के बिना शृङ्गार रस अभिव्यक्त ही नहीं होता। शृङ्गार रस का ही नाम मधुर रस है। वह मधुरता नायिका में ही है। इसीलिये उसका नाम कामधुरा है। सरसता को उत्पन्न करने वाली नायिका ही है। ऊसर भूमि में पड़ा बीज तो व्यर्थ हो सकता है, किन्तु कैसा भी नीरस हृदय का पुरुष क्यों न हो अनुरागवती अबला की सरस चितवन से उसका हृदय भी कुछ स्निग्ध सा होने लगता है। फिर जो सरस हृदय वाले हैं, रसिक हैं, उनका हृदय तो अनुरागवती कामधुर को देखकर विचित्र ही हो जाता है। हमारे श्यामसुन्दर तो रसिकशेखर हैं। संसार में रस की रीति तो वे ही जानते हैं। वे निष्ठुर नहीं सदय हैं। वे शुष्क हृदय के नहीं, सरस हैं, उन्हें किसी का भय नहीं, निर्भय हैं। वे प्रेम करना भी जानते हैं और तड़फाना भी जानते हैं। उनके प्रेम में भी अनिवर्चनीय सुख है और उनकी स्मृति में भी एक मीठा मीठा स्वाद है। श्यामसुन्दर तो जीव मात्र के पति हैं। इसीलिये वे चाहें जिससे जैसा सम्बन्ध कर लें, पाप पुण्य स्पर्श नहीं करता। पाप तो परसे सम्बन्ध करने में होता है। उनके लिये कोई पर है ही नहीं। सब उन्हीं के हैं। वे सबके पति हैं। पति से सम्बन्ध करने में तो कोई दोष वाली बात है नहीं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! सुदामा माली पर कृपा करके उसे इच्छानुसार वर देकर श्यामसुन्दर उसके घर से बाहर हुए। बाहर आकर गोप ग्वालों से घिरे हुए बल भैया के साथ वे राज-पथ पर पुनः हँसते खेलते चलने लगे। उसी समय आपके सामने जाती हुई कुबड़ी स्त्री दिखाई दी। वह तीन स्थानों से टेढ़ी थी। शरीर तो उसका टेढ़ा था, किन्तु मुख सीधा, सरल, सुन्दर और शोभायुक्त था। यद्यपि वह तो अपने को युवती मानती थी, किन्तु कमर लच जाने के कारण लोग उसे बुढ़िया माई कहते थे। यद्यपि वह 'बुढ़िया' शब्द को अपने लिये गाली समझती थी, फिर भी लोगों का मुख तो नहीं पकड़ा जाता। लोगों का भी क्या अपराध ? हाथ में डंडा लिये हुए कमर लचाये वह पीछे से बुढ़िया ही लगती थी। लोग पूरी छान बीन तो करते नहीं, अनुमान से जो भी समझ लिया कहने लगते हैं। फिर संसारी लोगों को दूसरों की हँसी उड़ाने में बड़ा आनंद आता है। लोग उसे देखते और हँसते हुए पूछते—"कहो, डोकरी माई ! कमर नवाकर क्या खोजती हो ? कोई तुम्हारी वस्तु खो गई है क्या ?"

कुबड़ी यह सुनकर जल भुनकर राख हो जाती और दाँत पीसकर कहती—"तुम लोगों की बुद्धि खो गई है, उसे ही खोज रही हूँ। लफंगे कहीं के मुझे डोकरी बताते हो। डोकरी तुम्हारी माँ होगी, बहिन होगी।"

लोगों का स्वभाव होता है, जो आदमी जिस नाम से चिढ़ता है, उसी को बार बार कहते हैं। दूसरों को चिढ़ाने में लोगों को आनंद आता है। इसीलिये कुब्जा का नाम डोकरी ही पड़ गया। लड़के जहाँ उसे देखते वहीं कहते 'डोकरी माई ! राम राम।' कभी तो वह सिर नीचा करके चुपचाप निकल जाती। किसी को दो चार खरी खोटी सुना देती। इससे

बड़ा आनंद आता। वह लोगों के विनोद की वस्तु बन गई थी। उसका विवाह नहीं हुआ था, कुबड़ी से विवाह कौन करता। फिर वह दासी थी। दासी भी राजा की। इससे उसे अभिमान भी था। लड़के तो स्वतंत्र होते हैं, वे तो जो चाहें जिसे कह दें, उनके तो सब अपराध क्षम्य माने जाते हैं। अन्य लोग राजदासी समझकर उससे डरते थे। सब लोग उसे अभिमानिनी समझते थे इसलिये उससे हृदय खोलकर कोई बात नहीं करता।

वह हृदय हीना नहीं थी। उसके हृदय में भी अनुराग का स्रोत था, किन्तु अनुकूल वातावरण पाकर वह रुक गई थी। हृदय की बात सबके सम्मुख तो प्रकट नहीं की जाती, सरसता सबके सम्मुख व्यक्त नहीं की जाती। हृदय जिसे पकड़ ले, मन में जिसकी मूरत बस जाय, जिसे देखकर अन्तःकरण में अनुराग की हिलोरें मारने लगे, साथ ही जिससे प्रेम किया जाय, वह भी सरस हो, अनुरागी हो, हृदय हीन न हो, तभी अन्तःकरण के भाव व्यक्त किये जाते हैं। कुब्जा को आज तक उससे निष्छल प्रेम करनेवाला कोई मिला नहीं था। इसीलिये वह प्रेम की प्यासी ही बनी रही। उसकी मन की साध मन में ही दबी रही। किसी से हँसकर दो बातें उसने नहीं की। उसका अङ्ग तीन स्थान से टेढ़ा जो था। लोग बाहरी चाकचिक्य देखकर प्रेम करते हैं, हृदय को तो श्यामसुन्दर ही पहिचानते हैं। उन्होंने प्रेम की प्यासी उस कुब्जा को आते देखा। कोई गम्भीर पुरुष होता, तो देखकर चुपचाप निकल जाता। श्यामसुन्दर तो मुँहफट ठहरे। वे बिना छेड़खानी किये मानते नहीं। अतः हाथ में चन्दन के कटोरे लिये हुए जाती उस कुब्जा को देखकर बोले—"देवीजी! राम राम! कहो अच्छी हो न? कहाँ जा रही हो? क्या हम आपका कुछ परिचय जान

सकते हैं ?"

श्यामसुन्दर के वचनों में कितनी मीठास थी, कुब्जा को ऐसा लगा मानों उसके कर्ण कुहरों में किसी ने अमृत उड़ेल दिया हो, भगवान् के रूप में कितनी मोहकता थी, मानों हृदय में किसी ने गुदगुदी कर दी हो। कूबरी खड़ी हो गई। श्यामसुन्दर के अनुपम रूप लावण्य को देखकर उसकी भीतरी बाहरी सभी इन्द्रियाँ शिथिल हो गईं। चिरकाल से जो अनुराग का स्रोत रुँधा हुआ था, वह फूट निकला। मदनमोहन की एक चितवन में ही वह उनकी चेरी बन गई। उसने अपना सर्वस्व श्यामसुन्दर के चरणों में अर्पण कर दिया। उस मोहनी मूरत पर उसने तन, मन, धन सब वार दिया। अत्यन्त अनुराग भरित हृदय से बोली—"हे श्यामसुन्दर ! मेरा क्या परिचय ? मैं सैरन्ध्री हूँ, दासी हूँ। राजा के यहाँ जो दासियाँ स्नान कराती हैं, पैर धोती हैं, तेल उबटन लगाती हैं, वही मैं हूँ।"

भगवान् बोले—"अच्छा, तुम नाइन हो। कोई बात नहीं। नाइन ठकुरानी ! कहो, तुम्हारे हाथ में यह क्या है ?"

कुब्जा बोली—"महाराज ! मैं कूबड़ी हूँ, तेल उबटन लगाने में तो मुझे असुविधा होती है, अतः राजा ने कृपा करके मेरी नियुक्ति चन्दन घिसने में कर दी है। मैं अपने कूबड़ के कारण शीघ्र शीघ्र चन्दन नहीं घिस सकती। बहुत शनैः शनैः मैं चन्दन घिसती हूँ, इससे बहुत महीन चन्दन घिसा जाता है, इसीलिये महाराज कंस को मेरा घिसा हुआ चन्दन बहुत प्रिय लगता है। उन्हीं के लिये मैं यह सुगन्धित चन्दन लिये जा रही हूँ।"

भगवान् बोले—"सुन्दरि ! जैसी तुम परम सुन्दरी हो, वैसा ही परम सुन्दर यह तुम्हारा घिसा हुआ चन्दन है ? तनिक चन्दन हमें भी दे दोगी क्या ?

भीतर ही भीतर अत्यन्त प्रसन्न होती हुई, ऊपर से लज्जाका भाव प्रकट करती हुई कुब्जा बोली—"महाराज! आप मुझे क्यों बनाते हैं। मैं तो कुरूपा हूँ, तीन स्थान से टेढ़ी हूँ। मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ जो आप मेरे घिसे चन्दन को स्वीकार करें।"

भगवान ने कहा—"सुन्दरि! टेढ़े सभी हैं. मैं भी तो टेढ़ा हूँ, किन्तु जिसमें अपनापन हो जाता है, उसका टेढ़ापन दिखाई नहीं देता। सिंह दूसरों को भयानक लगता है, किन्तु उसके बच्चे तो उसके सिर पर चढ़ जाते हैं। सर्प बाहर टेढ़ा दिखता है, अपने बिल में घुसते समय सीधा हो जाता है। मैं जिसे अपनाता हूँ, उसे टेढ़े से सीधा कर लेता हूँ। तुम अपने टेढ़ेपन की ओर ध्यान मत दो। तुम तो मुझे चन्दन चढ़ा दो। अपने घिसे हाथों का चन्दन मेरे तथा मेरे बड़े भाई के अंगों में लेपन कर दो।"

कुब्जा का रोम रोम खिल उठा। आज उसने मानों निधि पा ली। आज वह अपने हाथों से श्यामसुन्दर के कोमल मृदुल श्रीअंग का स्पर्श करेगी, अपने हाथों से उनके शरीर में चन्दन लगावेगी, अहा, मेरे किस जन्म के पुण्य उदय हो गये। वह स्नेह भरित वाणी में गद्‌गद् कण्ठ से बोली—"प्रभो! इतने दिन जो मैं चन्दन घिसती रही, उसका प्रतिफल आज ही पाया। इतना सुन्दर सुगन्धित महीन चन्दन तो आपके सुकुमार श्री अङ्ग के ही अनुरूप है। इसके लगाने के सर्वश्रेष्ठ पात्र तो आप ही हैं। आज्ञा हो तो मैं आपके श्री अङ्ग में चन्दन लगा दूँ?"

भगवान् हँसते हुए बोले—"भलाई और पूछ पूछ कर" "चुपड़ी और दो दो" लगा दो हम दोनों भाइयों के अङ्गों में।"

ग्वाल बाल बोले—"अरे, कनुआ भैया! अकेले ही अकेले। हम लोगों को कुछ न मिलेगा?

भगवान् हँसकर बोले—"अरे, सारेओ ! तुम चन्दन लगाकर क्या करोगे ? 'वन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद, हम चंदन लगाये लेते हैं, आगे कोई मिठाई की दुकान आवे तो तुम सब-लोग भरपेट मिठाई खा लेना।

गोप ग्वाल बोले—"जब तक मिठाई नहीं मिलती, तब तक चन्दन ही चाट लें थोड़ा सा।"

यह सुनकर हँसते हुए भगवान् बोले—तभी तो मैं कहता हूँ, तुम लोग वन्दर हो। अरे, चन्दन चाटा थोड़े ही जाता है, शरीर पर मला जाता है।

गोपों ने कहा—"अरे, यह बात है, तब तू ही मलवाले शरीर में। हमें तो लड्डू, पेड़ा, खुरचुन और कलाकन्द चाहिये। रसीली गुलाबजामुन हो तब तो कहना ही क्या ?"

गोप यह कह ही रहे थे, कि तब तक कुब्जा ने जो अधिक पीला पीला चन्दन था, जिसमें केशर कस्तूरी कपूर आदि पड़ा था, श्यामसुन्दर के श्रीअङ्ग पर नाभि से ऊपर के भाग में लेपन कर दिया और जो रक्त वर्ण का चन्दन था, उसे गौर वर्ण वाले बलदेवजी के अङ्गों में लगा दिया। वह कुब्जा भगवान् के भुवनमोहन रूप पर, उनकी सिरीस-कुसुम के सदृस सुकुमारता पर, उनके विश्वविदित माधुर्य पर तथा उनकी मन्द मन्द मुसुकानमयी चितवन पर और शहद से भी मीठी मीठी उनकी बातों पर वह मुग्ध हो रही थी। प्रेम के कारण उसका अङ्ग थर थर काँप रहा था। नेत्र अनुराग से झुक झुक जाते थे, रोएँ खड़े हो रहे थे, बार बार अङ्गों मे पुलक हो रहा था। संसार में वस्तुएँ सुलभ हैं, किन्तु प्यारे के अङ्ग का स्पर्श होना यही दुर्लभ वस्तु है।

भगवान ने देखा, कुब्जा तो हमारे रूप पर लट्टू है, उस हृदय अनुराग में भीगा हुआ है। इसे अपने टेढ़े होने पर

दुःख है। मेरे सम्मुख आने पर भी जीव का टेढ़ापन नहीं गया, तो फिर मेरे दर्शनों का फल ही क्या रहा।" मैं इस टेढ़ी युवती को सीधी कर दूँगा, इस लोकनिन्दित अबला को लोक वन्दित सबला बना दूँगा।

यही सब सोचकर श्यामसुन्दर बोले—"देवीजी! तनिक मेरे समीप तो आना।"

अहा! श्यामसुन्दर मुझे समीप बुला रहे हैं, इससे बढ़कर मेरा सौभाग्य क्या हो सकता है। यह सोचकर वह श्यामसुन्दर के और समीप चली गई, उनसे सट सी गई।

भगवान ने अपने दोनों चरणों के पंजे तो उस कुब्जा के पैरों पर रख लिये। जिससे वह पैर न उठा सके। बायें हाथ की दो उँगलियाँ उसके सुन्दर चुबुक में लगा लीं। दायें हाथ को उसके कूबर पर रख दिया। और सहसा ऐसा झटका मारा कि तीन स्थान से टेढ़ी उस कुब्जा के सभी अङ्ग सुन्दर, सीधे, सुडौल और प्रशंसनीय बन गये। श्यामसुन्दर के कृपावलोकन से, उनके सुखद संस्पर्श से वह कूबरी तत्काल विशाल नितम्बों वाली तथा पीन पयोधरों से युक्त एक अत्यन्त ही सुन्दरी सुकुमारी नारी बन गई।

इस अद्भुत आश्चर्यमयी घटना को देखकर सभी गोप ग्वाल परम विस्मित हुए। वे बार बार कुब्जा और श्रीकृष्ण को निहारने लगे। गोपों को विस्मित देखकर हँसते हुए भगवान् बोले—"मेरे गुरु ने एक मंत्र बताया था, जिसके प्रभाव से मैं टेढ़ों को सीधा कर सकता हूँ।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार उस सैरन्ध्री कुब्जा पर कृपा करके केशव जब आगे बढ़ने लगे, तब कुब्जा ने उनका पल्ला पकड़ लिया। अब जैसे कुब्जा ने अपनी कामना श्रीकृष्ण पर प्रकट की, उस प्रसङ्ग को आगे कहूँगा।

छप्पय

चन्दनवारी सहित लेउ यदुनन्दन चन्दन।
अर्पित अच्युत! करूँ तुम्हें सरबसु तन मन धन॥
प्यारे! तुमकूँ पाइ जगत तें हौं मुख मोरूँ।
लोकलाज कुललाज जगत के बन्धन तोरूँ॥
सैरन्ध्री चन्दन दयो, अति आनंदित ह्वै गई।
पग पै पग धरि चुबुक धरि, झटकी अति सीधी भई॥

कुब्जाकी कामना

(१३०५)

एहि वीर गृहं यामो न त्वां त्यक्तुमिहोत्सहे।
त्वयोन्मथित चित्तायाः प्रसीद पुरुषर्षभ ॥*

(श्री भा० १० स्क० ४२ अ० १० श्लो०)

छप्पय

टेढ़ी सीधी भई सुन्दरी अति सुकुमारी।
मधुर मधुर मुसकात निहारे रास विहारी॥
पल्लो पकर्यो कहै कान्त मेरे घर आओ।
मदन ताप तें तपित रमन तन ताप मिटाओ॥
तासु विनय बल ग्वाल मुनि, हँसे श्याम हू हँसि गये।
हौं आऊँगो फिर अवसि, यों कहि आगे चलि दये॥

नर-नारियों के हृदयमें परस्पर में मिलन की कामना न हो, तो संसार बन्धन ही नहो। कामनामें ही सृष्टि बढ़ती है, निष्काम ही सृष्टि चक्र सदा के लिये मेटती है। निष्काम निरीह श्याम के मनमें

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! कुब्जा भगवान् से कहने लगी—"हे वीर! चलिये घर चलें। अब मैं आपको छोड़ नहीं सकती। हे पुरुषसिंह! आपने मेरे मन को मथ डाला है, अतः मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये।

जब सृष्टि की कामना होती है, तो वे ही अपने संकल्प से समस्त सृष्टि की रचना करते हैं। संकल्प का ही सुत काम है, काम की ही उत्पत्ति संकल्प के है। मन मे जैसा भी अच्छा बुरा संकल्प आता है, उसी के अनुसार मन वन जाता है और फिर वह इन्द्रियों को उन विषयों में हठात् प्रेरित करता है। संसारी नर-नारियों से कामना करना यह बन्धन का हेतु है, यदि वही कामना नवल किशोर नटनागर में की जाय, तो संसारी बन्धन कट जाता है। श्रेष्ठ तो यही है, कि हृदय मे कोई कामना ही न हो। निष्काम भाव से नटनागर की सेवा की जाय, यदि मन न माने कोई कामना ही हो तो उसे श्यामसुन्दर के सम्मुख प्रकट करे। वे समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेवाले हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! कूबरी को श्रीकृष्ण भगवान् ने टेढ़ी से सीधी बना दिया। अब तो वह अप्सरा के समान दिखाई देने लगी। ग्वाल बाल उसके ऐसे अद्भुत रूप, लावण्य, सौंदर्य, माधुर्य और शील स्वभाव को देखकर परम विस्मित हुए। वह लज्जायुक्त मंदमुस्कानमयी चितवन से श्यामसुन्दर की ओर निहार रही थी। उसके हृदय का रुँधा हुआ प्रेम स्रोत सहसा फूट पड़ा था। उसमें अनुराग की अविच्छिन्न धारा बह रही थी। अनुराग के आवेग मे वह लोकलाज को भी भूल गई। बीच चौराहे पर ग्वाल बालों से घिरे श्यामसुन्दर का पल्ला पकड़ लिया और व्रीडा के साथ मुसकराती हुई कहने लगी—"हे वीरवर ! आइये घर चलें। प्यारे ! तुमने मेरे चित्त को चुरा लिया है। तुम्हारे बिना मैं रह नहीं सकती। प्रभो ! सुकृत पुरुष जिसे अङ्गीकार कर लेते हैं उसका अन्त तक प्रतिपाल करते हैं। मैंने अपना सर्वस्व आप के श्रीचरणों में समर्पित कर दिया। आज से मैं आपकी क्रीत दासी हुई। अब मुझे कंस से कुछ काम नहीं, मेरे सर्वस्व तो आप हैं। कब से मैं कुसुमायुध के प्रबल प्रहारों से संतप्त हूँ। मकरध्वज अबला

समझकर अकारण ही मेरे हृदय में बाण बेधता रहता है। इसने मेरे हृदय को जर्जर बना दिया है। आप मदन को भी दलन करने वाले हो, कृपा करके इस पापी के प्रहारों से मुझे छुड़ाइये। इस
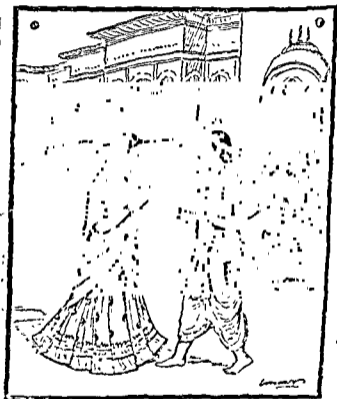
बलशाली के बाणों से मुझ अबला की रक्षा कीजिये। मुझे आज तक ऐसा कोई भी कृपालु नहीं मिला, जिसने मुझ अबला पर दया दिखाई हो। मुझ दासी को अभय दान दिया हो। हे अशरण शरण! मुझे एकमात्र आपका ही सहारा है। आप ही मेरे तन

न्की तपन मिटा सकते हैं। आप ही इस चिरकालकी पिपासिता नारी की प्यास बुझा सकते हैं। आप मन्मथके मनको भी मथन करने वाले हैं। आप बलवानों में श्रेष्ठ हैं, जैसे कोई गजराज छोटे सरमें घुसकर उसके जलको मथ डालता है, उसी प्रकार आपने मेरे हृदय रूपी सरको अपने सौंदर्य माधुर्य बल से मथ डाला है। हे पुरुषोत्तम! आप मेरे घर चलें। मेरा आतिथ्य स्वीकार करें।"

कुब्जाकी ऐसी प्रेममें पगी, नेह में सनी, अनुरागमें डुबाई तथा ममता में लपेटी वाणी सुनकर श्यामसुन्दर इधर उधर देखने लगे, पीछे उन्होंने देखा बलदाऊजी मुस्करा रहे हैं, यह देखकर भगवान हँस पड़े। भगवान् को हँसते देखकर सभी की हँसी फूट पड़ी। हँसते हँसते ग्वाल बाल बोले—"कनुआ भैया! तेरी बृहस्पतीकी दशा आज कल चेत रही है तू जहाँ भी जाता है, वहीं तुझे आदर सत्कार करने वाली मिल जाती है। जा, भैया! माल उड़ा आ। हम तब तक यहीं बैठे हैं।"

हँसकर भगवान् बोले—"अरे, भैयाओ! मैं अकेला ही खा पी आऊँगा, तो फिर तुम सब कहोगे यह बड़ा 'इकखोरा, है। तुम चाहे न भी कहो, बलदाऊ जी तो मानेंगे नहीं।"

कूबरी ने कहा—"नहीं प्राणनाथ! आप सबको लेकर पधारें, बलदाऊजी भी चलें। सब सखा भी आपके साथ चलें।

यह सुनकर कुछ गम्भीर होकर श्यामसुन्दर बोले—"देखो, सुन्दरी! सब कार्योंका समय होता है। असमयका काम अनुचित है, इस समय तुम्हारे घर जाना उचित नहीं। अब मुझे क्षमा करो, मैं फिर कभी आऊँगा।"

प्रेम-कोप प्रदर्शित करती हुई कूबरी बोली—"गोदके को छोड़कर पेटके की आशा क्यों की जाय। उपस्थित अवसर को छोड़कर अगामी अवसर की प्रतीक्षा क्योंकी जाय? मेरा घर तो अभी यहीं है, चार पग चले चलिये, घर पवित्र हो जायगा,

भी प्रसन्नता होती। ऐसी निष्ठुरता क्यों दिखाते हो जीवनधन!"

भगवान् अधिकाधिक गम्भीर होते जा रहे थे। वे बोले— "देखो, इस समय मुझे एक अत्यावश्यक कार्य करना है। जब तक मैं उस कार्य को न कर लूँगा, तब तक किसीके घर नहीं जाऊँगा।" जब मेरा वह कार्य हो जायगा तो पुरुषों के मानसिक रोग-आधिको नाश करने वाले तुम्हारे सुन्दर स्वच्छ सजे सजाये घर में अवश्य ही आऊँगा। तुम मेरा विश्वास करो।"

कुब्जाने तुनक कर कहा—"अजी, महाराज! आप तो टालम-टोलकर रहे हो। फिर आप काहेको आने लगे?"

हँसकर भगवान् बोले—"न आवेंगे, तो जायँगे कहाँ। हमारा कोई यहाँ घर द्वार तो है नहीं। हम तो गृह हीन परदेशी पथिक हैं। बिना आश्रय के बटोही हैं, हमारे लिये तो तुम्हारा ही आश्रय है।" यह कहकर श्यामसुन्दर खिलखिलाकर हँस पड़े। उनकी हँसी में ग्वाल वालोंने भी योग दिया।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार प्रेम पिपासिता कुब्जा को मधुरवाणीसे माधव प्रेमपूर्वक समझाकर आगे बढ़े। वह सैरन्ध्री अनुराग भरितदृष्टिसे श्यामसुन्दरको एक टक निहारती रही, जब तक ग्वालवालों से घिरे गोविन्द दिखाई देते रहे, तब तक वह उन्हें देखती रही। जब आखों से ओझल हो गये, तो मन मसोसकर अत्यन्त व्यग्र चित्तसे घर लौट गई। उसका हृदय धक् धक् कर रहा था, सम्पूर्ण अंग शिथिल हो रहे थे। वह पलंग पर जाकर पड़ गई और श्यामसुन्दरकी सलोनी सूरतका ही ध्यान करती रही।"

इधर मदनमोहन आगे ही बढ़ते जाते थे। नर-नारी उन्हें देखकर खड़े हो जाते, वे पुण्य माला, पान सुपारी तथा चन्दन आदिसे ग्वाल वाल और बलराम सहित वासुदेव का स्वागत सत्कार करते। अटा अटारियों पर चढ़ी कामिनियाँ श्रीकृष्णके कमनीय कटाक्ष वाणोंसे बिधकर शरीर की सुधि बुधि भूलकर

मूर्छित हो जातीं। वे उनके दर्शनों से उदित प्रेम के आवेग में विह्वल सी बन जातीं। उनके केश पाश खुल जाते, उनमें बँधी मल्लिक, माधवी और मालती की मनोहर मालायें खिसककर गिरने लगतीं। उनके वस्त्र ढीले हो जाते और कंकण करों से खिसकने लगते। वे स्तब्ध हुई ज्यों की त्यों कठ पुतलियों के समान, पाषाण की प्रतिमाओं के समान, भीत पर बनी चित्र लिखित कामिनियों के समान खड़ी की खड़ी ही रह जातीं।"

सूतजी कहते हैं—"इस प्रकार भगवान् सभी को अपने दर्शनों से कृतार्थ करते हुए, सबके स्वागत सत्कार को स्वीकृत करते हुए ग्वाल बालों से घिरे आगे बढ़ने लगे। अब उन्हें धनुर्याग की याद आई। वे लोगों से पूछने लगे, धनुर्याग कैसा है, कितना बड़ा है?' भगवान् के इन प्रश्नों का पुरवासी बड़े उल्लास के साथ उत्तर देने लगे।"

छप्पय

प्रिय वियोग तैं दुखित भई कुब्जा अति मन महँ।
गयो काम ज्वर व्याप्त होहि पीड़ा सब तन महँ॥
मूर्छित ह्वै कें परीं पलंग पै करवट बदलति।
करि करि हरि की यादि आह भरि भरिकें सिसकति॥
इत नर नारिनिके नयन, सफल करत प्रभु पथ चलत।
बनिज सुमन चंदन इतर, तैं हरिको स्वागत करत॥

धनुर्यागके धनुष का भङ्ग

(१०३६)

करेण वामेन सलीलमुद्धृतम् ,
सज्यं च कृत्वा निमिषेण पश्यताम् ।
नृणां विकृष्य प्रबभञ्ज मध्यतो—
यथेक्षुदण्डं मदकर्युरुक्रमः ॥*
(श्री भा० १० स्क० ४२ अ० १७ श्लो०)

छप्पय

पुरवासिनि तैं पूछि यज्ञ शाला हरि आये।
देख्यो बलके सहित धनुष प्रभु परम सिहाये॥
रक्षत रोकत रहे श्याम ने धनुष उठायो।
करि ज्यों तोरे ऊख तोरि त्यों तुरत गिरायो॥
धनुष भङ्गको घोर रव, दशहु दिशनि महँ भरि गयो।
अन्तःपुर महँ कंस सुनि, रिपु भय तैं व्याकुल भयो॥

वीर रस में धृष्टता और निर्भयता ये ही रस के पोषक हैं। जो वीर शत्रु के सम्मुख संकोच करता है अथवा उसकी हानि

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! भगवान् ने अपने बायें हाथ से धनुष को उठाकर, चढ़ाकर पल भर में खींचकर उसको उसी प्रकार बीच से तोड़ दिया, जिस प्रकार महापराक्रमी मतवाला हाथी ईख को तोड़ डालता है।"

करने में भय खाता है, वह साहस पूर्ण वीरता के कामकर नहीं सकता। शत्रुकी जितनी भी हानिकी जाय, उसके हृदय को जितना ही भयभीत बनाया जाय, उतना ही उत्तम है। यहाँ तक कि शत्रु के पुरमें प्रवेश करे तो द्वार से न जाय, दीवाल तोड़कर जाय। उसकी आवश्यक वस्तुओं पर अधिकार करले या उन्हें नष्ट करदे, ऐसे साहस पूर्ण कार्य करे, कि शत्रुके मन में भी भय बैठ जाय, उसे अपनी विजय में सन्देह होने लगे। बल उतना काम नहीं देता, जितना कौशल काम देता हैं। शत्रुका साहस टूट गया, तो वह बली भी होगा, तो निर्बल बन जायगा, यदि शत्रुका उत्साह बना रहा तो निर्बल होने पर भी उसकी विजय हो सकती है। रण में हृदयका उत्साह ही मुख्य है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! कुब्जापर कृपा करके कृपालु कृष्ण राजपथ पर आगे बढ़ते ही गये। वे मार्ग में जिससे बातें करते उसीसे पूछते—"हमने सुना है, तुम्हारे राजा एक बड़ा भारी धनुपयज्ञ कर रहे हैं। वह यज्ञ मंडप कहाँ है? वह कैसा धनुप है? कहाँ रखा है? उसमे क्या विशेपता है? लोग कहते—

भगवान्! आप सामने ही चलें जायँ, ये जो राज पथके दोनों ओर झंडियाँ बँधी हुई हैं, इनके ही सहारे सहारे चले जायँ। आगे एक बड़ा भारी सजा सजाया फाटक आवेगा। उसमें तीन द्वार होंगे, एक सबसे बड़ा बीचका द्वार,उसके आस पास दो छोटे छोटे द्वार। बड़े द्वारसे आपको प्रवेश करते ही सजा सजाया यज्ञ मंडप दिखाई देगा। उसीमें भीतर चले जायँ। वहाँ एक ओर यज्ञ शाला है, दूसरी ओर अखाड़ा है, बड़ी बड़ी मंचें रहती हैं। बीचमें जानेका बड़ा पथ है। आप दाईं ओर न जाकर बाँई ओर जायँ, वहाँ यज्ञ मंडपके समीप ही आपको बड़ भारी धनुप रखा मिलेगा वह बड़ा भारी धनुप है। सुनते हैं, वह शिवजी का धनुप है।"

लोगोंकी बातें सुनकर भगवान् परम प्रसन्न हुए। वे राजपथ

पर हँसते खेलते बढ़ते ही गये। आगे जाकर उन्हें बड़ा भारी सजा सजाया फाटक मिला। उस पर संगीन लिये हुए प्रहरी घूम रहे थे। सहस्रों प्रहरी पंक्ति बद्ध खड़े थे, बहुतसे अस्त्र शस्त्रों को धारण किये प्रहरा दे रहे थे। ग्वाल बालों सहित भगवान्को देखकर वे चकित चकित दृष्टिसे उनकी ओर निहारने लगे। भगवान् सीधे यज्ञशाला में घुस गये। वहाँ भी धनुषकी रक्षाके लिये सैनिक खड़े थे। भगवान् निर्भय होकर धनुषके समीप तक चले गये। सैनिक उनके प्रभाव से ऐसे प्रभावित हो गये, कि किसी ने उन्हें रोका नहीं।

यज्ञशालामें पहुँचकर भगवान्ने देखा, धनुष एक बड़ी ही सुन्दर लिपापुती वेदी पर रखा है। उस पर अनेक सुगंधित पुष्पों की मालायें चढ़ाई गई हैं। अत्यन्त सुगन्धित धूपके जलनेसे वहाँ का सम्पूर्ण स्थान सुवासित हो रहा है। मङ्गल घट स्थान-स्थान पर रखे हुए हैं। गौके घृतके दीपक जल रहे हैं, धनुष बड़ा ही वैभव शाली प्रतीत हो रहा है। भगवान् ने पूछा—"क्या धनुर्याग का धनुष यही है?"

रक्षकोंने कहा—"हाँ, यही है।"

भगवान् ने कहा—"तनिक इसे उठाकर देखलें। सूखी हसी हँसकर सैनिकोंने कहा—"क्या तुम्हें अपने प्राण प्यारे नहीं हैं? हम जैसे तीन सौ साठ भी लगें तो भी धनुषको नहीं उठा सकते।"

भगवान् ने कहा—"नहीं उठा सकेंगे, तो छोड़ देंगे। तनिक उठाकर तो देखें।"

डाँटकर सैनिकोंने कहा—"सावधान! यदि तुम धनुषकी ओर बढ़े या उसे हाथ लगाया तो फिर उचित न होगा।

भगवान् बोले—"उचित न होगा, अनुचित हो जायगा। कोई बात नहीं, हम तो देखेंगे ही। यह कहकर वे तुरंत धाड़ेको

तोड़कर धनुष के समीप पहुँच गये। सैनिक जब तक छूना मत छूना मत, यही कहते रहे तब तक भगवान् ने बलात्कार से धनुष को उठा ही तो लिया। उठाकर सबके देखते देखते उसे तिनके के भाँति बाँये हाथ से ऊपर चढ़ा लिया, एक पल में ही उसे उसी प्रकार तोड़ डाला, जैसे हाथी ऊख के गन्ने को तोड़ डालता है। अथवा बालक जैसे खेल में सनकी छिली लकड़ी को तोड़ देता है।

धनुष के टूट जाने से दशों दिशाओं में महान् शब्द हुआ। उसकी ध्वनि से दशों दिशायें शब्दायमान हो गईं। आकाश पाताल में सर्वत्र वह भयंकर शब्द व्याप्त हो गया। कंस अपने अन्तःपुर में लेटा था, और श्री कृष्णचन्द के ही सम्बन्ध में सोच रहा था, कि सहसा इतना भयंकर शब्द सुनकर उसके रोंये खड़े हो गये। भय के कारण उसका शरीर काँपने लगा। उसने सेवकों से पूछा—"क्या हुआ, क्या हुआ ? यह किसका इतना भयंकर शब्द हुआ।" तुरन्त ही सेवकों ने दौड़कर पता लगाया और सूचना दी—"प्रभो वृन्दावन से गोप ग्वालों के साथ दो चंचल छोकरे आये हैं। उनमें से एक काला है, एक गोरा है। ये दोनों अन्य गोप कुमारों को साथ लिये हुए मखशाला में आये हैं। उनमें से काले छोकरे ने उठाकर यज्ञीय धनुष को तोड़ डाला है।"

क्रोध में भरकर कंस ने कहा—"अरे, तुम लोग इतने सैनिक हो। ऐसे दुर्विनीत छोकरों को मार क्यों नहीं डालते। तुरन्त उन्हें पकड़कर मेरे पास लाओ। यदि ये कुछ चींचपड़ करें तो उन्हें मार डालो।"

कंस की ऐसी आज्ञा पाकर वे आततायी असुरगण अपने अनुचरों के सहित अत्यंत कुपित होकर राम-श्याम को पकड़ने दौड़े। वे वहाँ से चिल्लाने लगे—"देखो, ये धृष्ट बालक न पावें। इन्हें घेर कर पकड़ लो, बाँध दो। यदि ये चींचपड़ करें, तो बिना विचारे गोली मार दो। महाराज की

आज्ञा है ।"

भगवान् उन आसुरी प्रकृति के सैनिकों का अभिप्राय समझ गये । उन्होंने सामने पड़े धनुष का एक टुकड़ा उठा लिया । दूसरे को बलराम जी ने उठा लिया । और फिर दे दनादन दे दनादन, सैनिकों को मारने लगे । भगवान् के एक प्रहार में ही सैकड़ों सैनिक चारों कोने चित्त होकर लेट जाते । इस प्रकार सबको सनके पौनों की भाँति सुलाते हुए भगवान् निर्भय होकर आगे बढ़ने लगे, सैनिक उनके प्रभाव से ऐसे प्रभावित हुए कि वे अस्त्र शस्त्र चलाना सब भूल गये । पहिले तो उन्होंने वहाँ के रक्षक सैनिकों को मारा । फिर कंस के भेजे हुए सैनिक को परास्त किया, और निर्भय होकर हँसते हुए ग्वाल बालों के सहित मखशाला से बाहर हो गये, सेना वालों में से किसी का भी साहस न हुआ कि वे उनका पीछा करें ।

क्षण भर में यह बात सम्पूर्ण पुरी में फैल गई । धोबी की मृत्यु से ही सब चकित हो रहे थे, जब सबने धनुर्भंग की बात सुनी, तब तो सबके आश्चर्य का ठिकाना ही न रहा । वे राम-श्याम का प्रबल प्रचण्ड, पराक्रम, अद्भुत ओज तेज, प्रकृष्ट प्रगल्भता और उनका अद्भुत रूप लावण्य देखकर भौंचक्के से रह गये । सब परस्पर में कहने लगे—"भैया ! ये मनुष्य नहीं हैं । मनुष्यों में इतना पराक्रम संभव नहीं । ये कोई देवता हैं । कंस का अब कल्याण नहीं । इनके सम्मुख किसकी चल सकती है । टूटे धनुष के खंडों से इतनी भारी सेना को परास्त कर सकते हैं, उनके लिये असंभव कार्य कुछभी नहीं है ।"

सूत जी कहते हैं—"मुनियों ! इस प्रकार ग्वाल बालों से घिरे राम-श्याम निर्भय होकर मथुरा पुरी में भ्रमण कर रहे थे, कि उन्होंने देखा भगवान भुवनभास्कर अस्ताचल में अपना मुख छिपा रहे हैं सूर्यास्त देखकर भगवान ने बलदाऊ जी से कहा—

भैया! अब चलना चाहिये, नहीं बाबा बिगड़ेंगे। हम उनसे कह आये थे, कि हम सूर्यास्त के पूर्व ही आ जायँगे।"

गोपों ने भी भगवान् की हाँ में हाँ मिलाते हुए कहा—"हाँ भैया! अब चलना चाहिए।"

सबकी सम्मति समझकर शीघ्रता से श्यामसुन्दर सबको साथ लिये हुए सीधे डेरे की ओर चले और कुछ ही क्षणों में उस बगीचा में पहुँच गये जहाँ व्रजराज नंद जी अपने अन्य गोपों के साथ ठहरे हुए श्यामसुन्दर की प्रतीक्षा कर रहे थे।"

ग्वाल बालोंके साथ राम-श्याम को आते देखकर प्रेम के साथ नन्दजीने कहा—"अरे, भाई! तुम लोग कहाँ चले गये थे। हम कबसे तुम्हारी बाट जोह रहे।"

डर के मारे किसीने मथुराकी कोई बात नहीं बताई। श्यामसुन्दर शीघ्रतासे बोल उठे—"बाबा! मथुरा पुरी तो बड़ी सुन्दर है। इसमें बड़े ऊँचे ऊँचे मकान हैं। सब लोग बड़े दानी हैं। देखो, हमें कितने वस्त्र दिये, फूल माला, इतर चंदन आदि से हमारा सत्कार किया, किन्तु किसीने खीर नहीं खिलाई। बाबा! मैयाने हमारे लिये जो खीर बाँध दी थी, वह हो तो हमें दीजिये। बड़ी भूख लग रही है।"

भूखकी बात सुनकर नंदजी और कुछ पूछना भूल गये। झट पट उन्होंने छकड़ोंमेंसे खीर निकाली। सेवकोंने यमुना जलसे राम-श्याम तथा अन्य गोपोंके हाथ, पैर, धुलाये। हाथ, पैर, मुख धोकर सब पंक्ति बद्ध बैठ गये। नंदजी सबको खीर, पूड़ी, मठरी परोसी। सबने प्रेम पूर्वक भर पेट मैयाके हाथके बने पदार्थोंको पाया। फिर कंस क्या करना चाहता है, इसी विचार पर [illegible] करते करते सो गये।

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! जिस दिन भगवान [illegible] ब्रजाङ्गनाओंने जो मथुरापुरीकी महिलाओंके भाग्य···

बातें कहीं थीं, वे सब ज्यों की त्यों यहाँ आकर पूरी हुईं। मथुरा निवासिनी नागरियाँ नटनागरकी बाँकी, झाँकी करके कृतार्थ हो गईं। क्यों न हो भगवान् का भुवनमोहन रूप, लावण्य ही ऐसा है। ब्रह्मादिक देव इन्द्रादिक लोकपाल सदा यह कामना करते रहते हैं, कि लक्ष्मीजी तनिक हमारी ओर निहारदें। तनिक हम पर कटाक्ष पात करदें। इसके लिये वे सहस्रों वर्षों तक घोर तप करते हैं फिर भी लक्ष्मीजी उनकी ओर नहीं देखतीं। ऐसी भुवनमोहिनी लक्ष्मीजी भी सबको ठुकराकर जिनके चरणोंमें सदा लोटती रहती हैं। यहाँ आकर वे अपनी चंचलता को छोड़ देती हैं, ऐसे पुरुषोत्तम भगवान् के श्रीअङ्गों को निहारकर मथुरा निवासिनी महिलालयें मुग्ध हो गईं, तो इसमें आश्चर्य करने की ही कौन सी बात है। अब जिस प्रकार कंसने राम-श्याम को मरवानेके लिये मल्लशालाको सजवाया और मल्लोंको एकत्रित किया, उस प्रसङ्गको मैं आप सबको सुनाऊँगा।

छप्पय

आये सैनिक भृत्य श्याम बलरामहिँ पकरन।
मारो काटो पकरिलेहु चिल्लावें खल गन॥
राम-श्यामने शस्त्र लै सैनिक आवत।
दोनों भाई धनुष खंड लै चले भगावत॥
सबकूँ मारि भगाइ कें, निज डेरा पै आइ कें।
सोये सुख तैं सखनि संग, खीर सुहारी खाइ कें॥

कंस और उसकी मल्लशाला

(१०३७)

कंसस्तु धनुषो भंङ्ग रक्षिणां स्वबलस्य च ।
वधं निशम्य गोविन्दरामविक्रीडितं परम् ॥
दीर्घप्रजागरो भीतो दुर्निमित्तानि दुर्मतिः ।
बहून्यचष्टोभयथा मृत्योर्दौत्यकराणि च ॥*

(श्री भा० १० स्क० ४२ अ० २६, २७ श्लो०)

छप्पय

कंस धनुष को भंग पराजय सेनाकी सुनि ।
भयो दुखित दुःस्वप्न निहारे डरपे पुनि पुनि ॥
जागत देखे वृक्ष सुनहरे निज सिर धड बिनु ।
निशि महँ निरखे स्वप्न दिगम्बर तैल मल्यो तनु ॥
केश, कपास, कुलाल, कुश, काक, कंक, कपि, कृष्णपट ।
नकटी, विधवा, मृतक नर, रुण्डमाल, यमभट विकट ॥

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! कंस ने जब यह बात सुनी कि राम और कृष्ण के लिये धनुष का भङ्ग करना, रक्षकों तथा मेरी सेना के लोगों का वध करना एक क्रीडा की सी बात थी । तब तो उस दुर्मति को रात्रि में बहुत देर तक निद्रा नहीं आई, यह बहुत डर गया । उसे सोते और जागते दोनों दशाओं में बहुत से मृत्यु सूचक अपशकुन दिखाई दिये ।"

स्वप्न में, जाग्रत में, नित्य ही ऐसी घटना घटती रहती हैं, जिनसे हम अपने आगामी जीवन का शुभाशुभ समझ सकते हैं। शकुन शास्त्र प्रत्येक घटना का फल बताता है। अमुक व्यक्ति सम्मुख आ गया तो उसका क्या फल है, अमुक वस्तु प्रातःकाल उठते ही दीखी तो उसका क्या फल है। स्वप्न में यह देखा तो उसका क्या फल है। ये फल कभी झूँठ भी निकलते हैं और प्रत्यक्ष फल भी देते हैं। अशुभ लक्षणों का अशुभ फल होता है। आस्तिक प्रकृति वाले इन पर विश्वास करते है। नास्तिक अपने अहंकार के कारण इनकी ओर ध्यान नहीं देते। जैसा होना होता है, वैसा ही बुद्धि हो जाती है और वैसी ही प्रवृत्ति होनहार के लक्षण प्रथम दिखाई देने पर भी प्राणी उन कार्यों में हठात् प्रवृत्त होता है, इसे भवितव्यता के अतिरिक्त और कह ही क्या सकते?

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् तो धनुष को तोड़कर सैनिकों को परास्त करके अपने डेरे पर चले गये और खाकर सो गये, किन्तु कंस को नींद कहाँ। वह तो श्रीकृष्ण के ही सम्बन्ध में सोचता रहा। उसने विचार किया—"अवश्य ही श्रीकृष्ण विचित्र पुरुष हैं। देखो, उसे इतने भारी धनुष को तोड़ने में तनिक भी प्रयास न पड़ा मेरे इतने सेवकों को, इतने शिक्षित सैनिकों को खेल खेल में ही उसने परास्त कर दिया बिना अस्त्र शस्त्रों की सहायता के केवल धनुष के टुकड़ों से ही दोनों भाइयों ने सबको मार भगाया। हो न हो-इसी के हाथ मेरी मृत्यु है।" इस प्रकार अनेक प्रकार की चिन्ता करता हुआ वह रात्रि में बड़ी देर तक जागता रहा।

इसके पूर्व से ही उसे जागते समय, सोते समय, अपनी मृत्यु के लक्षण दिखायी देने लगे। वह जब दर्पण में मुख देखता, तो उसे और अंग तो दिखायी पड़ते, किन्तु धड़ पर

सिर दिखायी न देता । चन्द्रमा उसे बिना किसी रोग के दो दिखायी देने लगे । अन्य तारा भी दो दो दिखाई पड़ते । जलते हुए दीपक की शिखा भी दो दिखायी देतीं । बालू या कीच में चलता तो उसे उसमें अपने पैरों के चिन्ह नहीं दीख पड़ते । अपनी छाया में छिद्र दिखायी देते, दोनों उँगलियों से कसकर कान बन्द कर लेने पर जो सन सन शब्द सुनायी देता, वह नहीं सुनायी पड़ता । वृक्ष उसे सुवर्ण वर्ण के दिखायी देते । आँखों से उसे अपनी नाक न दिखाई देती, उसकी नासिका टेढ़ी हो गई थी । उसे अपने हित की बात प्रिय नहीं लगती थी । इन सबके अतिरिक्त मरने वालों के जितने लक्षण होते हैं, उसमें प्रत्यक्ष दिखायी देने लगे । ये तो जाग्रत के चिन्ह हैं ।

इसी प्रकार उसे स्वप्न भी मृत्यु सूचक दिखायी देने लगे । कभी वह देखता, आकाश से सूर्य चन्द्र भी पृथिवी पर उतर आये हैं । उनके अनेकों टुकड़े हो गये हैं । उस रात्रि में पाश हाथ में लिये हुए बड़े बड़े भयंकर कारे मुसुंड यम के दूत दिखाई देते । बहुत से बिना वस्त्र के दिगम्बर पुरुष नाचते, गाते, हँसते, दिखाई देते । भयंकर रूप वाली नग्ना विधवा, बाल, बखेरे नाचती हुई दीख पड़तीं । बहुत सी स्त्रियाँ खड्ग धारण किये, खप्पर हाथ में लिये, जिह्वा निकाले दिखायी देतीं । उनमें से कोई नरमुन्डों की माला पहिने हुए हैं, कोई काले वस्त्र पहिने हैं । कोई तैल लगाये हुए हैं । इनके अतिरिक्त वह स्वप्न में भालू, सूकर, कौआ, गृद्ध, चील, बन्दर, कुक्कुट, नक्र तथा शृगाल आदि अशुभ पशु पक्षियों को निरन्तर देखने लगा । वह राख की ढेरी, ताल फल, केश, कपाश, अङ्गार, उल्कापात, जलती चिता, मृतक पुरुष, कुम्हार का चाक, तेली, अधजली लकड़ी, सूखा काष्ठ, केवल कुशा, ईंधन, दौड़ता हुआ बिना सुर का धड़, गर्जन करता हुआ कटा सिर, बिना जल का तड़ाग, बिना

के जलती हुई, तड़पती हुई मछली, जलता हुआ जंगल, गलित कुष्ट का रोगी, बाल खुले हुए नग्न नृत्य करता चाँडाल, क्रोध में भरकर शाप देता हुआ ब्राह्मण, क्रोध के कारण रोते हुए गेरू कपड़े पहिने योगी, सन्यासी आदि को उसने स्वप्न में देखा।

इन सबके अतिरिक्त विवाह के लिये जाती हुई बरात, दाँत पीसते हुए दौड़ते हुए प्रेतगण, स्वयं अपने को तेल लगाये नग्न होकर दक्षिण दिशा की ओर, जपा कुसुम की माला पहिने, गधे पर चढ़कर दक्षिण की ओर जाते हुए देखा। मरा हुआ गौ का बछड़ा, मृतक मृग तथा अन्य भी मृतक जीव उसे दिखाई देने लगे, अपने नख केशों को गिरते हुए उसने देखा। शिलाओं की, भस्म की तथा रक्त की वृष्टि, कटे हुए वृक्षों का गिरना, आदि अनेक मृतक सूचक स्वप्न उसे दिखायी देने लगे। इस प्रकार सोते जागते इन चिन्हों को देखकर वह बड़ा चिन्तित हुआ। फिर भी उसने राम कृष्ण के मरवा डालने का विचार नहीं छोड़ा।

जिस दिन भगवान् ने धनुर्भंग किया, उस रात्रि में कंस को निद्रा नहीं आई। उसके मन में भाँति भाँति के विचारों का बवंडर उठ रहा था। जब भी तनिक झपकी लगती, तभी वह भयंकर स्वप्न देखता। इस प्रकार बड़े कष्ट से उसने उस रात्रि को बिताया। प्रातःकाल हुआ। भगवान् भुवनभास्कर उदित होकर हँसने लगे। वे आकाश में छाये मेघों को फाड़कर ऊपर चढ़े। उठते ही उसने आज्ञा दी—"आज मल्ल क्रीड़ा उत्सव मनाया जाय। मल्लशाला को भलीभाँति सजाया जाय।"

राजा की आज्ञा पाकर बहुत से राजभक्त कर्मचारी रंगभूमि को सजाने में लग गये। सड़कों पर सुगन्धित जल का छिड़काव किया गया। स्थान स्थान पर मालायें लटकाई गईं। परम सुगंधित धूप, सुन्दर कलई किये पात्रों में सुलगाई गई। ध्वजा,

पताका, तोरण, बन्दनवार तथा अन्य मंगल वस्तुयें लटकायी गयीं। द्वार पर शङ्ख, मृदङ्ग, तूरी, भेरी तथा अन्यान्य मंगलमय बाद्य बजने लगे। चारों ओर कोलाहल होने लगा। बड़े बड़े सुन्दर सजे हुए मंच बिछाये गये। उन पर बहुमूल्य सुवर्ण के काम किये हुए रेशमी बिस्तर बिछाये गये। सभी वर्णों के बैठने का सुन्दर प्रबन्ध था। स्त्रियों के बैठने का पृथक प्रबन्ध था। उनकी ओर जाली लगी हुई थी। मंडलीक राजाओं के बैठने की मंचें आकर्षक ढंग से सजायी गई थी। महाराज कंस के बैठने को सर्वोच्च सिंहासन सावधानी के साथ सजाया गया था।

जब सब सजावट हो गई और सभा भर गई, तो सेवकों ने सूचना दी—"प्रभो! रंगभूमि भलीभाँति सजा दी गयी है। प्रजा के लोग भी आ गये हैं, वे अत्यन्त उत्सुकता के साथ महाराज की प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

यह सुनते ही कंस ने राजकीय वस्त्र भूषणों को धारण किया, हाथी के हौदे पर छत्र लगा, चँवर लेकर सेवक खड़े हुए। बाजे वाले बाजे बजाने लगे। सुवर्ण की सीढ़ी से सेवकों के सहारे कंस हाथी पर बैठा। पीछे पीछे पुरोहित तथा मंत्रीगण भी अपने अपने यानों में चले। प्रजा के लोग जय जयकार कर रहे थे। बाजे वाले बजाते जाते थे। इस प्रकार कंस ने रंगभूमि में प्रवेश किया। सब लोगों ने उठकर राज को अभ्युत्थान दिया। पुरोहित और मंत्रियों से घिरा हुआ वह अपने सिंहासन पर बैठ गया। मंडलेश्वर राजाओं के मध्य में राजसिंहासन पर बैठा वह इसी प्रकार शोभित हो रहा था, जैसे राहुग्रस्त क्षीण चन्द्र ताराओं के बीच में शोभा पा रहा हो। दुःस्वप्नों के कारण उसका चित्त उद्विग्न हो रहा था। उसका हृदय धक् धक् कर रहा था, उसके बैठ जाने पर सभी वर्ण के लोग, नगर वासी, पुरवासी, ग्रामवासी तथा जनपदवासी लोग अपनी अपनी

योग्यतानुसार अपने अपने आसनों पर आसीन हुए।

उसी समय मल्लशाला का निरीक्षक आया। उसने देखा, अखाड़ा भलीभाँति गोड़ा गया है। उसमें चिकनी मुलायम कंकड़ियों से रहित मिट्टी डाली गई है। उसमें यथेष्ट तेल और घी मिलाया गया है। चारों ओर से वह सुरक्षित है। इस प्रकार देखकर उसने राजा से निवेदन किया—"अन्नदाता! मल्लशाला का सभी कार्य सुव्यवस्थित है, आज्ञा हो तो मल्लों को बुलाया जाय।"

कंस के "हाँ" कहने पर सभी मल्लों को सूचना दी गई। वे सब शरीर में तेल मले हुए लँगोटा, कछनी और जाँघियों को लिये हुए, छातियों को निकाले, हाथों को हिलाते, गाजे बाजे के सहित, बल के मद में अकड़ते हुए आये। उनके साथ उनके सिखाने वाले गुरु भी थे। वे टोली टोली में पृथक पृथक आते थे और राजा को अभिवादन करके नियत स्थान में बैठते जाते थे। उन मल्लों में चाणूर, मुष्टिक, शल, तोशल तथा कूट आदि मुख्य थे। मल्ल सभी अपने अपने यूथों में शिष्टाचार से बैठे थे। वे लड़ने के लिये उतावले हो रहे थे।

उसी समय कंस ने पूछा—"व्रज से नंदादि गोप नहीं आये हैं क्या?

सेवकों ने कहा—"हाँ प्रभो! व्रज से बहुत से गोप आये हैं। वे सब छकड़ों में सामग्रियाँ भरे हुए द्वार पर महाराज की आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे हैं। उनके लिये जैसी आज्ञा हो वही किया जाय।"

कंस ने कहा—"उन सबको यहीं बुला लो।"

जो आज्ञा, कहकर सेवक चला गया और कुछ ही देर में वह नंदादि समस्त गोपों को लेकर भीतर आया। गोप अपने हाथों में दही, दूध घृत और नवनीत के बड़े बड़े पात्र लिये

हुए थे। उनके साथ सुवर्ण की मुद्रायें भी थीं। वे सब ला लाकर राजा के सम्मुख रखते जाते थे और एक ओर खड़े होते जाते थे। गोपों की इतनी भेंट को देखकर सभी विस्मित हो रहे थे।

कंस ने गोपों को आज्ञा दी, वे मंचों पर जाकर बैठ जायँ। कंस की आज्ञा पाकर गोपगण यथा स्थान मंचों पर बैठ गये। सेवकों ने भेट की सामग्री को भंडार गृह में पहुँचा दिया। वह गोपों में से राम-कृष्ण दोनों भाइयों को आँख फाड़ फाड़कर देखने लगा। किन्तु उसे उनमें राम-कृष्ण दोनों भाई दिखाई न दिये। तब उसने नन्दजी से पूछा—"व्रजराज! तुम्हारे दोनों बालक बलदेव और श्रीकृष्ण नहीं आये क्या?"

नन्दजी ने विनीत भाव से शिष्टाचार पूर्वक कहा—"प्रभो! वे लोग कुछ पीछे रह गये थे। अभी आते होंगे। मैं पुनः एक गोप को भेजता हूँ, वह उन्हें शीघ्र ही रंगभूमि में ले आवेगा।"

कंस ने कहा—"हमने सुना है, तुम्हारे पुत्र मल्ल विद्या में बड़े निपुण हैं। बहुत लड़ते हैं। हम भी उनका मल्लयुद्ध देखना चाहते हैं।"

अवहेलनाके स्वर में नन्दजी ने कहा—"अजी, महाराज! वे तो अभी दुधमुहे बच्चे ही हैं। वे लड़ना भिड़ना क्या जानें। वैसे ही कुछ अखाड़े में दंड बैठक करते हैं। आपस में ही खेलमाल करते रहते हैं। यहाँ इतने बड़े बड़े नामी मल्ल हैं यहाँ वे क्या लड़ सकते हैं।

कंस ने कहा—"अच्छा उन्हें शीघ्र बुला लो।"

नन्दजी ने कहा—"बहुत अच्छा महाराज! मैंने आदमी को भेज दिया है, वे आते ही होंगे।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! नन्दजी की ऐसी बात सुनकर कंस बड़ी उत्सुकता से राम-श्याम की प्रतीक्षा करने लगा।

छप्पय

सुनत कंस धनु भंग निशा निद्रा नहिँ आयी।
प्रातकाल उठि रङ्गभूमि खलने सजवायी॥
गाजे वाजे सहित मल्लशाला महँ आयो।
गोपनि कूँ पुनि भेंट सहित सम्मुख बुलवायो॥
कहे नन्द तैं सुत कहाँ, राम श्याम जो सुदृढ़ अँग।
नन्दराय बोले प्रभो! आवत हौंगे सखनि सँग॥

कुवलयापीड़ हाथी का वध

(१०३८)

रंगद्वारं समासाद्य तस्मिन्नागमवस्थितम् ।
अपश्यत्कुवलयापीडं कृष्णोऽम्बष्ठप्रचोदितम् ॥*

(श्री भा० १० स्क० ४३ अ० २ श्लो०)

छप्पय

रामश्याम वध हेतु प्रथम अम्बष्ठ सिखायो ।
रंग भूमिके द्वार कुवलयापीड़ पठायो ॥
इत सजि-बजि बलश्याम द्वारपै गजढिंग आये ।
'हाथी तुरत हटाउ' वचन हस्तिपहिँ सुनाये ॥
सुनत कुपित हस्तिप भयो, रौंद्यो करि हरिपै तुरत ।
गज प्रहार पुनि पुनि करत, हँसत श्याम इत उत फिरत ॥

शक्ति भर जीव मृत्यु से बचने के अनेक उपाय करता है, किन्तु काल रूप भगवान जिसके द्वार पर आ गये हैं, उसे बचा कौन सकता है। फिर भी जीव मानता नहीं। वह अपने बल पुरुषार्थ के भरोसे विधि की रेख पर भी मेख मारना चाहता है,

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! जब श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् रंगशाला के द्वार पर पहुँचे, तो उन्होंने देखा, वहाँ हाथी के हाँकने वाले अम्बष्ठ की प्रेरणा से कुवलयापीड हाथी खड़ा हुआ है ।

किन्तु भगवान् जो करना चाहते हैं, उसे कोई भी अन्यथा नहीं कर सकता। जिसका मृत्यु समय आ जाता है, वह जान बूझ कर मृत्यु के मुख में घुस जाता है। जिसकी मृत्यु नहीं आती वह मृत्यु के मुख से भी सकुशल निकल जाता है। जीवन मृत्यु क्या है, भगवान् का खेल है, उनकी क्रीड़ा है। जो उनकी क्रीड़ा का अंग बन जाता है। वह जन्म मृत्यु के चक्कर से छूट जाता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! कल भगवान ने मल्लशाला में बहुत मार धाड़ की थी, अतः आज प्रातःकाल देर तक सोते रहे। व्रजराज ने स्नेहवश उनको जगाया नहीं। वे नित्य कर्मों से निवृत्त होकर भेंट की सामग्री लेकर गोपों के साथ कंस के महोत्सव में चले गये, सेवकों से कह गये—"जब ये उठें, तो उन्हें लेकर वहाँ मल्लशाला में आ जायँ। ये लोग मल्लयुद्ध के बड़े प्रेमी हैं।"

नंदजी के चले जाने पर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम जी सोते से उठे। उठकर वे शौचादि से निवृत्त हुए। यमुनाजी में स्नान किया और अपने मामा का जीवित ही तर्पण भी कर दिया, कि पीछे मामा को कोई जल देनेवाला जाने होगा या नहीं। मार्ग तो उनका देखा ही था, अतः दोनों भाई कल के लूटे हुए सुन्दर स्वच्छ सजीले वस्त्र पहिनकर दो सिंह शावकों की भाँति उछलते कूदते चल दिये। दूर से ही उन्हें शंख, भेरी, दुन्दुभि तथा नगाड़े आदि की सुमधुर ध्वनि सुनाई दी साथ ही मल्लों के ताल ठोकने के भी शब्द सुनाई दिये।

कंस ने श्रीकृष्ण और बलरामजी को मारने के अनेक उपाय सोच रखे थे। उसके यहाँ कुवलयापीड़ नामक हाथी था, वह बड़ा ही मदोन्मत्त था, कंस ने एक कुशल अम्बष्ठ (हाथी हाँकने वाले को) बुलाकर चेतावनी दे रखी थी। तुम उस कुवलयापीड़ मदोन्मत्त हाथी को सुरा पिलाकर द्वार पर रखना। जब रामश्याम दोनों आवें, तो उन्हें जैसे हो तैसे हाथी से

कुचलवा देना। सब समझेंगे, भूल हो गई। इस प्रकार मेरा अपयश भी न होगा और अनायास बिना श्रम के मेरे शत्रु भी मार जायंगे।" कंस की आज्ञा पाकर हस्तिपने ऐसा ही किया। कुवलयापीड़ एक तो वैसे ही मदोन्मत्त था, फिर तिस पर भी उसने यथेष्ट सुरा पान की थी। इस प्रकार वह अपने गंडों से मद चुआता हुआ द्वार पर अम्बष्ठ के द्वारा इधर उधर घुमाया जाने लगा। हस्तिपक को राजकर्मचारियों ने प्रथम से ही राम कृष्ण को चिन्हा दिया था। अतः उन्हें आते देखकर उसने उनके ही ओर हाथी को बढ़ाया। हाथी बलरामजी तथा श्रीकृष्ण की ओर बढ़ा और उनका रास्ता रोककर खड़ा हो गया।

भगवान् ने देखा—"रंग भूमि के द्वार को रोके मदोन्मत्त हाथी खड़ा है और हस्तिपक बार बार उसे प्रहार करने को प्रेरित कर रहा है, तब तो डाँटकर भगवान् बोले—"ओ! हस्तिपक के बच्चे! तेरी आँखें फूट गई हैं क्या। या मोतियाबिन्दु उतर आया है, जो तू आदमियों के ऊपर हाथी को रौंद रहा है। चल हट। हाथी को द्वार दूर हटा ले जा। नहीं तो बच्चूजी! अभी यमसदन के पथ के पथिक बन जाओगे।"

हस्तिपक को तो राजकर्मचारी होने का मद था, अतः अकड़-कर बोला—"चलो, हटो, आये कहाँ के यमसदन का मार्ग दिखाने वाले, तुम जैसे यहाँ तीन सौ आठ छोकरे नित्य प्रति आते हैं। यदि हम सबके लिये ऐसे हाथी को हटाते रहें, तो हम तो कर चुके अम्बष्ठ का काम। तुम्हें निकलना हो तो निकल जाओ। अपनी जिह्वा में लगाम लगाओ, फिर कभी किसी राजकर्मचारी से ऐसी बात कही, तो सब ग्वारियापना भूल जाओगे। यह वृन्दावन नहीं है। यह मथुरा है, मथुरा।"

भगवान् बोले—"चच्चाजी ! हमारा काम बछड़ों को नाथने का है, कैसा ही चंचल चपल बछड़ा क्यों न हो; हम उसे नाथ देते हैं। तेरी जिह्वा बहुत चबर चबर कर रही है, या तो तू इसे कोष में रख, नहीं अभी एक तमाचा मारूँगा, तो पीठ की ओर सिर हो जायगा। सब राजकर्मचारीपना भूल जायगा।"

भगवान् के ऐसे वचन सुनकर हस्तिपक परम कुपित हुआ, उसने अंकुश मारकर स्वभाव से ही कुपित मतवाले हाथी को और भी अधिक कुपित कर दिया। वह मृत्युकाल, अन्तक और यम के समान राम-श्याम की ओर झपटा।

भगवान् तो कमर कसकर, अपनी बिथुरी हुई अलकावली को बाँधकर प्रथम से ही युद्ध के लिये तैयार खड़े थे। अपनी ओर आते हुए हाथी को हरि ने एक अवसर दिया। हाथी ने सर्वप्रथम श्यामसुन्दर को अपनी सूँड़ में लपेट लिया। वह उन्हें ज्यों ही उठाकर घुमाना चाहता था त्यों ही भगवान् सट्ट से उसकी सूँड़ से सटककर उसमें सड़ाक से एक चपत जमाकर उसके पैरों में दुबक गये।

हाथी के शरीर में बल तो बहुत होता है, किन्तु उसकी आँखें छोटी होने से उसे दीखता कम है। सामने की वस्तुओं को तो देख लेता है, किन्तु पैरों में छिपी वस्तु को नहीं देख सकता। भगवान् को सम्मुख न पाकर वह सूँड़ से सूँघकर उनका पता लगाने लगा। ज्यों ही उसने उन्हें फिर पकड़ा त्यों ही नवनीत के गोले के समान श्यामसुन्दर फिर उसकी सूँड़ से सटक गये। अबके पीछे जाकर उन्होंने महाबलशाली उस गजराज की पूँछ पकड़कर चकई की भाँति घुमाया। गरुड़ जैसे सर्प को खींच ले जाता है, वैसे ही उस हाथी की पूँछ पकड़कर भगवान् सौ हाथ पीछे उसे खींच ले गये।

बड़े डील डौल वाला हाथी वह अपनी चूतड़ों को घुमाता

हुआ इधर से उधर घूमने लगा। भगवान् को तो अभ्यास था। वे तो बालकपन से ही बछड़ों की पूँछ पकड़कर उनके साथ साथ घूमते थे। अतः उसकी पूँछ से लटककर बालक की भाँति घूमने लगे। कभी दायीं ओर घूम जाते कभी बाँयीं ओर। दर्शक इस दृश्य को कुतूहल के साथ देख रहे थे। सहसा श्यामसुन्दर ने उतर कर हाथी के सम्मुख आकर उसमे कसकर एक चपत जमाया। चपत के लगते ही वह तिलमिला उठा। उन्हें पकड़ने दौड़ा। हाथी को ऐसा लगा मानों मैंने मदनमोहन को अब पकड़ा, अब पकड़ा।" किन्तु योगीजन भी जिन्हें सहस्रों वर्षों की समाधि से नहीं पकड़ सकते, उन्हें यह क्षुद्र हाथी कैसे पकड़ सकता है। भगवान् उसकी पकड़ में नहीं आये।

हाथी भी दौड़ते दौड़ते थक गया। भगवान् कभी दायीं ओर भाग जाते कभी बायीं ओर। उनका शरीर तो हलका और कसा हुआ था, हाथी का शरीर बड़े डील डौल का भारी था, अतः उसे मुड़ने में कष्ट होता था। एक बार हाथी को ऐसा लगा मानो श्यामसुन्दर नीचे भूमि पर गिर गये हैं। उससे क्रोधित होकर भगवान् को मार डालने के उद्देश्य से अपने दाँतों से पृथिवी पर प्रहार किया, किन्तु भगवान प्रहार से पूर्व ही उठकर चले गये थे, उसका प्रहार उसी प्रकार व्यर्थ हुआ जैसे पत्थर की बड़ी भारी शिला पर करवाल का प्रहार व्यर्थ होता।

हस्तिपक उसे पुनः पुनः प्रभु पर प्रहार करने को प्रेरित कर रहा था। उसे इस प्रकार बार बार झपटते देखकर मधुसूदन ने अपने हाथों से उसकी सूँड़ को पकड़ कर उसे पट्ट से पृथिवी पर पटक दिया।

हाथी जहाँ गिरा कि फिर उसका साहस नष्ट हो जाता है, उसके गिरते ही उछलकर भगवान् उसके मस्तक पर चढ़ दोनों पैरों से दबाकर उसके दोनों दाँतों को उखाड़ लिया।

तक भगवान् के पास कोई अस्त्र सत्र नहीं था। अब, दो हाथी के दाँत मिल गय। एक तो अपने बड़े भाई को दे दिया। और एक से दैदनादन दैदनादन हाथी और हाथी के हाँकने वाले की कुटाई करने लगे। कुछ ही क्षणों में दोनों निर्जीव होकर भूमि पर मृतक होकर गिर गये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियों! भगवान् के ऐसे अद्‌भुत अमानुषिक साहस और बल को देखकर सभी दर्शक चकित हो गये। सब समझने लगे—"इनसे बढ़कर बली संसार में और कोई नहीं

है। भगवान हाथी और हाथीके हाँकने वालेको मारकर अपने बड़े भाई से बोले—"बल भैया ! चलो अब रङ्गभूमिका भी आनन्द लो, द्वार पर इस डाँगर को मारकर हमने श्रीगणेश किया। बलदेवजी अपने छोटे भाई की ऐसी वीरता देखकर बड़े प्रसन्न हुए। वे कुछ भी न बोले, हँसते हुए श्यामसुन्दर के साथ रंगभूमि में प्रवेश करने लगे।

छप्पय

दामोदरने दुष्ट देखिकें दाव दबोच्यो।
किचिकिचाय सिर चढ़े शस्त्र हित मनमहँ सोच्यो॥
लीयेदाँत उखारि दयो इक बल इक धारयो।
हस्तिप हाथी सहित दाँत तैं ही हरि मारयो॥
छोड़ि मृतक गज सभा महँ, प्रविशे नहिं देरी करी।
रही भावना जासु जस, तस ताकूँ दीखे हरी॥

रङ्गभूमिमें भगवान्‌के भावनानुसार दर्शन

(१०३६)

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्।
गोपानां स्वजनोऽसतांक्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोःशिशुः॥
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनाम्।
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः॥*

(श्री भा० १० स्क० ४३ अ० १७ श्लो०)

छप्पय

मल्लनि निरखे वज्र कामिनी काम विचारें।
नर निरखें नररत्न गोपनिज स्वजन निहारें॥
शासक खल नृप लखें जनक जननी निज शिशु सम।
जन साधारन लखें भयकर कंस मनहु यम॥
इष्टदेव यादव गनहिं, परम तत्व योगी लखहिं।
वस्तु एक परि भावतें भली बुरी प्रानी कहहिं॥

यह संसार भावमय है, इसमें न कोई अच्छा न बुरा न सुन्दर न असुन्दर सब भावना के ऊपर निर्भय है। एक जिसे हम

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! जिस समय अपने बड़े भाई बलदेवजी के सहित भगवान् रङ्गशाला में गये तो वे भिन्न भिन्न प्रकार के लोगों के भावनानुसार भिन्न भिन्न प्रकार के दिखाई दिये। वे मल्लोंको वज्र, पुरुषों को पुरुषोत्तम,युवतियों को साक्षात् कामदेव, गोपों को स्वजन,

अपना मित्र मान लेते हैं, उसमें बहुत सी बुराइयें होने पर भी हमें दिखाई नहीं देतीं. जिन्हें हम अपना शत्रु समझ लेते हैं, उनके गुण भी दोष दिखाई देने लगते हैं. एक ही वस्तु एक पुरुष को बुरी लगती है, दूसरे को अच्छी. यदि अच्छाई, बुराई, वस्तु में होती तो अच्छी वस्तु सबको अच्छी लगती, बुरी सबको बुरी लगती, किन्तु संसार में ऐसा नहीं देखा गया है। जिन्हें हम भगवान् मानकर पूजते हैं, दूसरे उन्हें धूर्त, कपटी, नीच, बताते हैं। जिन्हें हम अधम पतित समझते हैं, दूसरे लोग उनपर अपना सर्वस्व वार देते हैं। और की बात छोड़ो कल तक हमारा जिनमें दुष्ट भाव था, वे बुरे लगते थे, आज भाव बदलने से वे ही सबसे सुन्दर लगने लगते हैं। अच्छाई बुराई का आरोप भावना करती है।

एक राजकुमार एक लड़की पर आसक्त हो गया। उसका मन उसमें फँस गया। उसके पीछे वह पागल होकर वन वन फिरने लगा। उसके सम्बन्ध की अनेकों किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं। वह अपनी प्रेयसी की प्रसन्नता के लिये सब कुछ करने को सदा उद्यत रहता और निरन्तर उसीका स्मरण चिन्तन करते हुए रोता रहता। सोते जागते उसे उसीकी स्मृति बनी रहती। रात्रि रात्रि भर वह उसी के लिये रोता रहता। किसी दूसरे राजकुमार ने उसे समझाया—"कुमार! ऐसा भी क्या पागलपन। अरे, कोई सुन्दरी हो तो बात थी। भैया वह तो काली कलूटी है। तुम उसके पीछे इतने पागल क्यों हो रहे हो।" राजकुमार ने कहा—"मित्रवर! तुम तो उसका रूप अपनी आँखों से देखकर

दुष्टराजाओं को अपना शासन करने वाले, माता पिता को अपनी मृत्यु, अज्ञों को भयंकर, योगियों को परम तत्त्व यादवों को अपने इष्टदेव के रूप दिखाई दिये।

हो। यदि मेरी आँखों से तुम उसे देखते, तो ऐसी बात कभी मुख से न निकालते। मेरी आँखें तो ऐसा सौंदर्य संसार में कहीं भी नहीं देखतीं।

इस कथा के कहने का अभिप्राय है, कि आँखें तो सबकी एक सी ही हैं, किन्तु जैसा जिसके भीतर भाव होता है, आँखें भावानुसार ही देखती हैं। इसी प्रकार भगवान् हैं। जिनकी जैसी भावना होती है, उन्हें भगवान वैसे ही दिखाई देने लगते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! कुवलयापीड़ हाथी को और उसके हाँकने वाले हस्तिपक को मारकर, मानों द्वार की वलि देकर, ग्वाल वालों से घिरकर बलदेवजी सहित बनवारी ने रङ्ग भूमि में प्रवेश किया। उस समय उन दोनों भाइयों की शोभा विचित्र थी। दोनों ही किशोरावस्थापन्न थे, दोनों ही सुन्दर स्वच्छ धुले हुए वस्त्र पहिने थे, एक के वस्त्र रेशमी नील रंग के थे, दूसरे के पीत वर्ण के थे। दोनों ही मोर मुकुट धारण किये हुए थे, दोनों के ही दोनों बाल बिखेरे हुए थे। बलरामजी एक कान में कुण्डल पहिने थे, और श्यामसुन्दर के दोनों कर्णकमनीय, कनक कुण्डलों से सुशोभित थे। हाथी के मरने से श्यामसुन्दर के श्रीअंग पर जो स्वेद के कण झलक रहे थे, वे ऐसे प्रतीत होते थे मानों किसी ने नन्हें-नन्हें मोती जड दिये हों। बीच-बीच में हाथी के रक्त की छोटी छोटी बूँदें ऐसी लगती थीं, मानों लालों को चूर्ण करके मोतियों में मिला दिया हो। हाथी के गंडों से निसृत मद बीच-बीच में वस्त्रों से चिपक गया था, वह ऐसा प्रतीत होता था मानों नवनीत छिड़क दिया हो सुन्दर नासिका युक्त मधुर मुख, स्वेद और रक्त विन्दुओं के कारण ओस और केशर से युक्त कमल के सदृश प्रतीत हो रहे थे। दोनों ही अपने कंधों पर रक्त से सने हाथी दाँतों को आयुध के स्थान पर रखे थे। इस प्रकार वे सखाओं से घिरे ऐसे लगते थे, मानों ऋषियों से घिरे नरनारायण हों, अथवा देवताओं से घिरे

अश्विनीकुमार अथवा गन्धर्वों से घिरे कामदेव और वसन्त, अथवा सद्गुणों से घिरे साकार सौंदर्यमाधुर्य, जा रहे हों।

गोप ग्वाल उनके पीछे पीछे जा रहे थे, वे दोनों मत्त, गयन्दों की भाँति बड़े उत्साहसे उछलते, कूदते जा रहे थे, दोनों के वेष विचित्र थे, दोनों ही बहुमूल्य आभूषणोंको धारण किये हुए थे। दोनोंके ही कंठोंमें अम्लान पुष्पोंकी सुगन्धित मालायें पड़ी हुई थीं। दोनोंके ही वस्त्र भड़कीले और मनोहर थे, दोनोंकी ही भुजायें विशाल, गोल और लम्बी थीं। वे दोनों ही दर्शकोंके चित्तोंको अपनी चितवनसे चुराने में चतुर थे। वे शरीरसे हृष्ट पुष्ट थे, उनके सभी अंग सुडौल सुगठित और शोभायुक्त थे। वे सजे, बजे ऐसे प्रतीत होते थे, मानो रङ्ग मंचपर नाट्य करने दो नट जा रहे हों। उनके प्रवेश करने ही दर्शकोंमें हड़बड़ी मच गई। सबकी दृष्टियोंके वे ही एक मात्र केन्द्र बन गये। बलरामजीके सहित श्रीकृष्ण एक ही थे। देखने वाले भी सब आँखों से देख रहे थे। सब आँखोंकी पुतलियाँ एक सी ही काली थीं। सबमें दो पलक थी, सबकी वरोनी एक सी थीं। किन्तु भावनामें अन्तर हो जाने से वे एक सी ही आँखों से देखे जाने पर भी भिन्न भिन्न प्रकार के दिखाई देने लगे।

अखाड़ेमें जो लड़नेके लिये मल्ल आये थे, जो अपनेको सर्व श्रेष्ठ योद्धा और द्वंद्वयुद्धमें अद्वितीय लगाते थे, वे भगवान् के सुगठित सुन्दर शरीरको देखकर भौचक्केसे रह गये। वे अनुभव करने लगे, इनका शरीर हाड़ मांस का नहीं बना है। ये वज्र के बने हुए पुरुष हैं। द्वन्द युद्ध में इन्हें कोई भी मल्ल नहीं जीत सकता। वे अनुभव करने लगे, ये असमत्कार पुरुष हैं।

सज्जन पुरुषोंको भगवान ऐसे प्रतीत हुए मानों सर्वगुण सम्पन्न ये कोई पुरुष सिंह है, मनुष्योंमें रत्न हैं, नरोत्तम हैं। पुरुषर्षभ हैं. युवती स्त्रियाँ तो भगवानके अनुपम आनन, उनके भुवनमोहन

सौंदर्य और अंगोंकी सुकुमारताको देखकर उन्हें मूर्तिमान कामदेव समझने लगीं। उनके नेत्र उनकी ओरसे हटाने पर भी नहीं हटते थे। वे बहुत चाहती थीं उन्हें न देखें, किन्तु ऐसा लगता था, मानों किसीने आँखों पर जादू कर दिया हो उनके अनुपम आनन पर चिपक सी गईं थीं।

जो गोप ग्वाल बैठे थे, उन्हें उनमें कोई विशेषता दिखाई नहीं देती थी। इतने बड़े हाथीको खेल खेल में बालक होकर मार आये हैं, इससे उन्हें कुछ आश्चर्य हो रहा हो, सो बात नहीं है। वे उन्हें पूर्ववत अपने जाति भाई स्वजन ही समझते थे। वे वहीं से पुकारने लगे—"कनुआ भैया! यहाँ हमारे पास स्थान खाली है, यहीं आकर बैठ जा। आगे भीड़ भाड़ है। बलुआ भैया तू भी आजा। वहाँ मल्लोंकी भीड़ भाड़में लोगोंकी धक्कम धुक्कीमें तू पिच जायगा।" अपने समवयस्क गोपोंकी ऐसी सीधी सरल, छल, कपटसे हीन बातें सुनकर रामश्याम हँस जाते, और शनैः शनैः आँखोंके संकेत से उन्हें समझाते हुए आगे बढ़ते जाते। वहाँ पर जो कंसके अनुयायी दुष्ट मंडलीक राजा बैठे थे, उन सबको प्रतीत हुआ, कि ये तो हमारे शासक हैं। अवश्य ही हमें इनके आधीन होकर ही कार्य करना पड़ेगा। इनके ओज, तेज और पराक्रमके आगे हम क्या हैं, ऐसा सोचकर वे मन ही मन डरके कारण थर थर काँपने लगे।

दुष्ट कंसने चिढ़ानेके लिये कारावाससे वसुदेवजी और देवकीको भी निकलवाकर उस सभा में बुलाया था। भगवती देवकी देवी तो स्त्रियों में बैठी थी और वसुदेवजी यादवों के बीचमें बैठे। उन दोनोंको भगवान् ऐसे लगे मानों ये वे ही शिशु हैं। जिन्हें जन्मके समय हम गोकुल कर आये थे। माता तथा पिता को वे भोले भाले अबोध शिशुसे प्रतीत हुए। किन्तु इसके विपरीत कंसको वे अपनी साक्षात् मृत्यु दिखाई दिये, उसका हृदय थर थर

काँपने लगा, मानों कोई बलात् मेरे प्राणों को शरीर से निकाल रहा हो। वह डर गया और इधर उधर अपनी रक्षा का स्थान खोजने लगा। यद्यपि वह बड़ा मनस्वी धीर, वीर और साहसी था, किन्तु भगवान् के आगे उसका धैर्य, साहस सब चकनाचूर हो गया। जब उसने कुवलयापीड़ हाथी तथा हस्तिपक की मृत्यु की बात सुनी, तब तो वह और भी अधिक घबराया, किन्तु सबके सम्मुख अपनी प्रतिष्ठा बचाने को वह सिंहासन से उठा नहीं। साहस करके हृदय को थामकर वह बैठा ही रहा।

जो वहाँ पर ज्ञानी, ध्यानी ऋषि मुनि योगी बैठे थे, उन्होंने अपने अपने तप और योग का प्रत्यक्ष फल ही अनुभव किया। जो भोज, दाशार्हि, कुक्कुर, मधु तथा वृष्णिवंशी यादव वहाँ बैठे थे, उन्हें वे अपने दुःख को मिटाने वाले, सभी सुखों को देने वाले इष्टदेव दिखाई दिये। इस प्रकार उनमें पाँच रस और छै उपरस इग्यार हू भाव दिखाई दिये। जैसे मल्लों को तो वे साक्षात् रौद्ररस दिखाई दिये। सज्जन पुरुषों को उनके श्रीअंग में अद्भुत रस का साक्षात्कार हुआ। स्त्रियों को वे मूर्तिमान शृंगाररस जान पड़े। गोप ग्वालों को अपने साथ हँसने खेलने वाला हास्य प्रिय श्याम ही दिखाई दिया। दुष्ट राजाओं को वे मूर्तिमान वीर रस दिखाई दिये। माता-पिता के लिये तो वे वात्सल्यरस की सरिता बहाने वाले शिशु थे ही। कंस ने उन त्रिभुवन मोहन श्यामसुन्दर के सुकुमार शरीर में भयानकरस का अनुभव किया। ज्ञानियों की वे बड़ी बड़ी दाढ़ निकाले पशु पक्षियों को निगलते हुए काल रूप बीभत्सरस के पोषक जान पड़े। परम तत्व की उपासना करने वाले योगियों ने उन्हें साक्षात् शान्तरस समझा। यादवों ने प्रेम तथा भक्ति का मूर्तिमान् विग्रह माना। इस प्रकार अपनी अपनी भावना के अनुसार सभी ने सभी रस का अनुभव किया, क्योंकि भगवान् सर्वगत, सर्वज्ञ और सर्वरस रूप हैं।

कंस के कुछ अनुयायियों और द्वेषियों को छोड़कर उनके दर्शनों से सभी के हृदय में एक प्रकार की गुदगुदी सी होने लगी। मञ्चों पर बैठे समस्त नगर निवासी तथा देशवासी नर नारियों के नयन नन्दनन्दन के मुखारविन्द की ओर लग गये। वे उन्हें उसी प्रकार निहार रहे थे, मानों आकाश में उदित दो सूर्यो को बड़े भारी सरोवर में खिले कमल निहार रहे हों। वे निरन्तर उन दोनों नटवरों को निहारते रहने पर भी अतृप्त ही बने रहे। नयनों से उनके मनोहर मुख की सरस माधुरी का पान करके वे मदमाते से बन रहे थे, किसी के पलक गिर नहीं रहे थे। अपलक भाव से श्यामसुन्दर को निहार रहे थे। ऐसा लगता था, मानों वे अपने नेत्रों को पानपत्र बनाकर उनकी सम्पूर्ण सरसता को पी जाना चाहते हैं। उन सबकी जिह्वा लपलपा सी रही थी, मानों उनकी मधुरिमा को चाटने के लिए उत्सुक बने हुए हैं। नासिका बार-बार शब्द कर रही थी, मानों उनकी गन्ध को अपने में भर लेना चाहती है। सबकी भुजाओं में कँपकँपी छूट रही थी, उनके भावों से ऐसा प्रतीत होता था, मानों वे कह रहे हों एक बार श्याम मिल जायँ, तो हम इन्हें अपनी दोनों बाहुओं से ऐसे बाँध लें कि फिर कभी छोड़े ही नहीं।"

राम-श्याम के मनमोहक रूप को लखकर उनके अलौकिक गुणों को सुनकर उनके अभूतपूर्व माधुर्य को देखकर तथा संसार में दुर्लभ निर्भयता को निहार कर सबके सब उन्हीं के सम्बन्ध में चर्चा करने लगे।

सूतजीकहते हैं—"मुनियो! स्त्रियों का तो स्वभाव ही होता है, फुस फुस करने का। चाहे घूँघट एक हाथ लम्बा काढ़ लेंगी, किन्तु जहाँ चार मिलकर बैठेंगी, वहाँ बिना फुस-फुसाये मानेंगी नहीं। उनमें से कोई कहती—"देखो, ये कैसे सुन्दर बालक हैं

यशोदा की ही कोख धन्य है, जिसने ऐसे सुन्दर बालकों को जन्म दिया है। जिसे ऐसे बालकों की माता बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इस पर एक वाचाल स्त्री अपनी जानकारी दिखाती हुई कहती—"अरी, तुमको कुछ पता तो है नहीं। ये यशोदा के गर्भ से पैदा नहीं हुए हैं।"

इस पर समीप में ही बैठी कोई घूँघट वाली बहू पूछती—"चाचीजी! हम तो सुनते हैं, ये व्रजराज नन्द के ही बालक हैं।

मुँह मटकाकर हाथों को घुमाकर वह अवहेलना के स्वर में कहती—"तुम्हारे सुनने से क्या हुआ। यथार्थ बात यह नहीं है। ये श्रीकृष्ण तो देवकी के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं और ये बलराम रोहिणी के पुत्र हैं। दोनों नन्द के पुत्र न होकर वसुदेव के पुत्र हैं।"

इस पर दूसरी पूछती—"चाचीजी! वेचारे वसुदेवजी तो अपनी बहू देवकी के संग कंस के कारावास में बहुत दिनों से बन्द हैं, उनके सब पुत्र तो कंस ने पैदा होते ही मार डाले। ये वसुदेवजी के पुत्र कैसे हो सकते हैं। फिर व्रज में ये पहुँचे कैसे?"

बुढ़िया का मुख चमकने लगा। उसका स्वर कुछ धीमा पड़ गया। वे फुसुर फुसुर करती हुई कहने लगी—"यह सबके सम्मुख प्रकट करने योग्य बात नहीं है। बात यह हुई कि श्रीकृष्ण पैदा तो हुए थे करावास में ही, किन्तु वसुदेवजी चुपके से रातों रात इन्हें नन्दजी के यहाँ गोकुल में पहुँचा आये। वहीं ये पले पोसे, वहीं बढ़े, नन्द यशोदा ने इन्हें पुत्र के समान पालन किया।

दूसरी मोटी सी बोली—"तो फिर चाचाजी! ये बलराम कैसे हुए?"

बुढ़िया सिर हिलाकर बोली—"बलराम कैसे हुए तो भगवान्

जाने। किन्तु वसुदेव की एक बहू रोहिणी नन्द के गोकुल में पहिले से ही छिपकर रहती थी, उसीसे यह बलदेव हुए। यह कोई बात छिपी थोड़े ही है, इसे तो सब जानते हैं। ये दोनों बड़े बली हैं। श्रीकृष्ण ने पूतना को पछाड़ा, तृणावर्त को मारा, यमलार्जुन वृक्षों को तोड़ा, शङ्ख चूण यक्ष को पछाड़ा, केशी का उदर फाड़ा, धेनुक के दोनों पैर पकड़कर, घुमाकर प्राणहीन बनाया, गोपों को दावानल से बचाया, तथा इन्होंने कालिय नाग को नाथा। इन्द्र के मान का मर्दन इन्होंने ही किया, सात दिन तक कन्नीउँगली पर सात कोष लम्बे गोवर्धन पर्वत को ये ही धारण किये रहे। ब्रजवासियों के वर्षा से, वायु से इन्होंने रक्षा की। समस्त गौओं के प्राण आँधी पानी से इन्होंने ही बचाये। ये दूसरे इनके बड़े भाई गौर रंग के नीलवस्त्र पहिने, एक कुण्डल धारण किये बलरामजी हैं। ये भी कुछ कम नहीं है, इन्होंने भी प्रलम्बासुर, वत्सासुर और बकासुर आदि अनेक असुरों को मारा है, सुनते हैं, ये दोनों श्रीमन्नारायण के अंश हैं।"

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! यह बुढ़िया कह रही है, कि धेनुकासुर को श्रीकृष्ण ने मारा किन्तु बात तो ऐसी नहीं है, उसे तो बलरामजी ने मारा था। और वत्सासुर,बकासुर का वध तो श्रीकृष्ण ने किया था, यह इनको बलरामजी के द्वारा मरा हुआ कह रही है। यह क्या बात है?"

हँसकर सूतजी बोले—"महाराज! ये जो बातूनी स्त्रियाँ होती हैं, जैसा भी अंट संट उलटा सीधा सुन लेती हैं, वैसा ही सब के सामने कहने लगती हैं। कहते समय यहाँ तक कह देती हैं, इसे तो हमने अपनी आँखों से देखा है। स्त्रियों को क्या दोष दें, पुरुषों में इससे भी अधिक दोष होता है, किसी की झूठी, सच्ची कोई तनिक सी बात सुन भर लें, उसे तिल का पहाड़ बना देंगे। बिना जड़मूल की बात उड़ा देंगे, वृन्दावन से मथुरा कुछ दूर नहीं

है, दूसरों के मुख से कुछ की कुछ सुनने से लोक में सच्ची बातें झूठी प्रसिद्ध हो जाती हैं, झूठी सच्ची इसलिये सहसा लोकापवाद पर विश्वास न कर लेना चाहिये। लोग छान बीन तो करते नहीं, जो सुनते हैं, उसी को बिगाड़कर कह देते हैं।"

शौनकजीने कहा—"हाँ, सूतजी! बात तो ऐसी ही है, अच्छा और सुनाइये। फिर क्या हुआ?"

सूतजी बोले—"महाराज! हुआ क्या, सबका हृदय प्रेम से भरा हुआ था। राम-श्याम की भोली भाली सुन्दर सूरत को देखकर सभी गद्‌गद् हो रहे थे। युवती स्त्रियों का हृदय बाँसों उछल रहा था, उन्होंने गोपिकाओं के साथ श्रीकृष्ण ने जो जो सरस लीलाये की थीं सुन रखी थीं। श्रीकृष्ण के रूप की प्रशंसा सुनते सुनते उनके कान भर गये थे। वे सोचा करती थीं "श्रीकृष्ण कितने सुन्दर होंगे, जिनके सौंदर्य की इतनी अधिक ख्याति है। आज उन्हें प्रत्यक्ष देखकर वे आँखों में प्रेमाश्रु भरकर गद्‌गद् वाणी से कहने लगीं—"अहा, इनके सदा प्रसन्न मनोहर कमलमुख को, जिस पर मन्द मन्द मुसकानमयी चितवन छिटकी रहती है, उसके दर्शनों से आनन्दित हुई व्रजाङ्गनायें बिना प्रयास के ही अपने समस्त संतापों से सदा के लिये छुट जाती होंगी। जब ये गौएँ चराकर व्रज में आते होंगे और अपने सौंदर्य की आभा बखेरते हुए मन्द मन्द मुसकरा कर गोपियों की ओर देखते होंगे, तो वे निहाल हो जाती होंगी। कोटि कोटि जीवन इनकी एक एक चितवन पर वारा जा सकती है।" अहा! यदि ये नन्द-नन्दन न होकर वसुदेव नन्दन हैं। यदि ये यशोदा नन्दवर्धन होने के साथ ही साथ देवकी के तनय हैं, यदि ये गोपवंशावतंस न होकर यदुकुल भूषण हैं, तो इनके कारण यदुवंश महान् श्रीयुत, परम यशस्वी और महान् गौरवशाली होगा। इनकी छत्र छाया में रहकर वृष्णिवंश बढ़ेगा। इनके द्वारा सुरक्षित यादव संसार में यशलाभ करेंगे।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार सबकी बातें सुनते हुए राम-श्याम विना राजा को नमस्कार किये नन्दजी के समीप जा बैठे ।"

छप्पय

उत्सव महँ हरि फिरत माधुरी सुधा पिआवत ।
इत उत चितवत चलत चोर जनु चित्त चुरावत ॥
कहें परस्पर नारि कुमर ये अति बलशाली ।
कृष्ण देवकी तनय रोहिनी सुत बल आली ॥
मारे इनि अगनित असुर, तेज ओज सह बल निलय ।
रक्षित यदुकुल होहि अब, पावै यश गौरव विजय ॥

चाणूरकी ललकार

(१०४०)

जनेष्वेवं ब्रुवाणेषु तूर्येषु निनदत्सु च।
कृष्णरामौ समाभाष्य चाणूरो वाक्यमब्रवीत् ॥
हे नन्दसूनो हे राम भवन्तौ वीर संमतौ।
नियुद्धकुशलौ श्रुत्वा राज्ञाहूतौ दिदृक्षुणा ॥❀
(श्री भा० १० स्क० ४३ अ० ३१, ३२ श्लो०)

छप्पय

राम-श्याम कूँ निरखि नारि नर भये सुखारे।
कंस मल्ल चाणूर गरब तैं बचन उचारे ॥
मल्ल युद्ध महँ निपुण सुने तुम दोनों भैया।
ग्वाल बाल सँग लड़त चरावत वन वन गैया ॥
करें चकित नर नारि सब, रङ्गभूमि महँ आइकें।
आओ नृप को प्रिय करें, द्वै द्वै हाथ दिखाइकें ॥

❀ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! मनुष्य इस प्रकार बातें कर रहे थे और वहाँ तुरही आदि का शब्द हो रहा था, उसी समय चाणूर ने राम और कृष्ण को ललकारते हुए ये बचन कहे—"हे नन्दपुत्र! हे बलराम! तुम दोनों बड़े बली हो, वीरों द्वारा भी तुम प्रशंसित हो। तुम दोनों को युद्ध में कुशल सुनकर राजा ने तुम्हारा कौशल देखने के लिये तुम्हें बुलाया है।

चाटुकारिता भी एक क्षुद्रगुण है। चाटुकार लोग अपने स्वामी को प्रसन्न करने के लिये दिन को रात्रि और रात्रि को दिन बता देंगे। यदि चाटुकार गुणी हुआ या शक्तिशाली हुआ, तो अपनी शक्ति का, अपने गुणों का उपयोग वह स्वामी को सन्तुष्ट करने में ही लगा देगा। जो मनुष्य आश्रित होता है, उसे अपने आश्रयदाता की इच्छा न रहने पर भी उसे गुणी सिद्ध करना पड़ता है और निर्बल होने पर भी उसे बली बताना पड़ता है। उसे प्रसन्न करने को दूसरे की निन्दा करनी हो, दूसरे को हेय हो, दूसरे का अपमान करना हो, तो यह सब भी करना ही पड़ता है। कहावत है 'जिसका खाना, उसका बजाना।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! बलरामजी के सहित भगवान् के रङ्गभूमि में प्रवेश करते ही नर नारियों में उनके ही सम्बन्ध की चर्चा छिड़ गई, सब भगवान् के ही सम्बन्ध की बातें कर रहे थे। इधर दर्शकों में तो ये बातें हो ही रही थीं, उधर द्वार पर वीणा पणव, भेरी तथा मृदंग आदि बाजे बज रहे थे। भिन्न भिन्न भाँति के बहुत से शब्द एक साथ ही एक विचित्र प्रकार की स्वर लहरी को उत्पन्न कर रहे थे। उसी समय बाजों को बन्द करके तथा सबका ध्यान अपनी ओर खींचकर, बीचमें से उठकर, महा-बलशाली कंसका प्रधान मल्ल चाणूर हाथ उठाकर रामकृष्ण को सम्बोधित करता हुआ बोला—"हे नन्दनन्दन कृष्ण! तुम हमारी बात सुनो। हे बलराम तुम भी सुन लो। तुम लोगों को पता है, महाराज ने तुम्हें इतने आदर से विशेप रूप से क्यों आमन्त्रित किया है?"

भगवान् बोले—"हम तो यही समझते हैं, राजा ने हमें मल्ल युद्ध देखने के लिये बुलाया है।

चाणूर गर्व के साथ बोला—"नहीं, केवल मल्ल युद्ध देखने के लिये ही नहीं बुलाया है। दिखानेके लिये भी बुलाया है। महाराज

ने तुम्हारी बड़ी प्रशंसा सुनी है। ऐसे वैसे लोग आकर कहते, तो हमारे महाराज विश्वास भी न करते। बड़े बड़े बलशाली मल्लों ने तुम्हारे बल पराक्रम की प्रशंसा की है। महाराज ने कुतूहलवश तुम्हारा कला कौशल देखने तुम्हें बुलाया है।"

भगवान् अवहेलनाके स्वरमें बोले—"अजी, यहाँ क्या कौशल पौशल दिखाना। आप सब इतने भारी भारी मल्ल तो हैं, आप ही सब दिखाइये, आप ही सब महाराजका मनोरंजन कीजिये।"

क्रोध की मुद्रा प्रदर्शित करते हुए चाणूर बोला—"तुम और हम क्या? हम तुम दोनों ही महाराज की प्रजा हैं, महाराज को प्रसन्न करना हम सबका ही कर्तव्य है। हम सब राजा की प्रजा हैं। प्रजा का धर्म है, कि वह मनसे, वचनसे और कर्मसे राजाका प्रिय करे। ऐसा करने से ही प्रजा का कल्याण होता है, जो प्रजा के लोग ऐसा नहीं करते, इसके विपरीत आचरण करते हैं, उन्हें उसका विपरीत फल भोगना पड़ता है, सदा उन्हें क्लेश उठाने पड़ते हैं।"

भगवान् हँसते हुए बोले—"अरे भाई! हम तो गाँवों के गँवार ग्वाल बाल हैं। हम कला, पला, कौशल, पौशल क्या जानें।"

यहाँ राजधानी की बात है, आप बड़े बड़े मल्ल ही आवें।"

डाँटकर चाणूर बोला—"नहीं, ऐसी बात नहीं है। तुम लोग नामी मल्ल हो। यह बात छिपाने से थोड़ी छिप सकती है। सभी जानते हैं, तुम नित्य प्रति गौओं और बछड़ों को लेकर वनों में चराने जाते हो। गौएँ चरती रहती हैं, तुम वहाँ अखाड़ा खोद कर दण्ड बैठक करते हो। आपस में लड़ते हो, [illegible]

लिखा-पढ़ी तो करनी ही नहीं। दिन भर खेल [illegible]

बैठक करते रहे, लड़ते रहे, तथा भाँति भाँति के [illegible]

रहे। इसलिये टालमटोल मत करो। कछनी काछकर अखाड़े में उतर आओ और दो दो हाथ दिखाओ। महाराज प्रसन्न हो जायँगे, तो तुम्हें धन, ग्राम, वस्त्र, आभूषण तथा अन्यान्य प्रकार के परितोषिक देंगे। एक प्रधान पुरुष को—राजा को प्रसन्न करने से सभी प्रसन्न हो जाते हैं। क्योंकि राजा सर्वभूतमय है।"

भगवान् तो युद्ध करने ही आये थे, अपने गोलोक आदि लोकों में तो चुपचाप बैठे ही रहते हैं। अवनि पर तो वे युद्ध करने ही आते हैं। युद्ध ही उनका इष्ट है, अतः वे युद्धप्रिय करके प्रसिद्ध हैं। फिर भी सबकी उत्सुकता बढ़ाने के लिये कुछ इधर-उधर की बातें कहने लगे। पहिले तो उन्होंने चाणूर के बल की बड़ी प्रशंसा की। "आप धन्य हैं, आप ही इस समय यहाँ के सर्वश्रेष्ठ राजमल्ल हैं, आपके सामने तो हम बालक हैं, कर ही क्या सकते हैं। फिर भी हम कुछ कहना चाहते हैं। आज्ञा हो तो कहें।"

चाणूर ने कहा—"हाँ, कहो। महाराज विराजमान हैं, उनके सम्मुख निवेदन करो।"

भगवान् बोले—"आपका कहना सत्य ही है। हम भी महाराज की वनवासी प्रजा हैं। जैसा अन्य प्रजा जनों को प्रजापालको प्रसन्न करना कर्तव्य है, वैसा हमारा भी है। महाराज को प्रसन्न करने में ही हमारा कल्याण है। किन्तु फिर भी हम कहते हैं, इस इतनी भारी राजसभा में अन्याय न होना चाहिए।"

अकड़कर चाणूर ने कहा—"अन्याय कैसा?"

भगवान् बोले—"देखिये, आप इतने भारी नामी मल्ल और हम बालकों को अपने साथ युद्ध करने को ललकार रहे हैं। यह अन्याय नहीं तो और क्या है। जैसे हम बालक हैं, वैसे ही किसी बालकको हमसे लड़ाइये। जोड़ बराबरका होना चाहिये। बालकों से युवकों को लड़ना यह अन्याय है। जिस सभा में ऐसा धर्म

विरुद्ध अन्याय होता है, उस सभा के राजा को पाप लगता ही है, साथ ही सभासद भी पापके भागी होते हैं। अतः आपके रहते ऐसा अन्याय न होना चाहिए।

यह सुनकर चाणूर व्यंगकी हँसी हँसता हुआ बोला—"अजी, यह आपने अन्याय वाली बातें विचित्र कही। मल्ल युद्ध में छोटा बड़ा शरीरसे नहीं देखा जाता, बलसे देखा जाता है। जिसके शरीरमें बल नहीं, वह बड़ा होने पर भी बड़ा और जिसके शरीरमें बल नहीं, वह बड़ा होने पर भी छोटा है। आप न बालक हैं न युवक। आप हैं बली। बली पुरुषोंकी अवस्था नहीं देखी जाती। इसी प्रकार ये बलराम भी बालक नहीं हैं।

भगवान् बोले—"अजी, आप चाहें मानें, चाहें न मानें। बालक तो हम हैं ही, इसमें ये सभाके सभासद् साक्षी हैं।"

चाणूर बोला—"क्यों व्यर्थकी बातें बनाकर समय को नष्ट कर रहे हो। जिस कुवलयापीड़ हाथीमें सहस्र हाथियोंके बराबर बल था, उसे आपने अभी अभी खेल ही खेलमें मार डाला। ऐसा कार्य कौन बालक कर सकता है। जब तुममें इतना बल है, तो हम बलवानों से लड़ो। बलवानों से बलवानो का लड़ना कोई अधर्म नहीं, कुछ भी अन्याय नहीं, तनिक भी अनुचित नहीं। उचित है, अनुकूल है और धर्म संगत है। अब देर करने का काम नहीं। आ जाओ मैदानमें।" तुम मेरे साथ युद्ध करो और तुम्हारे ये बड़े भाई बलराम मुष्टिका के साथ अपना पुरुषार्थ प्रकट करके प्रजानाथ को प्रजासहित प्रसन्न करें।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान तो यह चाहते ही थे। वे बोले—"अच्छी बात है, मल्लजी! जैसी आपकी इच्छा। हम घर से कोई शपथ खाकर तो चले ही नहीं, कि इससे लड़ेंगे, इससे न लड़ेंगे। लाओ, आप नहीं मानते हो तो यों ही यह कहकर दोनों भाई कछनी काछकर उसके ऊपर

चढ़ाकर ताल ठोकते हुए अखाड़ेमें कूद ही तो पड़े। अब जैसे "चटाचट, पटापट सटासट, युद्ध होगा, उसका वर्णन मैं आगे करूँगा।"

छप्पय

सुनि बोले बल अनुज बाल हमें तुम बलसागर।
मल्लयुद्ध तब होहि जोड़ जब होहि बराबर॥
कहे बिहँसि चाणूर चली तो बल तैं होवें।
जो न होहि बलवान् बड़प्पन अपनो खोवें॥
नहि शिशु तुम महँ बल अमित, आओ हम तुम तैं भिड़ैं।
हमरो तुमरो जोड़ है, मुष्टिक हलधर तैं लड़ैं॥

राम-श्यामकी चाणूर और मुष्टिकसे भिड़न्त

(१०४१)

एवं चर्चितसङ्कल्पो भगवान् मधुसूदनः ।
आससादाथ चाणूरं मुष्टिकं रोहिणी सुतम् ॥

(श्री भा० १० स्क० ४४ अ० १ श्लो०)

छप्पय

हँसि बोले भगवान् नहीं मानो तो आओ ।
तुम अति नामी मल्ल मल्लपन आजु दिखाओ ॥
यों कहि कछनी काछि आखाड़े महँ आये हरि ।
शोभित बल सँग मनहु बीर रस द्वै द्वै तनु धरि ॥
ताल ठोकि दोनों बली, लड़िबेकूँ उद्यत भये ।
कृष्ण लड़ैं चाणूर तैं, बल मुष्टिक तै भिड़ि गये ॥

संसारमें कोई काम बलके बिना नहीं होता । बल तीन प्रकार का होता है । शारीरिक बल को बल कहते हैं इन्द्रियों के बलको ओज कहते हैं और मनके बलको तह कहते हैं । इन तीनों के ही द्वारा विजय प्राप्त हो सकती है । जो इन तीनों से हीन है, उसकी

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! इस प्रकार निश्चय करके भगवान् श्रीकृष्ण तो चाणूर से और बलदेवजी मुष्टिक से भिड़ गये ।"

पराजय निश्चित है। जो अपने बल को भगवान् के बल से भिन्न समझता है या उनसे अपने श्रेष्ठ समझकर उनसे लड़ना चाहता है, भगवान् उसके भी बल अभिमान को चूर्ण करके सद्गति देते हैं, फिर जो इन तीनों बलों को भगवान् के चरणों में समर्पित करके उन्हें ही एक मात्र अपना बल समझ लेता है, उसी निर्बल के राम बल हैं। अन्यथा बल हीन को तो कोई पूछता नहीं। बल का एक मात्र फल यही है, कि उसका उपयोग भगवान् के लिये हो। किसी भी भाव से सही, भगवान् के साथ किया हुआ बल का प्रयोग कभी व्यर्थ नहीं जाता।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! मल्लविद्या भी एक बड़ी सुन्दर विद्या है। इसमें शारीरिक बल बढ़ाने पर विशेष ध्यान दिया जाता है। जिन उपायों से शारीरिक बल बढ़े, वे सब उपाय मल्ल लोग करते हैं। शारीरिक बल के साथ ही साथ दावपेच भी चाहिये। दावपेच के बिना शारीरिक बल कुछ काम नहीं आता और जब तक शारीरिक बल न हो केवल दावपेच से भी काम नहीं चलता। अतः मल्लविद्या में बल और कला कौशल सभी की आवश्यकता होती है। श्रीकृष्ण और बलराम तो सभी विद्याओंमें निपुण थे। इसीलिये वे मुष्टिक, चाणूर के इतने बड़े भारी भारी शरीरों को देखकर डरे नहीं। वे लड़ने के लिये उद्यत हो गये।

इधर चाणूर मुष्टिक भी कछनी कसकर उस पर जाँघिये कसकर अखाड़े में आये। उनके शिक्षकों ने आकर चाणूर, मुष्टिक को मूर्छा और पीड़ा दूर करने वाली ओषधियाँ सुँघाई। माला पहिनाई और मंगल पाठ किये। चाणूर, मुष्टिक दोनों ने अपने अपने शिक्षकों को प्रणाम किया। फिर उन्होंने अखाड़े की मिट्टी को उठाकर सिरसे लगाया। चाणूरने श्रीकृष्ण से और मुष्टिक ने श्रीबलरामजी से हाथ मिलाया। फिर दोनों ही दोनों से भिड़ गये। राम-श्याम के लिये चाणूर और मुष्टिक को मार देना कोई बड़ी

बात नहीं थी। फिर भी लोकवत् लीला करने के निमित्त तथा समुपस्थित दर्शनार्थियों का मनोरंजन कराने के निमित्त दोनों भाई साधारण मनुष्यों की भाँति लड़ने लगे।

पहिले ही चाणूर दौड़कर भगवान की कमर पकड़ ली भगवान् एक झपट्टा में ही सिंह शावक की भाँति उसके मोटे मोटे हाथोंके बीच मेंसे निकल गये। अब दोनोंने फिर पंजोंसे पंजों को मिलाया। चाणूर उनके ऊपर चढ़ गया, और पैरों में पैर डालकर हाथोंसे बाहुओंको कसकर उन्हें चित्त करने लगा। किन्तु ये चित्त

होने वाले थोड़े ही हैं। चाणूर इन्हें रगड़ता ही रहा, किन्तु ये पट्ट ही पड़े रहे। फिर जानुओं से उसने उनकी पीठ में ज्यों ही रगड़ा दिया कि आप उसी प्रकार नीचे से निकल पृथक् हो गये, जिस प्रकार ऊर्वारुक (खरबूजा) बेल से छुटकर अलग हो जाता है। अब के दौड़कर भगवान् ने चाणूर का ऐसे पकड़ लिया, जैसे बाज कबूतर को पकड़ लेता है। भगवान् उससे भिड़ गये। उसकी छातीमें छाती सटाकर उसे मसलने लगे। दोनों हाथों को पकड़कर उसे घुमाने लगे। कभी एक दूसरे को पीछे ढकेलता, कभी चपेट मारकर गिरा देता, कभी कोई दूसरे को थप्पड़ मारकर गिरा देता, भगवान् ने चाणूर को नीचे पटक दिया। अब उसके पैरोंको जंघाओंको ओर पकड़कर एक हाथमें जाँघिया पकड़कर उसे उठालिया और घुमाकर फेंक दिया। उसका ओठ तनिक फट गया। इससे उसे बड़ा क्रोध आया। वह सहसा श्यामसुन्दर के गले से आकर लिपट गया। श्यामसुन्दर ने भी उसकी जेट भरकर उसे कसकर दबा दिया। भगवान्के दबा देनेसे वह हाथ, पाँव समेटकर अखाड़े में बैठ गया। अब तो भगवान उसे धकेलने लगे। इस प्रकार दोनों ही मल्लयुद्ध के पैंतरे दिखाने लगे। दोनों ही मल्लविद्या में प्रवीण थे। दोनों ही दावपेच जानते थे। बार बार वे ताल ठोक ठोककर दशों दिशाओं को गुंजाने लगे। चाणूर बार बार भगवान को ललकारता और कहता—सम्हल जाना, अबके तुम्हारी कुशल नहीं।" श्यामसुन्दर हँस जाते और कहते—"तुम अपने मन की कर लो। मैं तो पहिले से ही सम्हला हुआ हूँ। अब ये विचित्र विचित्र दाव दिखाने लगे। ये चित्रहस्त (मुट्ठियों को बाँध लेना) कसाबन्ध (बाहुओं से कस लेना) गुरुगंडा भिपात (घूँसा मारकर हट जाना) बाहुपाश (पीठ से पीठ मिलाकर बाहुओं से बाहुओं को बाँध लेना) अति क्रान्त मर्याद (अखाड़े से बाहर उठाकर पटक देना) पृष्ठ भंग (पैरों को पीठ की ओर मरोड़कर

पीठ को तोड़ना) संपूर्ण मूर्छा (घूँसे मार मारकर मूर्छित करना) पूर्ण कुंभ (हाथ, पैर समेटकर गुड़मुड़ी से बनाकर जेट में भर लेना) तथा और भी अनेक दाव चलाने लगे। जब एक दूसरे के घूँसा मारते तो चिन्गारियाँ सी निकलने लगतीं। कभी हाथ चलाते, कभी खींचा खाची करते, कभी ... कभी मुख को मसल देते, कभी एक दूसरे के ऊपर चढ़ बैठते। दोनों ही जब चाहते शरीर को सिकोड़ लेते, जब चाहते फैला देते। दोनों के ही शरीर लाल पड़ गये। जब चाणूर श्रीकृष्ण को उठाकर निर्दयता पूर्वक पटक देता तो सभी हाय हाय करने करते। जब उत्साह के साथ श्यामसुन्दर उठकर उसे पुनः दबोच देते और घुमाकर दूर फेंक देते तो सभी तालियाँ बजाने लगते।

नगर वासी नर नारियों की अपार भीड़ थी। मंच इस ढंग से बनाये गये थे, कि सभी स्त्री, पुरुष लड़ते हुए मल्लों को भली भाँति देख लें। नंदादि गोप तो डर रहे थे, कि ये कनुआ, बलुआ बड़े चंचल हैं। देखो तो सही, कितने बड़े बड़े मल्लों से भिड़ गये, इस पर श्रीकृष्ण के साथी गोप कहते—"बाबा! तुम चिन्ता मत करो। जिस कनुआ ने राँड़ पूतना को पछाड़ दिया, अघासुर, बकासुर, तृणावर्त, केशी तथा और भी असुरों को बात की बात में मार दिया। उसके लिये यह चींटी क्या वस्तु है। कनुआ इससे ऐसी प्रकार खेल कर रहा है, जैसे कारा साँप चूहे से खेल करता है। तुम देखना अभी सारे को चारों कोने चित्त मारता है। अब यह बचकर थोड़े ही जायेगा।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! ग्वाल बाल नंदजी से ऐसा कह रहे थे, कि उसी समय चाणूरने श्रीकृष्णको उठाकर अखाड़े में मारा। इस पर वहाँ बैठी हुई स्त्रियाँ जिस प्रकार करुणापूर्ण वाणी से विलाप करने लगीं, उसे भी आप सुनें। देखिये

में कितनी मोहकता है, जो भी उन्हें देखता है, वही उनका हो जाता है।

छप्पय

चट चट होवे शब्द उठावें पकरि घुमावें।
सटकें इत उत झपटि लपटि कें पटकि गिरावें॥
मारैं उर महँ चोट ढकेलें पुनि पुनि पकरें।
चित्त पट्ट ह्वै जायँ तुरत इततें उत निकरें॥
कहँ मुष्टिक चाणूर खल, कहँ हलधर हरि अमित बल।
करहिं लोकवत काज सब, थावें जग महँ यश बिमल॥
एक एक कूँ पकरि पटकिकें पेच चलावें।
कोई मुक्का मारि पकरि कें टांग गिरावें।
पाँइनि अंटा डारि करनि तें कंधनि कसिकें।
पुनि पुनि ठोकें ताल निहारें दोनों हँसिकें।
होहिं चटाचट पटापट, चित्त पट्ट ह्वैकें गिरें।
कबहूँ निकरें दावतें, पुनि दोनों पकरें लरें॥

कामिनियों की करुणा

(१०४२)

भातर्व्रजाद्व्रजत आविशतश्च सायम्,
गोभिः समं क्वणयतोऽस्य निशम्यवेणुम् ।
निर्गम्य तूर्णमबलाः पथिभूरिपुण्याः
पश्यन्ति सस्मितमुखं सदयावलोकम् ॥❀
(श्रीभा० १० स्क० ४४ अ० १६ श्लोक०)

छप्पय

मुष्टिक अरु चाणूर वज्रसम कठिन भयंकर ।
अति सुन्दर सुकुमार सरस सुखकर बल नटवर ॥
स्वेद-युक्त मुख निरखि नारि मनमहँ घबरावें ।
बहु विधि करें विलाप कंसकूँ कुटिल बतावें ॥
बाँकी भाँकी श्याम-बल, की करिके होवें मगन ।
व्रजवनितनिके भाग्यकूँ, सब सराहि बोलें वचन ॥

❀ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! रङ्गभूमि में बैठी हुई स्त्रियाँ कह रही थीं—"सखियो ! ये श्रीकृष्णचन्द्र प्रातः ही गौओं को चराने के लिए वन में चले जाते हैं, फिर सायंकाल में चराकर व्रज में प्रवेश करते हैं उस समय इनकी मुरली की मधुर ध्वनि सुनकर जो अबलाएँ इनका मधुर मुसकान मय मुख और कृपा पूर्ण कटाक्षों का अवलोकन करती हैं वे परम बड़ भागिनी हैं, उन्होंने अवश्य ही पूर्वजन्मों में बड़े पुण्य किये होंगे।"

मनुष्यका स्वभाव है कि वह जहाँ रहता है वहीं अपने पराये का भाव स्थापितकर लेता है। हम कुछ ही समयके लिये नौका में बैठते हैं। बैठते ही हम एक विहंगम दृष्टि समस्त नौका में बैठे स्त्री पुरुषोंपर डालते हैं, उनमें हमें कुछ अच्छे लगते हैं, कुछ बुरे। कुछ में अपनापन हो जाता है, कुछमें परायापन। यही बात मार्ग चलते समय मेले ठेले में हो जाती है। सभा में भी गायक उपदेशकोंके प्रति हमारा अपनापन, परायापन होजाता है। कुछ चाहते हैं, अमुकका प्रवचन अधिक हो, अमुकको गायनके लिये समय अधिक दिया जाय। यही दशा मल्लयुद्ध में होती है। दो लड़ने वालों में से कुछका अनुराग एक मल्लपर हो जाता है, कुछका दूसरे पर। कुछ चाहते हैं, अमुक जीत जाय कुछ चाहते हैं अमुक की विजय हो। यद्यपि उनमें बहुत से ऐसे होते हैं, जिनका पहिलेसे कोई परिचय नहीं होता, किन्तु किसी पूर्व संस्कारसे देखते ही अपनापन हो जाता है। जब क्षण भरके सहवासमें यह दशा है, तो जिनके साथ नित्य रहते हैं, उनमें से कुछके साथ अत्यन्त अनुराग और कुछके प्रति उदासीनता होना स्वाभाविक है। यह मनुष्य धर्म है। जिसके प्रति ममत्व होता है, उसके प्रति कोई अन्याय करता है, तो हृदय में पीड़ा होती है। जितना ही मनुष्य सरस हृदयका होगा, उसे उतनी ही अधिक पीड़ा होगी। स्त्रियोंका हृदय अत्याधिक सरस होता है। उनका जिनके प्रति ममत्व हो जाता है, उसके लिये वे विकल होजाती हैं, रोने लगती हैं छटपटाने लगती हैं, और परस्पर में उसीकी चर्चा करने लगती हैं

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! बलराम और श्रीकृष्ण तो अभी ११-११-१२-१२ वर्षके बालक ही थे, और चाणूर मुष्टिक ४०-४०-५०-५० वर्षके युवक थे। ये दोनों सुन्दर सुकुमार और कोमलाङ्ग थे, इन दोनों के शरीर फूलके से बने थे। हाथके कमलोंकी भाँति उनकी भुजायें थीं। लोहेकी शलाकाओंको उनके

विरोध में यहाँ से उठकर चल देना चाहिये।"

इस पर एक साथ कई स्त्रियाँ बोलीं—"क्यों क्यों बात क्या है। हमने क्या अन्याय किया है, हम क्यों उठकर जायँ।"

यह सुनकर वहाँ वाचाल वाला बोली—"देखो, जहाँ अधर्म की प्रधानता हो, बात बात पर अधर्म हो रहा हो, वहाँ बुद्धिमान् व्यक्ति का एक क्षण भी न रहना चाहिये। सबसे उत्तम बात तो यह है, कि इन सभा सम्मेलनों में भले आदमियों को जाना ही न चाहिये। क्यों कि इनमें जो सभासद् होते हैं, उनमें से अधिकाँश अपने शासक के अधीन होते हैं। उनकी हाँ में हाँ ही मिलाते रहते हैं। राजा दिन को रात्रि कहे, तो सब तारे दिखाने लगते हैं। जहाँ ऐसे स्वार्थी, भोजन भट्ट पिट्टू सभासद् हों, उस सभा में न जाना ही सर्व श्रेष्ठ है, किन्तु संसार में रहते हुए जाना ही पड़ता है। यदि जाय और सभा में अन्याय हो रहा हो, तो उसका विरोध करे। अन्याय को जान बूझकर भी जो यह कह देता है, कि मैं कुछ नहीं जानता, ऐसा कहने वाला भी दोष का भागी बनता है। हाय! हाय! इस दुष्ट चाणूर को कोई वरजता भी नहीं। यह किस प्रकार निर्दयता पूर्वक श्यामसुन्दर पर प्रहार कर रहा है, उसके प्रहारों को कौशल से बचाते हुए घनश्याम शत्रु के चारों ओर अलात चक्र की भाँति चक्कर लगा रहे हैं। अधिक श्रम करने के कारण उनका स्वेद-युक्त मुखारविन्द ओस की विन्दुओं से भरे कमल कोश के सदृश प्रतीत होता है। इसी प्रकार मुष्टिक के ऊपर क्रोध करने से बलरामजी के नयन अरुण वरण के बन गये हैं। उनके भी मुख पर स्वेद की विन्दुएँ दिखाई दे रही हैं। सखियो। बड़ा अन्याय हो रहा है। न सहने योग्य अत्याचार हो रहे हैं। हम अबलायें और कर ही क्या सकती हैं, विरोध में सभा को छोड़कर जा ही सकती हैं। अतः चलो यहाँ से सभी एक साथ निकल चलें।"

इस पर एक अत्यंत अनुरागवती युवती बोली—"बहिनाओ! आपका कथन तो न्याय और धर्म युक्त है, किन्तु हम करें क्या हमारा मन तो बागी हो गया है। वह हमारे वश में नहीं रहा। जबसे हमने इन श्यामसुन्दर का अनूप रूप देखा है, तब से हमारा मन खो गया है। आँखें चिपक गयीं हैं, चित्त चाहता है, सदा इस मोहनी मूरति को निहारती ही रहें। कान चाहते हैं, इनकी बातें सुनते ही रहें। बहिनाओ! कहने में लज्जा लगती है, हमारे पैर गति हीन बन गये हैं। जब तक ये हमारे सामने हैं, तब तक हम उठ नहीं सकतीं। जैसे तैसे उठें भी तो पैर साथ न देंगे। लड़खड़ाकर गिर जायँगी।"

इस पर एक अन्य बोली—"आली तुम्हारा कहना सोलहू आने सत्य है। न जाने ये कौन सा मोहनी मंत्र जानते हैं। इन्होंने अकारण हमारे मन को मोह लिया है। अहा! बहिनों, यह वृन्दावन की परम रम्य भूमि ही धन्य है। इसी का वसुन्धरा नाम सार्थक है, इसके वक्षस्थल पर इनके कमल से भी कोमल अरुण चरण पड़ते होंगे, तो वह इनको अपने अञ्चल से ढक देती होगी। जहाँ ये पुराण पुरुष छद्म वेष बनाये नर नाट्य करते होंगे। अहा! इनके इन परम पावन पादपद्मों की पूजा पार्वती पति बड़े प्रेम से करते हैं। लक्ष्मीजी इन ललित लावण्यमय मृदुल चरणों को सदा सुहलाती ही रहती हैं। इन्हें उठाकर डरती हुई अपने वक्षःस्थल पर धारण करती हैं, और अपनी मन की व्यथा को दूर करती हैं।"

इस पर एक अन्य बोली—"सखियो! जब ये रंग विरंगी, घुटनों तक लटकती विचित्र वनमाला को धारण किये हुए, बाँसुरी को बजाते हुए वृन्दावन के उपवनों में बलदेवजी के सहित एक वन से दूसरे वन में विचरते होंगे, तो वहाँ के पशु पक्षी स्तब्ध रह जाते होंगे, गौएँ चरना छोड़ देती होंगी, और उनके मुख की

ओर निहारती की निहारती ही रह जाती होंगी। जब ये सखाओं के साथ भाँति भाँति की क्रीड़ायें करते हुए भूमि पर घूमते होंगे, तो निश्चय ही पृथिवी पुलकित हो जाती होगी।"

इस पर एक अत्यन्त ही सरस हृदय वाली युवती अनुराग भरित वाणी में बोली—"सखियो! न जाने इन ब्रज की वनिताओं ने ऐसा कौन-सा तप किया है, न जाने इन्होंने जन्म जन्मांतर में ऐसा कौन-सा पुण्य कर्म किया है, जो ये श्यामसुन्दर के कमल मुख को नित्य निहारती हैं। उनके सौभाग्य की जितनी भी प्रशंसा की जाय, उतनी ही थोड़ी है। अहा, नेत्रवती होने का आनंद तो इन्होंने ही लूटा है, जो ये प्रियतमकी दुर्लभ रूप माधुरी पान अपने नयन पुटों से निरन्तर किया करती हैं। इनका मुख क्षण क्षण में नवीन-सा ही प्रतीत होता है, चित्त कभी भरता ही नहीं। अब देखा है फिर देखने की इच्छा बनी रहती है।"

इस पर अन्य ने कहा—"सखियो! श्यामसुन्दर का अनूप रूप अवर्णनीय है, अनुपम है इससे बढ़कर विश्व में कोई मोहक रूप नहीं, इससे बढ़कर कोई सुन्दर स्वरूप नहीं। यह स्वयं सिद्ध तथा यश, ऐश्वर्य एवं श्री का एकमात्र आश्रय है।"

इस पर वही अनुरागवती युवती बोली—"सखियो! मेरे पड़ोस में एक मुखिया मालिनि रहती है। वह नित्य प्रति वृन्दावन आया करती है। मैं उसी से नित्य श्यामसुन्दर के गुणों को सुनती रहती हूँ। ब्रजवल्लभियों का इनके प्रति कैसा अटूट अनुराग है यह कहते नहीं बनता। सुना है वे चाहें जो काम कर रही हों एक पल के लिये भी इन परम प्रिय श्याम को नहीं भूलतीं। हाथों से गौओं को दुह रही हैं। मन से मदनमोहन का मनन कर रही हैं। धनकुटा लेकर ओखली में धानों को तथा अन्यान्य अन्नों को कूटती जाती हैं चित्त से चित चोर का चिन्तन करती जाती हैं। मथनी में भरे दही को रई से घमर घमर करके बिलोती जाती

हैं, वाणी से वनवारी की विरुदावली को गाती जाती हैं, गाते गाते प्रेम में तन्मय हो जाती हैं, उन्हीं के ध्यान में निमग्न हो जाती हैं। हाथों से घर आँगन को गुबरी और पीली मिट्टी से लीपती जाती हैं हृदय से हरि का सुमरन करती जाती हैं। छोटे छोटे बच्चों को पालने में सुलाकर झुलाती हैं झोटा देती जाती हैं और मुख से गोविन्द के गीत गाती जाती हैं। बाहर कोई बालक रो रहा है, उन्हें पता ही नहीं चलता, क्योंकि उनका मन तो माधव में मग्न है कभी किसी के कहने से या अन्य कारण से उधर ध्यान जाता है, तो दौड़कर उठाती हैं, और उसे थपथपाती हुई ऊपर उछालती हुई कहती हैं, "गोविन्द दामोदर माधवेति" कृष्ण कृष्ण कहो श्याम श्याम रटो।

बच्चों को नहलाते समय, पति आदि के हाथ धुलाते समय, उनका मन इन्हीं में फँसा रहता है। घर झाड़ते बुहारते समय तथा अन्यान्य घर गृहस्थी के सभी कार्य करते समय वे सब तन्मय होकर गद्गद् कण्ठ से इन्हीं के गुणों का गान करती रहती हैं।

ये घनश्याम प्रातःकाल ही खिरक से गौओं को खोलकर उन्हें चराने के लिये वन को चले जाते हैं। गोपाङ्गनायें सब काम छोड़कर इसी प्रतीक्षा में बैठी रहती हैं, वन जाते समय वनवारी के दर्शन कर लो जब ये बाँसुरी बजाते हुए निकलते हैं तो सहस्रों नेत्र एक साथ ही इनके मुखारविन्द पर गड़ जाते हैं। जबतक इनके पीठ, गौएँ और गौओं के खुरों की उड़ती हुई धूलि दिखाई देती है, तब तक वे खड़ी खड़ी निहारती रहती हैं। फिर मन को मसोसकर लौट आती हैं बेमन से घर के कामों को करती हैं। रोटी बनाती हैं, किन्तु मन वहीं फँसा रहता है, अब श्यामसुन्दर [illegible] कर रहे होंगे। अब कहाँ क्रीड़ा कर रहे होंगे। अहो [illegible] हुआ कि सबका चित्त उसी पथ पर लगा रहता है, जो [illegible] के आने का है, किसी बहाने से सास ननँद से कहकर

द्वार पर आती हैं उचककर, दूर तक दृष्टि फेंककर भीतर चली जाती हैं, फिर आती हैं। जहाँ कान में मुरली की सुमधुर ध्वनि सुनाई दी, तहाँ सब कुछ छोड़कर वे उसी ओर दौड़ती हैं। आकर द्वार पर खड़ी हो जाती हैं। जब ये गौओं के पीछे पीछे व्रज में प्रवेश करते हैं, तब वे अपनी मधुर मुसकान मयी दृष्टि से इनके मनोहर मुख को, गोरज से ढके प्रेमयुक्त पलकों को, तथा कमनीय कटाक्षों से युक्त इनकी चारु चितवन को निहारती हैं, तो कृतार्थ हो जाती हैं, उनकी दिन भर की साधना पूरी हो जाती है। इस प्रकार नित नित निहारने पर भी इन पुराण पुरुष में प्राचीनता प्रतीत नहीं होती, ये क्षण क्षण में नये ही नये दिखाई देते हैं। वे कभी इनके दर्शनों से तृप्त ही नहीं होतीं, सदा अतृप्त ही बनी रहती हैं।"

इस पर एक बोली—"ऐसे इन रामश्याम के साथ इन मथुरा-पुरी निवासियों का ऐसा निर्मम क्रूर व्यवहार अशोभन है। निन्द्य है, कष्टकर है, किन्तु किया क्या जाय, हम तो अबला हैं। स्त्री जाति को ब्रह्मा ने बनाया ही ऐसा है। वह भरी सभा में सबके सम्मुख अपना विरोध नहीं कर सकतीं। विरोध की बात तो पृथक् रही, खुलकर अपने प्रेम को प्रकट करने की क्षमता भी तो हममें नहीं है। यदि हमारा वश चलता तो इस मल्ल युद्ध को तुरन्त बंद करा देतीं। भला यह सुकुमार शरीर लड़ने के लिये है? जिन चरणारविन्दों पर व्रजाङ्गनायें सुगंधित चंदनों का लेप करती हैं, जिन्हें अपने कुचकुंकुम की कीच से सिक्त हृदय पर डरते डरते धारण करती हैं, उन्हीं में यह उजड्ड चाणूर चोट मार रहा है, निर्दयता पूर्वक पकड़ रहा है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इधर मथुरापुरी निवासिनी व्रजाङ्गनायें तो श्यामसुन्दर के सम्बन्ध में ऐसी बातें कह रही थीं-उधर श्यामसुन्दर का भी हृदय अनुराग से भरने लगा। यह तो

सिद्धान्तकी बात है जो जिसे हृदयसे प्यार करेगा तो उस प्रेष्ठका हृदय भी अवश्य पसीजेगा अनुरागवती युवतियोंकी व्याकुलताका अनुभव करके श्यामसुन्दरने चाणूरको मार डालनेका मनमें निश्चय कर लिया। अब जैसे ये दोनों काम क्रोधरूप दुष्ट चणूर और मुष्टिक मारे जायँगे, उसका वर्णन आगे करूँगा। बड़ी गरमी पड़ रही है, तनिक ठंडासा जल पान-कर लूँ।"

छप्पय

वृन्दावनकी धन्य भूमि जहँ विहरें ब्रजपति।
ब्रजवनिता अति धन्य धन्य उनकी रति मति गति॥
असन वसन गृह काज करतिजे नहिं विसरहिं हरि।
सदा रिझावें ब्रजवल्लभकूँ प्रिय कारज करि॥
बड़भागिनि ये गूजरी, जिनको प्रभुमहँ फँस्यो चित।
मधुर मधुर मुसकान मय, मुख माधवको लखहिं नित॥

चाणूर और मुष्टिकादि मल्लोंकी मुक्ति

(१०४३)

एवं प्रभाषमाणासु स्त्रीषु योगेश्वरो हरिः।
शत्रुं हन्तुं मनश्चक्रे भगवान्भरतर्षभ ॥*

(श्रीभा० १० स्क० ४४ अ० १७ श्लो०)

छप्पय

हाय! क्रूर चाणूर न कछु अनरथ करि डारे।
दुष्ट न कहूँ कुठौर चोट माधव के मारे॥
वनतनि कूँ लखि विकल शत्रु वध निश्चय कीन्हों।
तबई रिपुने उछरि श्याम हिय मुक्का दीन्हों॥
हँसि हरिने पकरी भुजा, गोफिनि सम चक्कर दये।
प्राण हीन ह्वैकें गिरयो, नर नारी हर्षित भये॥

काम और क्रोध ये दो शत्रु बड़े प्रबल हैं। ये बहुत खाने वाले हैं, पेटू हैं, पापी हैं सदा लड़नेको तैयार रहते हैं। इन्होंने जीवमात्र को परास्त कर दिया है। पहिले तो जीव सुख समझकर इनकी ओर बढ़ता है, किन्तु जब ये सबको पछाड़ देते

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"हे भरत श्रेष्ठ राजन्! मथुरा पुरी निवासिनी स्त्रियाँ जिस समय परस्पर में इस प्रकार की बातें कर रही थीं, उसी समय योगेश्वर भगवान् श्रीहरिने शत्रुको मारने का निश्चय कर लिया।"

हैं, सबको जीत लेते हैं, तो जीव इनके अधीन हो जाता है। सबको जीत लेने से इनका अभिमान बढ़ता है, तो ये भगवान् से भी भिड़ जाते हैं, भगवान् कुछ देर तक खेल करते हैं। अज्ञानी लोग समझते हैं भगवान् को भी इन्होंने जीत लिया, भगवान् भी इनके वश में हो गये। किन्तु भगवान् की तो क्रीड़ा है। वे तो लोकलीला का अनुकरण करते हुए खेल करते हैं। भगवान् तो अपने भक्तों को बड़े उत्साह से कहते हैं—"हे महाबाहो! इस महाशत्रु काम को जीत लो!" फिर उनके लिये काम को जीत लेना मुष्टिक को मार देना कौन-सी बात है। बलशाली बलदेव के आगे क्रोध रूप मुष्टिक कर ही क्या सकता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! सभा मंडप में बैठी हुई स्त्रियाँ ऐसी बातें कर रही थीं, कि भगवान् ने निश्चय कर लिया कि अब इस मल्ल को मारकर सबके भय को भगा दें, सबकी चिन्ता को मेंट दें। स्त्रियाँ अत्यन्त दुख के साथ अश्रु बहाती हुई बातें कर रही थीं। उन स्त्रियों के ही बीच में वन्दिनी भगवती देवकी बैठी थीं। यद्यपि वे कारावास से यहाँ लाकर स्वतन्त्रता पूर्वक बैठाई गई थीं फिर भी उनके आसपास स्त्रियों का पहरा था। वे चुपचाप बैठी श्यामसुन्दर के मुख कमल को निहार रही थीं। स्त्रियों की करुणाभरी बातें उनके भी कानों में पड़ीं। उनको सुनकर वे परम व्याकुल हो उठीं। उनके नेत्रों से जल धारा वह रही थी और वे आशा भरी दृष्टि से सबकी ओर निहार रहीं थीं, कि कोई मेरे बच्चों को इन दुष्टों के फंदे से छुड़ावे। इधर पुरुषों के बीच में बन्दी बने वसुदेवजी बैठे थे, उनका हृदय भी धक्-धक् कर रहा था। वे राम-श्याम के बल से परिचित नहीं थे। वात्सल्य स्नेह में ऐश्वर्य दब जाता है, इसी कारण वे बनवारी को बालक समझकर विलाप कर रहे थे। सतृष्ण नेत्रों से बार-बार नट नागर की ओर निहार रहे थे। कनखियों से भगवान् ने भी माता-पिता की ऐसी

करुणा भरी विवशतापूर्ण दृष्टि देखी। वे उनकी ऐसी दयनीय दशा अधिक देर तक न देख सके। उन्होंने चाणूर का शीघ्र ही अन्त करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी से चाणूर और बलदेवजी से मुष्टिक ये दोनों ही प्राणों का पण लगाकर भिन्न-भिन्न प्रकारके दाव पेचोंसे लड़ रहे थे। भगवान्ने चाणूर को नीचे पटककर जो उसे मसला कि उसके अंग प्रत्यंग सब शिथिल पड़ गये। उसने साहस बटोरकर पूरी शक्ति लगाकर श्यामसुन्दरके वक्षःस्थल में कसकर एक घूँसा मारा। उसे विश्वास था, इस घूँसे के लगते ही श्यामसुन्दर अवश्य ही मर जायँगे, किन्तु उसे महान् आश्चर्य हुआ, भगवान् के वक्षःस्थल में उसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। जैसे कोई हाथी को माला से मारे। सिंह के ऊपर फूल फेंक दे और उसे पता भी न चले, इसी प्रकार उसके मुक्के से भगवान् के मुख पर बल भी न पड़ा। अब तो भगवान् ने सोचा—"यह तो मुक्के मारने लगा। यह मुक्का मारता है मैं इस धक्का मारूँ।" यह सोचकर भगवान् ने झपटकर एक धक्का दिया। धक्का लगते ही वह गिरनेवाला था, कि भगवान् ने उसके दोनों हाथ पकड़ लिये और फिर उसे बड़े वेग से घुमाया। वेग से घुमाने के कारण उसके प्राण शरीर से निकल गये।

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! भगवान् ने उसे घुमाया क्यों ?"

हँसकर सूतजी बोले—"अब महाराज भगवान् के मन की बात भगवान् ही जाने। छोटे छोटे बच्चों को देखते ही उनके चपत क्यों लगाते हैं, क्यों उन्हें ऊपर को उछाल देते हैं, क्यों उनके गुलगुली कर देते हैं।" यह सब क्रीड़ा के लिये करते हैं। इसी प्रकार भगवान् ने खेल खेल में उसे घुमाया।

दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि दर्शक समझ रहे थे कि श्री कृष्ण छोटे हैं, इन पर इतना बड़ा मल्ल चढ़ता नहीं इसी-

लिये ये जीत नहीं सकते। सबकी इस शंका को दूर करने को भगवान् ने उसे घुमाकर दिखाया, यह मेरे लिये तृण के समान है।

तीसरा कारण यह भी हो सकता है, कि श्रीकृष्ण को देखकर कंस का मस्तिष्क घूम रहा था। यदि बिना घुमाये उसे मार देते तो मस्तिष्क घूमने के कारण उसे मरता हुआ चाणूर दिखाई न देता, अतः घूमते मस्तिष्क में घूमता हुआ मल्ल दिखाई दे जाय इसलिये घुमाया।

चौथा कारण यह भी हो सकता है, कि नीचे पटककर मारते, किसी को दीखता किसी को न दीखता, रोती हुई स्त्रियाँ शंकित ही बनी रहतीं। अतः भगवान् ने ऊँचे उठाकर, बार बार घुमाकर यह दिखा दिया, कि देख लो यह मर गया। सोलहू आने मर गया।

ये सब कारण होने पर भी हमें दूसरा ही कारण दीखता है। हमें जब कहीं की यात्रा करनी होती है और मुहुर्त लम्बा बनता है, तो चौघड़ियाँ निकालकर एक दिन में ही सब नक्षत्रों को बिता देते हैं। किसी को चान्द्रायण करना होता है। एक महीने का समय नहीं तो एक दिन में ही छोटे छोटे महीने भर के ग्रास बना कर खा लेते हैं। इस चाणूर का संसार में घूमना बहुत शेष था. भगवान् को आज ही उसे मुक्त करना था। अतः वेग से घुमाकर उसके अनेक जन्मों के प्रारब्ध को नष्ट कर दिया। इससे वह भगवान् के हाथ से मरकर आवागमन के चक्कर से सदा के लिये छूट गया। वह विमुक्त बन गया।"

शौनकजी ने कहा—"हाँ, सूतजी! यही बात है, अब आप आगे की कथा कहें।"

सूतजी बोले—"महाराज! घुमाते घुमाते जब चाणूर प्राणहीन हो गया, तो भगवान् ने उसे फेंक दिया। उसके काले काले बाल अस्त व्यस्त हुए बिखर रहे थे। उसका लाल लँगोटा

ढीला हो गया था। पीला जाँघिया फट गया था। हाथ का काला डोरा टूट गया था। सोने का बाजूबन्द चमक रहा था। इस प्रकार रंग विरंगी वस्तुओं के कारण वह इन्द्र धनुष के समान दिखाई देता था। उत्सव के अन्त में जैसे इन्द्र ध्वज गिर जाती है, वैसे वह गिर गया था। उसके मरते ही समस्त नर-नारी प्रसन्न हुए। एकमात्र कंस को ही दुःख हुआ।

इस प्रकार भगवान् ने लीला में ही चाणूर को मार डाला। अब मुष्टिक का समाचार सुनिये। अखाड़ा बड़ा था। उसमें चार जोड़ एक साथ छोड़े जा सकते थे। कंस को तो राम-श्याम को ही मरवाना अभीष्ट था। अतः उसने दो ही जोड़ छुड़वाये। बलदेवजी मुष्टिक को रगड़ते जाते थे और श्रीकृष्ण की ओर देखते जाते थे, कि अभी चाणूर को मारा है या नहीं। जब कोई साधारण आदमी बड़े लोगों के भोजन में सम्मिलित हो जाता है, और एक साथ बहुत से पदार्थों को सामने देखता है, तो वह आस पास बैठे हुए बड़े आदमियों को देखता जाता है, वह कैसे खा रहे हैं, कौन-सी वस्तु खा रहे हैं। उन्हीं का अनुकरण करता है। जब बन्द हो जाते हैं, तो पेट न भरने पर भी उनकी देखा देखी बन्द हो जाता है। इसी प्रकार बलरामजी ने सोचा मार धाड़ में तो यह कृष्ण ही निपुण है, जब मुहूर्त होगा, तभी यह चाणूर को मारेगा, तभी मैं अपने प्रतिद्वन्द्वी मुष्टिक को पछाड़ूँगा। जब भगवान् ने चाणूर को मार गिराया, तब बलदेव जी ने भी मुष्टिक के मारने में शीघ्रता की। उस मृत्यु के मारने बलदेवजी की छाती में कसकर एक घूँसा जमाया। अब क्या था मानों भयंकर विषधर सर्प को किसी ने पैर से कुचल दिया हो। बलभद्रजी ने कसकर उसमें एक तमाचा जमाया। तमाचे के लगते ही बच्चूजी की सभी चौकड़ी भूल गयी। जैसे आँधी आने पर बड़ा भारी वृक्ष गिर पड़ता है, उसी प्रकार बलदेवजी का चपत

लगते ही वह निर्जीव होकर पृथिवी पर गिर गया। उसके मुख से रक्त की धारा बहने लगी। रक्त वमन करते-करते ही वह इह-लौकिक लीला समाप्त कर गया।

चाणूर और मुष्टिक के मरते ही हल्ला मच गया। सब लोग "राम कृष्ण की जय" की गगन भेदी ध्वनि करने लगे। इतने में ही एक बड़ा भारी मल्ल ताल ठोकता हुआ उछलकर अखाड़े में आया और बलदेवजी से बोला—"अच्छा तुम मुझसे लड़ो।"

बलदेवजी ने पूछा—"तेरा नाम क्या है?"

वह बोला—मुझे कूट कहते हैं।"

बलदेवजी ने कहा—"अच्छा ला, सारे तेरी भी कुटाई करूँ।" यह कहकर बलभद्रजी ने बायें हाथ से एक ऐसा कसकर घूँसा मारा, कि वह सनसनाता हुआ उसके मस्तक में लगा। मस्तक फट गया और वह निर्जीव होकर गिर गया।"

उसी समय एक दूसरा मल्ल श्यामसुन्दर के समीप आया और बोला—"तुम्हें मुझसे लड़ना ही होगा।"

श्यामसुन्दर ने कहा—"हम तो यहाँ लड़ने के ही लिये खड़े हुए हैं। तेरा नाम क्या है?"

उसने कहा—"मेरा नाम है शल।"

भगवान् बोले—"अरे सारे शल, तू है बड़ा खल, तू भी संसार से चल, देख करना मत छल, प्यास लगी हो तो पी ले जल। अच्छा, सम्हल अभी तुझे करता हूँ विकल। तू भी अपने किये का पा ले फल।" यह कहकर भगवान् ने कसकर एक लात मारी। लात के लगते ही शल वायू का सिर फट गया और वह संसार से सदा के लिये हट गया। फिर तोशल आया, उसे भी प्रभु ने परलोक पठाया।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! कंस के पाँच ही अत्यंत बलवान् नामी-नामी मल्ल थे। आज पाँचों ही मर गये। चाणूर, मुष्टिक कूट, शल और तोशल इन पाँचों को मरते देखकर शेष मल्लों के ता छक्के छूट गये। वे अपने प्राणों को लेकर अखाड़े से भागे। मल्लों में भगदड़ मच गई। वे सोचने लगे ये विचित्र मल्ल हैं। चित्त या पट्ट का कोई काम ही नहीं। सबको प्राणहीन ही बनाकर छोड़ते हैं। इनसे लड़ने में कुशल नहीं।" यही सब सोचकर अपने अपने लँगोटा जाँघिया छोड़कर ये गये वे गये।

जब मल्लों में भगदड़ मच गई, तो राम श्याम अखाड़े में घूम घूमकर कहने लगे—"जिसे और लड़ना हो वह और आ जाय। मामा को लड़ाई बहुत प्रिय है।" किन्तु कोई भी सम्मुख न आया। तब तो भगवान् जहाँ ग्वालबाल बैठे थे वहाँ चढ़ गये और अपने समवयस्क गोपबालकों को खींचते हुए बोले—"अरे भैयाओ ! मल्ल तो सब सारे भाग गये। हम सबको राजा का मनोरंजन करना चाहिये। लड़ाई भिड़ाई तो उन्होंने देख ली। अब लाओ अपना नाच दिखाकर इनका मनोरंजन करें।" चलो व्रज का नाच भी इन्हें दिखावें। रसीले रसिया भी सुनावें। यह कहकर वह अपनी अवस्था के ग्वालों को अखाड़े में खींच लाये। राम कृष्ण दोनों ही भाई एक दूसरे का हाथ पकड़कर नाचने लगे। वे मुँह मटकाकर, सैन चलाकर, कमर को लचाकर तथा भाँति भाँति के भाव दिखाकर, बजती हुई भेरी के शब्द के साथ अपने चरण नूपुरों की ध्वनि मिलाकर व्रज का नृत्य दिखाने लगे। मल्लों की सरस क्रीड़ाओं को करने लगे। सब उनके अद्-भुत बल, पुरुषार्थ, सौन्दर्य माधुर्य तथा कला कौशल को देखकर धन्य-धन्य करने लगे और उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। अब मामा को भी जिस प्रकार प्रभु परलोक पठायेंगे वह कथा मैं आगे कहूँगा।

छप्पय

मल मुष्टिक कूँ मारि अखाड़े में ठाढ़े जब।
करिकैं अतिईं कोप कूट लड़िवे आयो तब॥
इत शल तोशल लड़न श्याम के सम्मुख आये।
तीनों ही मरि गये परम पद सबने पाये॥
मुष्टिक अरु चाणूर शल, तोशल कूट मरे जबहिं।
लै लै अपने प्राण सब, शेष मल्ल भागे तबहिँ॥

कंसोद्धार

(१०४४)

स नित्यदोद्विग्नधिया तमीश्वरम्,
पिबन्वदन्वा विचरन्स्वपञ्छ्वसन् ।
ददर्श चक्रायुधमग्रतो य—
स्तदेव रूपं दुरवापमाप ॥❀
(श्री भा० १० स्क० ४४ अ० ३९ श्लो०)

छप्पय

ग्वाल बाल लै संग श्याम बल नाचत डोलें।
एक कंस कूँ छोड़ि शेष सब जय जय बोलें॥
कुपित कंस है गयो कहै इन गोपनि मारो।
राम कृष्ण कूँ पकरि नगर तैं तुरत निकारो॥
समुझि गयो ये परस्पर, मिले जुले सब लोग हैं।
नन्द गोप वसुदेव अरु, उग्रसेन वध जोग हैं॥

जीव जिसका निरन्तर चिन्तन करेगा, उसीको प्राप्त हो जायगा। हम नित्य ही संसारका शरीरका चिन्तन करते रहते हैं, इसीलिये मर मरकर हमें पुनः पुनः संसारमें शरीरोंकी

❀ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! कंस नित्य ही अत्यन्त उद्विग्नता के साथ उन चक्रायुध श्रीपरमेश्वर को भोजन करते, पेय वस्तु पीते, वार्तालाप करते, विचरण करते, शयन करते तथा श्वास लेने आदि समस्त क्रियाओं को करते समय अपनी आँखों के सम्मुख देखता था। इसीलिये दुरवाप होने पर वह उसी रूपको प्राप्त हुआ।"

प्राप्ति होती है। जीवनमें जो जिसे याद करता रहेगा, दूसरे जीवनमें वही मिलेगा। संसारी लोग नित्य ही स्त्री, पुत्र, घर, गृहस्थीकी चिन्ता करते रहते हैं, मरने पर ये ही प्राप्त होते हैं। जड़ भरतजीका चित्त मृगके बच्चेमें फंस गया था अतः उन्हें मृग होना पड़ा। जो धनका रक्षामें निरन्तर चिन्तित रहते हैं, उन्हें धनका रक्षक सर्प बनना पड़ता है। जो ईंट पत्थरोंकी चिन्ता करते रहते हैं, वे मरकर जड़ताको प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार जो निरन्तर भगवानका चिन्तन करते हैं, उन्हें भगवान प्राप्त होते हैं। भगवान का स्मरण कामसे क्रोधसे, लोभसे, द्वेषसे, तथा प्रेमसे कैसे भी किया जाय, भगवत् प्राप्ति तो होगी ही। द्वेष से जीवन शुष्क रहेगा। प्रेमसे सरस होगा। केवल रसास्वादका अन्तर है। चाहे रसगुल्ला खाओ या सूखे सत्तू फाँको, पेट दोनोंसे भरेगा। रसगुल्ला जिह्वाको तृप्त करते हुए, कण्ठसे पेटतक ठीक करते हुए सुख पूर्वक पेट भरेंगे। सूखे सत्तू कंठको कष्ट देते हुए जलका सहारा लेते हुए नीरसताके साथ पेट भरेंगे। इसी प्रकार प्रेमसे चिन्तन हृदयमें सरसताका संचार करेगा। द्वेषका चिन्तन अशाँति चिंता और ग्लानि करेगा अंतिम फल तो एक ही है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जब चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल तथा तोशल, ये मल्ल मारे गये, तब शेष सब मल्ल अपने अपने प्राणोंके मोहसे भाग गये, तब तो कंस किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गया। उसकी नस नसमें क्रोध व्याप्त हो गया। बाहर जो मधुर मधुर स्वरमें भेरी बज रही थी, उसने तुरंत आज्ञा दी। "भेरी बजाना बंद कर दिया जाय।" तुरन्त राजाकी आज्ञाका पालन किया। भेरीका शब्द जब बन्द हो गया, तो वह क्रोधमें लाल लाल आँखें करके, ओठोंको

चबाता हुआ सेवकोंसे बोला—"अरे, तुम लोग कहाँ गये यहाँ मेरे सम्मुख आओ।"

सुनते ही सैनिकोंके बड़े बड़े अधिकारी तथा अन्य भी रक्षा विभागके प्रधान प्रधान कर्मचारी हाथ जोड़े हुए आकर उपस्थित हुए और नम्रताके साथ बोले—"महाराजकी क्या आज्ञा है?"

कंस बोला—"तुमलोग जानते हो, ये राम-कृष्ण दोनों नंदके पुत्र नहीं हैं। ये वसुदेवके पुत्र हैं। ये बड़े उद्दंड, दुश्चरित्र और असभ्य हैं। इन दोनोंको अभी धरके बाँध लो और इन्हें तुरन्त नगरके बाहर निकाल आओ। ये जितने गोप आये हैं सबके शकट बैल तथा धन आदिको छीनकर राजकोष में रखो। इस नन्द ने राज विद्रोह किया है, मेरे शत्रु को इतने दिनतक छिपा रखा था इसने षडयन्त्रमें प्रधान रूपसे भाग लिया इसलिये इसे तुरन्त यहीं क्रीड़ा स्थानमें गोलीसे मार दो। यह सब षड्यन्त्र वसुदेव का रचा हुआ है। कारावास में रहकर भी, यह छिपकर अपने पुत्र को गोकुल पहुँचा आया। यह नीच है, दुर्बुद्धि है, विद्रोही है, असाधु है तथ राज्य के प्रति अभक्त है। इसे भी अभी यहीं मार डालो। नंद और वसुदेव को प्राण दंड भी थोड़ा है। दोनों ने यह अपराध किया है। यह षड्यन्त्र बड़ाभारी है, इसमें मेरे पिता उग्रसेन का भी अवश्य हाथ है। यह शत्रु पक्ष से मिला हुआ है। इसके अनुयायी भी इसके साथ हैं, अतः उग्रसेन से जो जो प्रेम रखते हों, जो जो विरोधी दलके हों, सबको एक पंक्तिमें खड़ा करके गोली से मार दो। कोई भी इनमें से बचने न पावे। ये सब जो राम-श्यामकी विजय पर "जय हो, जय हो, धन्य है, धन्य है" चिल्ला रहे थे, ये सब भी राज-द्रोही हैं। सबको दंड मिलना चाहिये। तुम लोग किसी पर

दया न दिखाना, नहीं तो तुमको भी दंड दिया जावेगा। सर्व प्रथम तो इन दोनों उद्धत छोकरों को पकड़ लो।"

यह सुनकर हँसते हुए भगवान ऊँचे मंचपर खड़े होकर बोले—"सुनलो भैया! मैं वसुदेवजीका पुत्र हूँ। राजा अपने मुखसे कह रहे हैं। इसलिये मेरे ये मामा लगते हैं। मामाजीके वात, पित्त और कफ तीनों ही प्रकुपित हो गये हैं। इन्हें सन्निपातने घेर लिया है। वातका प्रकोप होनेसे ये अंट संट बक रहे हैं। अब सबकी इच्छा हो तो इनकी चिकित्सा कर दूँ। मुझे वात, व्याधकी चिकित्सा करनी आती है, उसमें मुझे इनकी चोटी पकड़नी होगी।"

यह सुनकर सब बोल उठे—"आप जो चाहें सो करें।"

कंस कई हाथ ऊँचे मंचपर बैठा था। भगवानने बलदेवजीसे कहा—"बल भैया! तुम कितना उछल सकते हो?"

बलदेवजी बोले—"जितना तू उछलेगा उससे दुगुना मैं उछल लूँगा। पहिले तू ही उछल।"

यह सुनकर भगवान् एक हाथ उछले, तब बलदेवजी दो हाथ उछले। भगवान् चार हाथ उछले, तो बलदेवजी आठ हाथ उछले। भगवान् सोलह हाथ उछले, तो बलदेवजी बत्तीस हाथ उछले। अबके श्रीकृष्ण कंसके मुकुट तक उछल गये और उसके बड़े भारी मंचपर जाकर खड़े हो गये। कंस जितना ही शूरवीर, बली था, उतना ही साहसी भी था, जब उसने देखा कि श्रीकृष्ण तो काल बनकर मेरे सिरपर ही आ धमके, तब उसने तुरन्त कोपसे करवाल निकाल ली और हाथ में ढाल लेकर पैंतरे बदलने लगा। वह युद्ध करने को उद्यत हो गया। भगवान् भी मंचपर घूमने लगे, वह भी दायीं बायीं ओर चक्कर काटने लगा।

उसे पैंतरे बदलते हुए देखकर हँसते हुए श्यामसुन्दर

बोले—"मामाजी ! अभी तक तो बक ही रहे थे, अब हाथ पैर भी पीटने लगे। ऐसा मत करो, ऐसा मत करो।" इतना कहते हुए अत्यन्त दुःसह प्रचण्ड वेग वाले भगवान्ने, जैसे

गरुड़ सर्प को पकड़ लेता है, वैसे ही घूमते हुए कंसको पकड़ लिया। इस पकड़ा धकड़ी में भयके कारण कंसका राजमुकुट गिर गया। मुकुटका गिरना अत्यन्त अशुभ माना जाता है। राजाका

मुकुट सिर से गिर जाय, तो समझना चाहिये राजा की मृत्यु समीप ही है। सब लोग समझ गये, अब राजा कुछ ही क्षण के अतिथि हैं।

कंस का जब मुकुट सिर से गिर गया, तो उसके बड़े बड़े बाल अस्त व्यस्त भाव से बिखर गये। भगवान् को तृणावर्तासुर की याद आ गई। वे सोचने लगे मैं तृणावर्त के गले में लटक गया था, इससे वह आकाश से गिर कर भूमि में चारों कोने चित्त गिरा था और पट्ट से मर गया था। लाओ मामा के साथ भी ऐसा ही खेल करें। यही सोचकर भगवान् उसके केशों को पकड़ कर लटके, अब वह तुरन्त भूमि पर गिरने लगा। विश्वाश्रय कमलनाभ भगवान् उछलकर उसके ऊपर चढ़ बैठे और भूमि-पर गिरते गिरते ही कंस के प्राण पखेरु उसके शरीर को त्यागकर उड़ गये। परलोक को प्रयाण कर गये। अब भगवान उसके मृतकशरीर को इधर से उधर कढ़ेरने लगे।

यह सुनकर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! एक तो मामा को मारना ही अनुचित है। कदाचित उसे दुष्ट समझकर मार भी दिया, तो उसके मृतक शरीर को इधर उधर, टाँग पकड़कर कढ़ेरना तो उचित नहीं। भगवान् ने ऐसा क्यों किया?"

सूतजी बोले—"मुनियो! आप इस बात को गाँठ बाँध लें, कि भगवान् जो भी कुछ करते हैं, जीव के कल्याण के ही निमित्त करते हैं। उनके सभी कामों में जीवों का कल्याण ही निहित है।

भगवान् ने सोचा—"हमारे मामाजी बड़े अभिमानी थे। कभी पैदल कहीं जाते ही नहीं थे। जहाँ जाते थे, सवारी से जाते थे। जहाँ चलना भी होता, पादत्राण पहिनकर, गलीचों से ढकी भूमि पर चलते थे, इसलिए इनके अंग से ब्रज की परम पावन, रज काहे को लगी होगी। लाओ मरते समय

शरीर में व्रज की धूलि लगा दें। जिसके लगने से परलोक में कल्याण हो। अतः व्रज रज की महिमा दिखाने के निमित्त ही मामा को टाँग पकड़कर कढ़ेरा होगा।

सूतजी कह रहे हैं—"सो मुनियो! व्रज रज का प्रभाव जताने को ही भगवान् ने ऐसा किया होगा। जब मृतक कंस का शरीर इधर से उधर घसीटा जाने लगा, तो वहाँ जितने भी नर नारी बैठे थे, सबके मुख से हाय! हाय! शब्द निकलने लगा।

कंस भय के कारण निरन्तर श्रीकृष्ण का ही चिन्तन करता रहता था। जिसे हम अपना शत्रु समझते हैं, और उससे प्राणों के भय की संभावना रहती है, तो उसकी जैसी प्रगाढ़ स्मृति बनी रहती है, वैसी मित्र की नहीं होती। जो तन्मयता भय के कारण शत्रु में हो जाती है, वह प्रेम के कारण मित्र में नहीं हो सकती। कंस सदा श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में चिन्तित बना रहता। जब वह कुछ खाता-पीता तो, चारों ओर भय से इधर उधर देखता रहता, कहीं कृष्ण न आ जाय, मुझे छल से खाते समय ही मार दे। बातें तो दूसरों से करता, किन्तु मन से सदा सोचता रहता श्यामसुन्दर को। ऐसा न हो पीछे से आकर मुझे पछाड़ दें। कहीं भी घूमने जाता, चारों ओर श्रीकृष्ण को ही निहारता रहता। कभी कभी चौंक पड़ता और बड़बड़ाने लगता—"श्रीकृष्ण आ गया।" सेवक कहते—"महाराज! कहाँ हैं, श्रीकृष्ण ?"

वह कहता—"तुम्हें दिखाई नहीं देता ? देखो वह आता है।" इस प्रकार वह भावना से श्रीकृष्ण को आते हुए देखता।"

जब वह सोता, तो स्वप्न भी श्रीकृष्ण के सम्बन्ध के देखता। "श्रीकृष्ण आ रहे हैं, वह मुझे मार रहे हैं।" यह देखते देखते वह शैया परसे उठकर खड़ा हो जाता और इधर उधर घूमने

लगता। उसकी रानियाँ उसे समझातीं, सान्त्वना देतीं, किन्तु एक पल को भी वह श्रीकृष्ण को नहीं भूल सकता था। सोते जागते, उठते बैठते, चलते फिरते, नहाते धोते, खाते पीते, अधिक क्या कहें, समस्त क्रियाओं को करते सब काल में उसे श्रीकृष्ण ही दिखाई देने लगते। 'जो जिसका निरन्तर ध्यान करता है, वह उसी के रूप में मिल जाता है, इस न्यायानुसार कंस श्रीकृष्ण के रूप में मिल गया, उसका संसार का आवागमन छूट गया, वह मुक्त हो गया।

कंस के कंक, न्यग्रोध, सुनामा, शंकु सुहू, राष्ट्रपाल, सृष्टि और तुष्टिमान ये आठ छोटे भाई और थे। कंस के मारे जाने पर ये आठों भाई क्रोध करके अपने अपने हाथों में अस्त्र शस्त्र लेकर राम और श्याम को मारने के लिये आये। उन आठों को अपनी ओर आते देखकर श्रीकृष्ण उनकी ओर झपटे। तब बलदेवजी उनसे बोले—"कृष्ण ! अब भैया ! सबको तू ही मारेगा, हमें भी कुछ करने देगा ? ये आठों तो मेरे भाग में हैं।'

भगवान् बोले—"दादा ! अच्छी बात है, इन आठों को मारकर आप ही अपने हाथों की खुजली मिटा लो।" इतना सुनते ही सिंह जैसे पशुओं के झुन्ड पर टूटता है, ऐसे ही बलरामजी उन आठों आततायियों के ऊपर टूट पड़े। वहाँ एक लोहे का परिघ पड़ा हुआ था, बलरामजी ने उसे उठा लिया और आँख मींचकर उन्होंने जो मारना आरम्भ किया कि क्षण भर में ही आठों को मार गिराया। इस प्रकार जब उग्रसेन के कंस आदि नौ के नौऊ पुत्र मर गये तब देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे आकाश से पारिजात के पुष्पों की वर्षा करने लगे, दुन्दुभि आदि बाजे बजाने लगे। ब्रह्मा, शिव तथा इन्द्रादि लोकपाल प्रेम पूर्वक प्रभु की प्रशंसा करने लगे। गन्धर्व गाने लगे और

अप्सरायें नृत्य करने लगीं। प्रजा के लोग भी परम प्रमुदित हुए। वे सब मन ही मन कंस से असन्तुष्ट थे, इसीलिए उसके मारे जाने पर कोई दुखी नहीं हुआ। किसी ने श्रीकृष्ण के इस कार्य का विरोध नहीं किया।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! मामा के मारे जाने पर जैसे मामी रोती हुई आईं और उन्हें समझा बुझाकर जैसे भगवान् माता पिता के समीप गये, उस प्रसङ्ग का वर्णन आगे करूँगा।

छप्पय

बक बक मामा करत तुरत हरि उछरे ऊपर।
लीन्हीं चोटी पकरि धम्मतें कूदे नटवर॥
मामा नीचे गिरयो भानजो ऊपर आयौ।
प्रभु तन परसत तुरत परमपद मामा पायौ॥
खान पान नित ध्यानमहँ चलत फिरत सुमिरत प्रभुहिँ।
सुमिरन सतत प्रभावतें, मिल्यो त्यागि तनु सो विभुहिँ॥

—:::::—

भगवान् द्वारा माता-पिताका बन्धन मोचन

(१०४५)

मातरं पितरं चैव मोचयित्वाथ बन्धनात् ।
कृष्णरामौ ववन्दाते शिरसाऽऽस्पृश्य पादयोः ॥*

(श्रीभा० १० स्क० ४४ अ० ५० श्लो०)

छप्पय

कंस अनुज पुनि आठ लरे बल मारि गिराये ।
मामी रोवत लखीं वचन हरि मधुर सुनाये ॥
पुनि पितु माता निकट आइकें काटे बन्धन ।
शिशु सम गोदी बैठि करें करुणामय क्रन्दन ॥
कहें अभागी हम रहे, निरख्यो नहिं पितुमातु सुख ।
हमरे पीछे दिवस निशि, सहे आपुनें दुसह दुख ॥

दुख सुख भाग्य का खेल है। जिसके प्रारब्ध में जितना सुख दुःख बदा रहता है, उतना उसे अवश्य ही भोगना पड़ता है। पुरुषार्थ से प्रारब्ध मेटा जा सकता होता तो पांडव, नल, राम हरिश्चन्द्र तथा अन्यान्य परमधर्मात्मा राजाओं को इतने

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! तदनन्तर भगवान् राम-श्याम ने माता पिता को बन्धन से छुड़ाकर उनके चरणों में सिर रखकर प्रणाम किया।"

क्लेश क्यों सहने पड़ते । जिन देवकी वसुदेव के श्रीकृष्ण और बलराम दो दो अवतारी पुत्र हुए, उनके जीवनभर कारावास के दुख सहने पड़े यह प्रारब्ध की विडम्बना नहीं तो क्या है। जिन परिपूर्णावतार परात्पर प्रभु का बार-बार हृदय में स्मरण होने से समस्त संसार बन्धन कट जाते हैं उन्हीं प्रभु का चिन्तन देवकी वसुदेव कारावास में निरन्तर करते रहे और कंस की दी हुई दुसह यातनाओं को धैर्य के साथ सहते रहे। अन्त में आकर प्रभु ने उनके बन्धन को काटा उन्हें निर्मुक्त बनाया और दिव्य सुखों का अनुभव कराया। प्राणी प्रारब्ध से प्राप्त सुख दुखों को धैर्य पूर्वक सहन करता हुआ, प्रभु की कृपा की प्रतीक्षा करता रहे, तो किसी न किसी दिन प्रभु अवश्य ही कृपा करेंगे। वे स्वयं आकर हमारी बेड़ियों को काटेंगे और प्रेम पूर्वक अपनावेंगे। जीव का एक मात्र कर्तव्य है, प्रभु की कृपा की निरन्तर प्रतीक्षा करते रहना।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब राम-श्याम ने उग्रसेनजी के कंसादि नौऊ पुत्रों को मार दिया तो सर्वत्र हाहाकार मच गया। कंस की तथा उसके आठों भाइयों की पत्नियाँ रोती रोती स्थान पर आयीं जहाँ कंसादि सब मरे पड़े थे। वे स्त्रियाँ उनके मृतक शरीरों को गोदी में लेकर कुररी की भाँति रुदन करने लगीं और उनसे लिपट लिपटकर विलाप करने लगीं। वे रोते रोते कहती थीं—"हे प्राणनाथ! आप क्या मरे हम सबको मृतक बना गये। आपके बिना हम कैसे जीवित रह सकती हैं। हमारा तो सर्वस्व नष्ट हो गया प्रियतम! हम आपकी पत्नियाँ ही विधवा नहीं

हुयीं; यह मथुरापुरी भी आपके बिना विधवा हो गई। इसके भी सिर का सिंदुर पुछ गया। यह भी हमारी ही भाँति सम्पूर्ण उत्सव मंगलो से विहीन हो गयी। हे धर्मज्ञ! आप सब धर्मों के जानने वाले थे, फिर आपने ऐसा अधम क्यों किया। इन निरपराध रामकृष्ण आदिसे द्वप क्यो किया? हे करुणा मय! आप ही सोचो, जो प्राणी पर पीड़ा देनेमें सदा निरत रहता है, उसे शान्ति कैसे प्राप्त हो सकता है। निरपराध प्राणियोंसे द्वेप करनेके कारण ही अन्त मे आपको यह दिवस देखना पड़ा। इसी दुष्कृत्यसे आपकी ऐसी दुर्गति हुई। हे अनाथ वत्सल! हम अब लाओंको अब आप इस प्रकार अनाथ छोड़कर अकेले क्यो जा रहे हैं। हम अपनी दासियों को भी साथ लेते चलें। आपके बिना हम इस दुःखपूर्ण संसारमें अकेली रहकर क्या करेंगी। हे नर श्रेष्ठ! ये श्रीकृष्ण समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति और लयके एक मात्र स्थान हैं। ये सब रक्षक तथा प्रतिपालक हैं, इनसे द्वेष करके कौन प्राणी सुखी रह सकता है। किस शान्ति की प्राप्ति हो सकती है। कौन उन्नतिके पथकी ओर अग्रसर हो सकता है। जो सदा सुन्दर स्वच्छ सुखद शैयापर शयन करते थ, वे आप आज भूमिमें लोट रहे हैं। कोई आपके समीप भी नहीं आता विद्वेषीकी ऐसी गति होनी स्वाभाविक ही है। हम क्या करे कहाँ जायँ हमें कौन धैर्य बँधावेगा?"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अपनी मामियोंको रोते देखकर माधव भी उनके समीप गये और वैसे ही आँसू निकालकर ऊँ ऊँ करके रोने लगे और रोते रोते बोले—"मामियो!

मर गये। बड़ा बुरा हुआ, किन्तु करें क्या, भाग्यको कौन मेंट सकता है। सभी प्राणी अपने अपने कर्मोंके अनुसार दुःख सुख भोगते हैं। प्रारब्धको अन्यथा कौन कर सकता है।"

कंसकी प्रधान पटरानीने कहा—"लल्लू। तुमने ही तो अपने मामाको मारा है और अब तुम ही ऐसी बातें कर रहे हो?"

भगवान्‌ने आश्चर्य की मुद्रा दिखाते हुए कहा—"मामी! तुम भी ऐसा कलंक मेरे माथे मढ़ोगी क्या? कौन प्राणी किसे मार सकता है, सब अपने अपने भाग्यसे मरते हैं। मामाका काल आगया था, वे अपने भाग्य से मर गये।"

पटरानीने कहा—"मरे तो भाग्यसे ही किन्तु मारा तो तुमने ही है।"

भगवान् भोले बालक की भाँति बोले—"अरी, मामी! भला, मैं मामाको क्यों मारता। वे तो अपने आप ही अंट बंट बकने लगे।

यह तो भगवानकी बड़ी कृपा हुई, जो मामाजी नीचे रहे। कहीं भानजा नीचे आजाता तो तुम्हारी सब प्रतिष्ठा धूलि में मिल जाती। अब हो गया सो हो गया उसका सोच करने से ही क्या लाभ? मामाजी अब लौटकर तो आही नहीं सकते।"

इस प्रकार भगवान ने उन राजमहिषियों को भाँति भाँति से आश्वासन दिया। फिर भगवान् तुरन्त वहाँ दर्शकों में बैठे हुए अपने मातापिता के समीप गये। जाकर उन्होंने अपने हाथों से

उन्हें बन्धन से मुक्त किया और बड़े भक्ति से उनके चरणों में प्रणाम किया।

देवकी वसुदेव ने अपनी आँखों से श्रीकृष्ण बलराम के अमानुषिक कृत्य देखे थे, अतः राम-कृष्णके प्रणाम करने परभी उन दोनों ने उन्हें आशीर्वाद नहीं दिये। अपितु उन्हें सच्चिदानन्द जगदीश्वर समझकर शंकित चित्त होकर हाथ जोड़े के जोड़े ही श्रद्धापूर्वक खड़े रहे।

भगवान् ने सोचा—"अरे, यह तो सब गुड़ गोबर हो गया। अब तक गोकुल वृन्दावन में हम लाला, कनुआ बच्चा, छोरा और न जाने किन किन प्यार के नामों से पुकारे जाते थे। यहाँ आते ही भगवान् बन गये, तब तो सब गुड़ गोबर हो गया। जिनसे हमारा माता पिता का सम्बन्ध है, वे ही हममें ऐश्वर्य भाव रखने लगे, तब तो सभी मधुर लीला समाप्त हो जायगी। जिस तत्व ज्ञान को लोग बहुत बड़ी वस्तु समझते हैं, वह तो हमारी तनिकसी दृष्टि में हो जाता है। वह तो घर की वस्तु है, किन्तु यह पुत्र-स्नेह माधुर्य वात्सल्य रस की सुखद लीला परम दुर्लभ है। इसी का आस्वादन करने के लिये तो हम अवनि पर अवतरित हुए हैं। यह हो जाय, तो ब्रह्मज्ञान तो जब चाहें तब हो सकता है। इस समय तो ये हमें अपना पुत्र मानकर ही प्यार करें।" यह सोचकर भगवान् ने उनकी बुद्धि पर अपनी जगन्मोहिनी माया की यवनिका डाल दी। माया का पर्दा पड़ते ही अब देवकी वसुदेवजी ऐश्वर्यकी सब बातें भूल गये, उनके

मन में पुत्र स्नेह उमड़ने लगा। तब बलदेवजी के सहित भगवान् हाथ जोड़े हुए उनके समीप गये और अत्यन्त आदर तथा विनय के साथ उनसे बोले—"हे पिताजी ! हे माताजी ! आप हमसे बोलते क्यों नहीं हम बड़े अभागी हैं, जो आपकी सेवा से सदा वञ्चित रहे।"

वसुदेवजी ने कहा—"भैया ! हमने तो सुना है, तुम दोनों भगवान् हो। भूमि का भार उतारने पृथिवी पर प्रकट हुए हो।"

भगवान् बोले—"पिताजी ! ये स्वार्थी लोग ऐसे ही कह देते हैं हम तो आपके पुत्र हैं। पुत्र भी सुपुत्र नहीं। कुपुत्र हैं, भाग्य हीन पुत्र हैं। देखिये, आप तो सदा हमारे लिये उत्कंठित ही बने रहते थे। किन्तु हम ही ऐसे भाग्यहीन निकले कि आपकी उत्कंठा पूर्ण न कर सके। माता पिता अपनी सन्तानों की नित्य नई बालक्रीड़ाओं को देखकर सदा प्रमुदित होते रहते हैं। उन्हें गोदी में लेकर सुखका अनुभव करते हैं, उनके अंगों के स्पर्श से उन्हें परम सुख मिलता है। जब उन्हें प्रेम से हृदय से चिपटा लेते हैं, बार बार मुख चूमते हैं तो निहाल हो जाते हैं, अपने को कृतार्थ मानते हैं। माता पिता के लिये संतानों के साथ खेलने से बढ़कर कोई सुख देने वाली वस्तु नहीं है। बालकों का भी यह परम सौभाग्य है, कि वे माता पिता के प्रेमको प्राप्त कर सकें। हम भी ऐसे अभागे निकले कि माता पिता को तड़पते छोड़कर वनों में दिन काटते रहे। हमारी बाल्य पौगण्ड और किशोर ये तीनों अवस्थायें यों ही निकल गयीं। हम दोनों को आपकी छत्रछाया में आपके चरणों में रहने का सौभाग्य प्राप्त न हो सका। आपकी कुछ सेवा न कर सके।"

वसुदेवजी ने कहा—"तुम दोनों जीवित बने रहे और तुम्हें हम आज सकुशल देख रहे हैं, यही हमारे लिये बहुत है। सेवासे

क्या होता है ?"

भगवान् बोले—"सेवा इसलिए नहीं की जाती, कि वे दुःखी हैं, लाओ उनके दुःख को दूर कर दें। सेवा तो कर्तव्य बुद्धि से की जाती है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सभी की प्राप्ति इस शरीर द्वारा किये हुए साधनों द्वारा ही होती है। सम्पूर्ण फलों का साधन भूत यह शरीर माता पिता के द्वारा ही प्राप्त होता है। जिन माता पिता से ऐसा सुन्दर शरीर मिला है, जो नाना क्लेश सहकर इसका पालन पोषण करते हैं, पढ़ा लिखाकर बड़ा करते हैं, सदा संतानों के लिये मंगल कामना करते रहते है, उन माता पिता के ऋण से मनुष्य सौ वर्षों में भी उऋण नहीं हो सकता। अपने जीवित शरीर का चर्म निकालकर उनके पैरों की जूती बना दे, तो भी उनके उपकार का प्रतिशोध नहीं कर सकता। संतान का सर्व प्रथय कर्तव्य है निष्कपट भाव से माता पिता की सेवा करना, सो हम अपने इस कर्तव्य से वञ्चित ही रहे।"

वासुदेवजी ने कहा—"सेवा तो सामर्थ्य रहने पर ही की जाती है, तुम तो यहाँ थे ही नहीं फिर सेवा क्या करते ?"

भगवान् बोले—"इसीका तो हमें पश्चात्ताप है, यही एक मात्र सन्तोष है, कि हम ऐसी परिस्थिति में थे, कि आपकी यहाँ आकर सेवा करना हमारे लिए कठिन ही नहीं असंभव था। हम असमर्थ थे, किन्तु जो समर्थ होने पर भी अपने को पैदा करने वाली माता की, अपने वीर्यदाता पिता की सती साध्वी पत्नी की, छोटे छोटे अपने बालकों की, गुरु, ब्राह्मण और शरणागतों की सेवा नहीं करता, इनकी उपेक्षा करके स्वयं ही अच्छी अच्छी वस्तुओं को खा लेता है, वह जीता हुआ भी मृतक के समान है। हाय ! हमारे इतने दिन व्यर्थ ही बीत गये। हम आपकी कुछ भी सेवा न कर सके। हम करते भी क्या, हम तो मारे डर के कभी किसी पर इस बात को प्रकट ही

करते थे, कि हम यादव हैं देवकी मैया और वसुदेवजी के पुत्र हैं। हम तो पत्तों का बच्चा जैसे घोंमले में छिपा रहता है, वैसे ही व्रज में छिपे रहते थे। कंस के भय से हमारा चित्त सदा उद्विग्न बना रहता था। इसलिये हे माता! हे पिता! हमारे अपराधों को क्षमा करो। भूल के कारण जो हमसे प्रमाद हो गया, उसे मन में मत लाओ। हमें अपना पुत्र समझकर प्यार से अपनाओ।' दुष्ट कंस ने आप दोनों को कैसे कैसे क्लेश दिये। कैसा कैसा अन्याय आपके साथ किया। आप दोनों को कारावास में रखा। अब जो बात हो गई सो हो गई। कंस ने अपने किये का फल पालिया, अब आप दोनों हमें अपनी संतान समझकर प्यार करें और परवश होने के कारण जो हम सेवा न कर सके, उसको मन में न लावें। हम आपके पुत्र हैं।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् की ऐसी ममता भरी, प्रेम में सनी वाणी सुनकर देवकी वसुदेव का हृदय तो पानी पानी हो गया। उनके अन्तःकरण में पुत्रस्नेह की हिलोरें उठने लगीं। अब उन पर रहा नहीं गया। इन माया से मानव बने माधव की ममतापूर्ण बातों से वे मोहित हो गये। कुछ क्षण पहिले जो उनके मन में तत्वज्ञान उत्पन्न हुआ था, उसे वे उसी क्षण भूल गये। उन दोनों ने बड़े स्नेह से बलराम और श्रीकृष्ण को गोदी में बिठा लिया। पुत्रस्नेह के कारण उनका हृदय आनन्द में भर गया। उस समय उनकी दशा विचित्र हो रही थी। आज चिरकाल के अनन्तर अपने पुत्रों को पाकर वे प्रेम में अधीर हो रहे थे। जिस बालक को उत्पन्न होते ही माता ने अपने स्तन का दूध पिलाया था, आज वह बारह वर्ष का हुआ, उसकी गोदी में बैठा है। माता के हृदय सागर में प्रेम का बवण्डर उठ रहा था। उसका शरीर थर थर काँप रहा था। वह जितना ही ज्यों अपने पुत्र को छाती से चिपटाती, उतना ही उसे सुख

होता। उसके स्तनों से दो दुग्ध की धारायें बह रहीं थीं। जिनसे उसके तथा श्यामसुन्दर के वस्त्र भींग रहे थे। आँखों से शीतल अश्रुओं की दो धारा बहकर श्यामसुन्दर की कुटिल अलकावली को भिगो रही थीं मानों उनका अभिषेक हो रहा। वे कुछ कहना चाहती थीं, किन्तु कंठ के रुद्ध हो जाने से वाणी के गद् गद् हो जाने से कुछ कह नहीं सकती थीं। यही दशा वसुदेवजी की थी। उन्होंने उत्पन्न होते समय श्रीकृष्ण का तो मुख देखा था, किन्तु बलदेवजी को आज उन्होंने सर्व प्रथम ही देखा है अतः वे बार बार उनके मुख को चुम्बन कर रहे थे। अपलक भाव से दोनों की ओर निरन्तर निहारने पर भी माता पिता की तृप्ति नहीं होती थी।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब भगवान् ने अपने माता पिता को धैर्य बँधा दिया, उन्हें पुत्रस्नेह में भिगो दिया, तब आप अपने दुःखी नाना उग्रसेन की खोज करने लगे। अब जिस प्रकार उग्रसेनजी को समस्त यादवों का राजा बनाया, उस प्रसङ्ग को मैं आगे कहूँगा। आप सब समाहित चित्त से श्रवण करें।"

छप्पय

गर्भ, प्रसवमहँ सहित मातु दुख नित पालन महँ।
कौन उऋण है सके मातु पितुतैं शिशु जगमहँ॥
बालक घिरइत फिरहिं किलकिकै हिय सरसावैं।
क्रीड़ा जननी जनक लखैं अतिशय सुख पावैं॥
क्रूर कंस की कुटिलता, बस, हम तुम दुख सब सहे।
नहीं दयो सुख नहिं लह्यो, भयवश छिपि बन बन रहे॥

श्री उग्रसेनजी का राज्याभिषेक

(१०४६)

एवामाश्वस्य पितरौ भगवान् देवकीसुतः ।
मातामहं तूग्रसेनं यदूनामकरोन्नृपम् ॥ *

(श्रीभा० १० स्क० ४५ अ० १२ श्लो०)

छप्पय

मायापति की सुनी मधुर ममता मय बानी ।
भूलि गयो सब ज्ञान मोह ममता लपटानी ॥
बार बार हिय लाइ करें अनुभव अति सुत सुख ।
गोदी महँ बैठाइ श्याम बल को चूमें मुख ॥
मातु पिता परितोष करि, उग्रसेन के ढिँग गये ।
सिंहासन आसीन करि, पुनि सबके नृप करि दये ॥

कुल में एक भाग्यशाली व्यक्ति उत्पन्न हो जाता है तो पूरे कुल को अजर अमर बना देता है, सभी के दुःखों को काट देता है। इसी प्रकार एक कुल में क्रूर हो जाता है, तो सभी को कष्ट पहुँचाता है, सर्वत्र कुल का अपयश फैलाता है । इसलिये पितृलोक में बैठे हुए पितृगण मनाते रहते हैं, कि हमारे कुल में

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! इस प्रकार माता पिता को आश्वासन देकर भगवान् देवकीनन्दन ने अपने नाना उग्रसेन को यादवों का राजा बनाया ।"

कोई भगवद्भक्त, सदाचारी, सज्जन, साधु पुरुष उत्पन्न हो जाय, जिसके पुण्य प्रभाव से हम मुक्त हो जायँ। कुल में एक भगवद्भक्त हो जाता है, तो वह सात ऊपर की, सात नीचे की और सात मातृवंश की इस प्रकार इक्कीस पीढ़ियों को तार देता है। जिस कुल में साक्षात् पूर्णब्रह्म परात्पर प्रभु ही प्रकट हो जायँ, तो उस कुल की श्रेष्ठता के सम्बन्ध में तो कहना ही क्या ? यदि उस कुल में पहिला दूषण भी रहा होगा, तो वह मिट कर भूषण हो जायगा। वह कुल किसी कारण से नीच भी समझा जाता होगा, तो भगवान् के प्रभाव से वह कुल सर्वोत्कृष्ट बन जायगा। भगवान् ही तो छोटे बड़े उत्तम तथा कनिष्ट को बनाने वाले हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार चिरकाल से उत्कंठित अपने माता पिता को भगवान ने आश्वासन दिया। फिर उस स्थान पर गये, जहाँ कंस के बूढ़े पिता उग्रसेन बन्दी बने हुए रहते थे।"

भगवान् ने जाकर उनके चरणों में प्रणाम किया और कहा–"नानाजी ! अब मैं आ गया हूँ ! मामाजी ने अपनी करनी का फल पा लिया। अब यादवों का सिंहासन खाली है। राजवंश का ऐसा सदाचार है, कि जब तक दूसरा राजा गद्दी पर न बैठ जाय, मृतक राजा का शरीर जलाया नहीं जाता।"

उग्रसेनजी ने कहा—"भैया ! बड़े भाग्य की बात है, तुम सकुशल पुनः मथुरा से लौट आये। कंस की दुष्टता सीमा को उल्लंघन कर गई थी। उसने तुम्हारे छै भाइयों को उत्पन्न होते ही मार डाला। मुझे भी बन्दी बना लिया। अब जो हुआ सो हुआ, तुमने इस राज्य को अपनी वीरता से प्राप्त किया है, तुमहीं सिंहासन पर बैठो। अब इस गण राज्य की प्रथा को मिटाकर तुम राजाधिराज बन जाओ।"

भगवान ने नम्रता के साथ कहा—"नानाजी! आप कैसी बात कह रहे हैं। आप बड़े बूढ़ों के रहते, हम राज्य सिंहासन पर कैसे बैठ सकते हैं। एक तो हमारे पूर्वज महाराज ययाति ने हमारे कुल को शाप दे दिया है, कि तुम्हारे कुल में कोई छत्र चँवर धारी राजा न होगा। इसलिये हमारे यहाँ संघ शासन चलता है। संघ जिसे सभापति चुन दे, वही शासन करे। पहिले हमारे बाबा महाराज शूरसेन सभापति थे, उनके पश्चात् हमारे पिताजी को संघ ने सभापति न चुनकर आपको चुना। आपको अन्याय से मामा कंस ने गद्दी से उतार दिया और स्वयं सभासदों की इच्छा के विरुद्ध अधिनायक बन गया। अब मेरी इच्छा है, यदुवंशियों का भी एक राज्य स्थापित हो जाय।"

उग्रसेनजी ने कहा—"मैं भी तो भैया! यादव ही हूँ। जब महाराज ययाति का शाप समस्त यदुवंश को है। जब तुम शाप के भय से राजा बनना नहीं चाहते, तो मैं कैसे बन सकता हूँ।"

भगवान् ने कहा—"नानाजी! यह सत्य है, कि आप भी यदुवंशी हैं, किन्तु मैं आज्ञा देता हूँ, आप बिना विचार के राजा बन जायँ, छत्र चँवर धारण करें। महाराजाओं का सा राजमुकुट पहिने।"

उग्रसेनजी बोले—"भैया! हमारे कुल में तो यह नई ही बात होगी। दूसरे विशुद्ध वंश के राजा इसका विरोध करेंगे, मंडलीक राजा हमें कर न देंगे। एक नया विरोध खड़ा हो जायगा।"

भगवान् ने कहा—"नानाजी! आप कोई चिन्ता न करें। हम सब आपकी प्रजा हैं, आप हम सब यदुवंशियों के स्वामी हैं। हम सेवकों के रहते, अन्य राजालोग क्या कर सकते हैं। पृथिवी के राजाओं की तो बात ही क्या? देवताओं के

राजा इन्द्र भी आपकी अधीनता स्वीकार करेंगे, समस्त लोकपाल आकर आपके चरणों में भेंट समर्पण करेंगे। आप निःशंक होकर राजसिंहासन पर विराजें और महाराजाओं के अनुरूप छत्र चँवर धारण करें।"

यह सुनकर गद्गद् कंठ से उग्रसेनजी ने कहा—"यदुनन्दन! आप ही समस्त जगत् के स्वामी हैं। आप अपने भक्तों की प्रतिष्ठा बढ़ाने, संसार में उनकी कीर्ति स्थापित करने के लिये शिष्य, सेवक, भृत्य, दूत तथा सारथी आदि सब कुछ बन जाते हैं। आप जो भी बन जाते हैं, उसी में आप शोभा को प्राप्त होते हैं। आपके लिये न कोई छोटा काम है, न बड़ा। यद्यपि मैं इसके योग्य नहीं, आपके सम्मुख सिंहासन पर बैठूं, किन्तु योग्य अयोग्य बनाने वाले भी तो आप ही हैं। आप मूक से व्याख्यान दिला सकते हैं, पंगु से गिरि लंघन करा सकते हैं, मशक की फूंक से सुमेरु को उड़ा सकते हैं। सीप में सातों समुद्रों को भर सकते हैं। आप जो करना चाहते हैं, उसे कोई अन्यथा नहीं कर सकता। जब आपकी आज्ञा ही है, तो मैं मना कैसे कर सकता हूँ।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! उग्रसेनजी के ऐसा कहने पर उन्होंने सेवकों को आज्ञा दी, तुरन्त सिंहासन सजाया गया। उग्रसेनजी का विधिवत राज्याभिषेक किया। भगवान बलराम तथा श्रीकृष्णचन्द्र छत्र चँवर लेकर उनके पीछे खड़े हुए। उस समय समस्त यदुवंशी आनन्द के अश्रु बहा रहे थे। तदनन्तर कंसादि समस्त मृतकों की भगवान् ने अन्त्येष्टि क्रिया कराई और फिर राज्य की समस्त व्यवस्था की।

कंस के क्लेशों के कारण बहुतसे यदु, वृष्णि, अन्धक, मधु, दाशार्ह और कुकुर वंश में उत्पन्न हुए यादव इधर उधर अन्य राज्यों में भाग गये थे। भगवान ने दूतों को भेज भेजकर उन

सबको आदर पूर्वक बुलाया। वे अपनी धन सम्पत्ति यहीं छोड़ गये थे। दुष्ट कंस ने किसी को कुछ ले जाने नहीं दिया था। वे अन्य राज्यों में शरणार्थी होकर गये थे, जिस किसी प्रकार अपने दिन बिता रहे थे। जब उन्होंने सुना कि भगवान् की कृपा से कंस का कुशासन समाप्त हो गया और मथुर प्रदेश पर पुनः महाराज उग्रसेन का अधिकार हो गया। आनंदकंद भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हम सबकी रक्षा करेंगे। हमें पुनः स्वजन समझकर आश्रय प्रदान करेंगे, तो वे बड़े हर्ष के साथ मथुरापुरी में लौट आये। भगवान् ने देखा उनके समस्त सजातीय स्वजन दुखी हैं, विदेशों में रहने के कारण कष्ट सहते सहते कृश हो गये हैं, तो भगवान्को बड़ी दया आई। उन्होंने उन सबका अत्यधिक स्वागत, सत्कार किया। सम्मान पूर्वक उन्हें सुन्दर भवनों में रखा। जिनके घर गिर गये थे, उन्हें नये बनवा दिये, जिनके जीर्ण हो गये थे, उनका जीर्णोद्धार कर दिया। कंस ने जिनकी सम्पत्ति अपहरण कर ली थी, उनको उससे दूनी तिगुनी दिला दी। सभी को वस्त्र आभूषण, भवन, दास, दासी, वाहन तथा अन्य जीवनोपयोगी वस्तुएँ दिला दीं। सब सामग्री देकर, सम्मान के सहित उन्हें अपने अपने घर, में पूर्ववत बसा दिया। वे अपने घरों को पुनः प्राप्त करके परम प्रमुदित हुए।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! यदुवंशी विदेशों में बसते समय अपनेको अनाथ समझते थे, किन्तु अब श्रीकृष्ण और बलरामजी की भुजाओं से सुरक्षित होकर वे अपने को सनाथ समझने लगे। वे राम कृष्ण की कृपा से समस्त कष्टों को भूल गये अब उन्हें न कोई भय रहा न किसी प्रकार की कामना ही रही। निर्भय, निष्काम तथा सफल मनोरथ होकर नित्य प्रति भगवान् वासुदेव के सदयहास तथा कृपा कटाक्षयुक्त नित्य विकसित मुखारविन्द के दर्शनों से परम प्रमुदित हुए अपने अपने घरों में उसी

प्रकार विहार करने लगे, जिस प्रकार स्वर्ग में पुण्यात्मा सुकृति जन अपने अपने विमानों में विहार करते हैं। युवक युवतियों की तो बात पृथक् रही, जो वहाँ के वृद्ध स्त्री, पुरुष थे, वे मदनमोहन के मधुर मनमोहक मुखारविन्दों को निहारकर वृद्धावस्था को त्यागकर तरुणावस्थापन्न हो गये। अब जिस प्रकार भगवान् ने नन्दजी को विदा किया, उस प्रसङ्ग का वर्णन आगे करूँगा।

छप्पय

कंसादिक के मृतक करम विधिवत करवाये।
पुनि परदेशनि गये बन्धु बान्धव बुलवाये॥
असन, वसन, धन, रतन, भवन सबही कूँ दीन्हे।
करि सब विधि सत्कार तुष्ट यादव सब कीन्हे॥
राम श्याम को सदय मुख, लखि सब आनन्दित भये।
पीकें प्रभु मुख माधुरी, वृद्ध युवक सम बनि गये॥

नन्दजीकी विदाई

(१०४७)

अथ नन्दं समासाद्य भगवान् देवकीसुतः ।
संकर्षणश्च राजेन्द्र परिष्वज्येदमूचतुः ॥*

(श्री भा० १० स्क० ४५ अ० २० श्लो०)

छप्पय

आये दोऊ बन्धु नंद ढिँग अति सकुचावत ।
बोले गद् गद् गिरा नयन तैं नीर बहावत ॥
मातु यशोदा सहित करी अति ममता तुमने ।
उऋन है सकें नहीं प्रेम पाया जो हमने ॥
मैया रोवति होइगी, गैया जैसे वत्स बिन ।
वास मधुपुरी महँ करें, आयसु दें तो कछुक दिन ॥

मानव स्वभाव कितना विचित्र है। इसका रहस्य कोई भली भाँति जान नहीं सकता। मनुष्य जितना ही सरस सहृदय होता है, उतना ही क्रूर और निर्मोही बन जाता है। जिसने अपना कोई सम्बन्ध नहीं, उसके साथ रहना पड़ता है तो उनमें ऐसे घुल मिल जाता है जैसे दूध में शक्कर। उस

---

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"हे राजेन्द ! इसके अनन्तर भगवान् देवकी नन्दन तथा बलभद्रजी नन्दजी के समीप आकर उनसे प्रेम पूर्वक लिपटकर कहने लगे।"

समय इतना प्रेम हो जाता है,कि दोनोंमें से कोई कल्पना भी नहीं कर सकता कि हमें कभी बिछुड़ना भी होगा। हम कभी विलग भी होंगे। किन्तु दैवकी प्रेरणा से, दो मिले हुए हृदय अलग होते हैं। उस समय कितना कष्ट होता है, हृदयमें कितनी वेदना होती है, यह वर्णनका विषय नहं। हृदय फटता नहीं और सब दुर्गति हो जाती हैं। एक दिन वह भी आ जाता है, कि जिनका एक पलका वियोग असह्य होता था, जिन्हें एक दिन बिना देखे हृदय धक् धक् करने लगता था, उनके बिना पक्ष, मास, वर्ष, युग तथा पूरा जीवन बिताने पड़ता है। जैसी परिस्थति सम्मुख आ जाता है, दुखसे, सुखसे, कष्टसे तथा अनुरागसे वह भोगनी ही पड़ती है। संयोग वियोगका बंधा हुआ समय होता है, जब तक जिसका संयोग वियोगका बंधा हुआ समय होता है, जब तक जिसक संयोग बदा है, तभी तक वह साथ रह सकेगा, जब वियोगका काल आ जायगा, तो लाख प्रयत्न करने पर भी कोई संयोग नहीं करा सकता। प्राणी संयोग वियोग में स्ववश नहीं परवश हैं। इच्छा न रहने पर भी उसे सब सहना पड़ता है।

सूतजी कहते—"मुनियो! कंस मारा गया, उग्रसेन राजा हो गये, समस्त यदुवंशी प्रसन्न हो गये। नन्दजी अब सोच रहे थे—"कनुआ बलुआको यहाँ मथुरा में आकर बड़ा परिश्रम करना पड़ा। मुझे यह पता होता, तो मैं इन्हें साथ ही लेकर न आता। अच्छा, नारायण जो करते हैं, अच्छा ही करते हैं। कंसके कारण सभी प्रजा दुखी थी, वह मारा गया अच्छा हुआ। कृष्णको अधिक परिश्रम करना पड़ा। कोई बात नहीं, अब ब्रजमें चलकर उसकी मालिश कराया करूँगा। दूध, रबड़ी और ताजा मक्खन यही खिलाऊँगा। दश-बीस दिन कुछ भी काम न करने दूँगा। इससे इसकी सब

दूर हो जायगी। फिर गाय चराने जायगा।"

नन्दजी इस प्रकार पुत्र स्नेह के कारण अनेक बातें सोच रहे थे, कि उन्हें सामने से राम श्याम आते हुए दिखाई दिये दोनोंको अपनी ओर आते देखकर गोपोंके हर्षका ठिकाना नहीं रहा। उनके मन में जो दो तीनसे भाँति भाँति के भाव उठ रहे थे, वे सब कपूरके भाँति उड़ गये। सभी को आशा हो गई, कि अब आज राम श्यामको साथ लेकर ब्रजको चलेंगे। नन्दजी का भी मुख कमल खिल उठा। आते ही श्यामसुन्दर गद्गदकर नन्दजी से लिपट गये। नन्दजीने उनके सिरपर हाथ फिराया। उनके गोल गोल सुन्दर कपोलोंको हाथसे छूकर बार बार चूमा। श्रीकृष्णकी आँखें डबडबाई हुई थीं, उनमें आँसू छलक रहे थे। वे नीचा सिर किये हुये थे। नन्दजीने उनकी ठोढ़ी पकड़कर मुख ऊपर किया। देखा नेत्र अश्रु पूर्ण हैं। बड़े प्यार से नन्दजीने कहा—'अरे, कनुआ! रोते हैं भैया! राम राम। कोई बात नहीं। काम काज में देरी हो ही जाती है।"

इतना सुनते ही श्यामसुन्दरके नेत्रकी कोर से अश्रु बिन्दु ढुलक ही तो पड़े! नन्दजीने अपने दुपट्टे से आँसुओंको पोंछते हुए कहा—"अरे, कनुआ! अभी तेरा लड़कपन गया नहीं भैया! देख तैंने कैसे बड़े बड़े काम किये हैं। दस हजार हाथियों के बल वाले कंसको तैंने मार दिया है। अच्छा छोड़ो इन बातों को यह बताओ अब ब्रज कब चलना है।"

इस प्रश्न को सुनकर श्यामसुन्दर सहम गये। वे कहना चाहते थे, किन्तु मुखसे वाणी निकलती नहीं थी। वे गोपों से आँख नहीं मिला रहे थे। नीचा ही सिर किये हुये वे बोले—"बाबा! आपकी आज्ञा हो, तो हम कुछ दिन मथुरा ही में रह जायँ।"

नन्दजीने कहा—"भैया! हमें तो यहाँ राजधानी में अधिक

दिन रहना अच्छा लगता नहीं। अब अपने लोगों को काम ही क्या है। कंस मर ही गया, उग्रसेन राजा हो ही गये। अब अपना भी तो काम देखना है । तो यहाँ खेल माल में भूल गया। तुझे पता नहीं, तेरे बिना वह कितनी गौएँ दुखी होंगी।"

भगवान् का हृदय धक् धक् कर रहा था। वे सम्पूर्ण साहस को बटोर कर बोले—"बाबा! आप चलें, वहाँ के काम काज हैं। हम फिर आवेंगे।"

नन्दजीने अत्यंत ही ममता के साथ कहा—"अरे, भैया! तुम लोग अकेले कैसे रहोगे। और एक आध दिन रहने की इच्छा हो तो हम ठहर जायँ।"

श्रीकृष्ण बोले—"बाबा! अब हमें कहने में तो लज्जा लगती है। आप सोचेंगे ये लोग कैसे कृतघ्न हैं। बात यह है, कि हमारे माता पिता तो आप ही हैं। आपने ही हमें पुत्रों की भाँति पाला पोसा है। हम तो अपने जन्म देने वाले माता पिताको जानते भी नहीं थे।"

नन्दजी ने चौंककर कहा—"अरे, कनुआ! तैंने भाँग पी ली है क्या? तू क्या अंट संट बक रहा है। अरे, भैया! तेरे माता पिता तो हम ही हैं।"

भगवान् बोले—"बाबा! आप तो हो ही। किन्तु गर्गजी ने आपको बताया ही था, कि मेरा जन्म माता देवकी के उदर से हुआ है। इसीलिये गर्गजी ने मेरा नाम वासुदेव बताया था। मैया देवकीजी और पिता वसुदेवजी भी हमारे लिये चिर-काल से उत्कंठित हैं, इसलिये अब कुछ दिन इनके चरणों में रहकर इन्हें सुख देने की हमारी इच्छा है। आप व्रज में जायँ, सबको धैर्य बँधावें। मैया को मेरा चरण छूना कहें। उनको दुःख तो बहुत होगा, किन्तु करें क्या कर्तव्य बड़ा

हमें ऐसा करना पड़ रहा है।"

यह सुनकर नन्दजीका तो हृदय धक् धक् करने लगा। उनके नयनोंमें जल भर आया। वे कुछ निर्णय ही न कर सके, क्या करें। ओहो! यह कनुआ हमारा पुत्र नहीं। इस बातको स्मरण करके उनका अन्तःकरण ईंठने सा लगा। हृदय हिलने लगा दोनों हाथोंमे कसकर हृदयको थामकर वे रोते रोते बोले—"कनुआ! तू इतना कपटी निकलेगा। इसका हमें पता नहीं था। आज बारह वर्ष तक हमने तुझे दोनों पलक जैसे पुतलियों को रखते हैं वैसे तुझे रखा। हम कभी कल्पना भी नहीं कर सकते थे, कि तू हमारा पुत्र नहीं है। तू भी कितने प्यारसे मुझे बाबा कहता था, तो और महरिको मैया मैया कहकर पुकारता था। आज यहाँ मथुरा में आकर कहता है, तुम मेरे माता पिता नहीं। न सही हम तेरे माता पिता। नौकर ही सही, किन्तु नौकर के प्रति भी कोई इतनी निष्ठुरता नहीं करता। न जायगा तो महरि क्या कहेगी? हाय! वह नित्य दिन गिन रही होगी। आते समय उसने मुझसे बार बार कहा—"देखो, बच्चोंको तुरन्त लौटा लाना, वहाँ देर मत करना। अब जब तुम्हारे बिना मैं जाऊँगा, तो उसका हृदय फट जायगा। वह नित्य मथुरा के मार्ग की ही ओर देखा करती होगी। दूर तक गोपों को भेजती होगी, कि देख आओ कहीं मेरे लाला आ तो नहीं रहे हैं। नित्य तुम्हारे लिये अपने हाथोंसे माखन निकालकर रखती होगी। तुम न आओगे, तो उसे कितना क्लेश होगा। इसे कौन बता सकता है। जब वह सुनेगी, मैं श्याम की मैया नहीं, उसकी दूध पिलाने वाली धाय हूँ, तो उसका हृदय चूर चूर हो जायगा। मैया! मैं तो तुम्हारे बिना व्रज में पैर भी न रखूँगा। एक बार तुम मेरे साथ चलो। फिर चाहे तुम उसी दिन लौट आना। मुझे सब भला बुरा

कहेंगे। ताने मारेंगे। मुझमें उन्हें सहने की शक्ति नहीं।" इतना कहते-कहते नन्दजी ढाह मारकर बच्चों की भाँति फूट फूटकर रोने लगे। और भी सब गोप मुख ढाँप-ढाँपकर रो रहे थे। श्यामसुन्दर की भी बुरी दशा थी, वे भी नन्दजी की गोदी में मुँह छिपाये रो रहे थे।

दृश्य अत्यन्त ही करुणा पूर्ण हो गया था अक्रूरजी, वसुदेव जी, उग्रसेनजी तथा समस्त यादव वहाँ आ गये थे। सबके ही नेत्र सजल थे। कोई भी कुछ नहीं बोलता था। सर्वत्र स्तब्धता छाई हुई थी। उस स्तब्धता को भंग करते हुए बलदेवजी बोले—"बाबा! आपको इस प्रकार रुदन करना शोभा नहीं देता, जब आप वृद्ध होकर इतना विलाप करेंगे, तो फिर हम बालकों की तो बात ही क्या है। इस समय आप पधारें। यहाँ का काम धंधा करके फिर हम लोग व्रज में आवेंगे। आपकी छत्र छाया में जो हमने सुख पाया है, वह यहाँ कहाँ? उसे क्या हम भूल सकते हैं, उसकी स्मृति हमें विकल बनाती रहेगी। विवश होकर हमें आना ही पड़ेगा। जिन्हें आप अपना पुत्र मानते हैं, वे तो साक्षात् श्रीमन्नारायण हैं। भू का भार उतारने के ही लिये अवनि पर अवतरित हुए हैं। इन्हें यहाँ का काम कर लेने दीजिये। फिर आपके दर्शन करेंगे।"

नन्दजी ने आँसू पोंछते हुए कहा—"बलराम! भैया! तू जो कहता है, वह मैं सब जानता हूँ, किन्तु करूँ क्या, मुझसे रहा नहीं जाता। तुम दोनों को छोड़कर मैं जा नहीं सकता। मेरे पैर व्रज की ओर उठेंगे ही नहीं।"

श्यामसुन्दर ने कहा—"बाबा! अब तो मोह छोड़ना ही पड़ेगा। अब आपको आग्रह न करनी चाहिए।"

रोते रोते नन्दजी ने कहा—"कृष्ण! तेरे यहाँ इतने नौकर

चाकर हैं, फिर मैं ही तेरे लिये इतना भारी क्यों हो रहा हूँ, मुझे भी तू अपना एक नौकर ही समझ लेना। तेरे यहाँ गौएँ हैं, घोड़े हैं, उनकी ही देख देख करता रहूँगा। मैं और कुछ नहीं चाहता, तेरा मुख कमल नित्य देखते रहना चाहता

हूँ। मुझे धन, वैभव, कुटुम्ब, परिवार तथा राज्य आदि कुछ नहीं चाहिये।"

रोते रोते श्यामसुन्दर ने कहा—"बाबा! आप हमें लज्जित क्यों कर रहे हैं। यदि हम अपने जीवित शरीर का चर्म

निकालकर आपके पैरों की जूती भी बना दें, तो भी आपके ऋण से उऋण नहीं हो सकते। हमने तो सदा आपको ही अपना पिता और यशोदा मैया को ही अपनी जननी समझा है और सदा समझते रहेंगे। मेरा सर्वस्व आपका ही है। आपके रहने से मुझे कितना सुख होगा, किन्तु मुझे अपनी स्नेहमयी मैया की बार-बार याद आ रही है। आप न जायँगे तो वह रोती रोती अंधी हो जायगी। आपके जाने से उसे सान्त्वना मिलेगी। सबको मेरा संदेश कहना। मैं अति शीघ्र आऊँगा।"

नन्दजी ने रोते रोते प्रेम के रोष में कहा—"कृष्ण! हम क्या जानते थे, तू हमारे साथ ऐसा छल करेगा। तेरी मीठी मीठी वाणी सुनकर हम संसार को भूल गये थे, मुख देखकर ही जीते थे। हमें क्या पता था, तेरी वाणी में विष मिला है, तेरे हृदय में छुरी छिपी हुई है, तू मुख का मीठा है, किन्तु हृदय का इतना कठोर है। हाय! हम यह जानते कि तू असमय में हमें त्याग देगा, तो हम इतना प्रेम पहिले ही न बढ़ाते। अब तो तैंने हमें बिना मौत के मार दिया। यदि तुझे ऐसा ही करना था, तो सात दिनों तक गोवर्धन पर्वत को उठाकर वर्षा, आँधी से हमें बचाया क्यों। पर्वत को हमारे ऊपर छोड़ देता हम दबकर-पिचकर मर जाते, तब तू निष्कंटक होकर मथुरा का राज्य करता। तैंने हमें कालीयनाग के विष से क्यों बचाया। कालिय ह्रद में कूदकर मर जाते, तब तू अपने को वसुदेव देवकी का पुत्र घोषित करता। विष से, जल से, सर्प से, दावानल से तथा अन्यान्य असुर, राक्षसों से तैंने हमारी रक्षा क्यों की? इसी दुख को दिखाने के लिये हमें बचाया। यही सिद्ध करने को हमें जीवित रखा कि हम तुम्हारे पुत्र नहीं।"

श्रीकृष्णजी ने कहा—"बाबा! आप अब अधिक मुझे लज्जित न करें। मैया के सहित आपने हमारा अत्यन्त ही स्नेह पूर्वक

लालन पालन किया है। जैसा कि नियम है संतान के ऊपर माता पिता का स्नेह अपने शरीर से भी अधिक होता है, उसे आप दोनों ने प्रत्यक्ष करके दिखा दिया। प्राणों से भी अधिक हमें प्यार किया। पुतलियों की रक्षा जैसे पलक करते हैं, वैसे ही आपने हमारी रक्षा की। आपकी प्रशंसा सहस्र मुखों से शेषजी भी नहीं कर सकते। देखिये, संसार में बहुत से ऐसे माता पिता होते हैं, जो अपनी सन्तानों को उत्पन्न होते ही लोक लाज से, भय से, दरिद्रता से तथा अन्यान्य और भी अनेकों कारणों से त्याग देते हैं। उन माता पिता से त्यक्त बच्चों का जो अपने सन्तान के समान लालन पालन करते हैं, उनके वास्तविक पिता तो ये पालक ही हैं। जन्म देनेवाले तो जन्म देकर ही निवृत्त हो गये। अतः यथार्थ माता पिता तो आप ही हमारे हैं, किन्तु इस समय कार्य गौरव से मैं आपके आग्रह को मानने में असमर्थ हूँ। आप हठ न करें। व्रज में जाकर हमारे दुख में दुखी समस्त व्रजवासियों को आप धैर्य बँधायें।"

नन्दजी ने कहा—"श्याम! तेरा चित्त तो बड़ा कोमल था, आज तू इतना निष्ठुर क्यों हो गया। अच्छा, अब तुझे व्रज में रहना अच्छा न लगे, तो एक बार होकर फिर चले आना। मुझे तुम्हारे मैया का सोच है, तुम्हारे बिना उसकी जैसी दशा होगी उसे स्मरण कर करके मेरे रोंगटे खड़े हो रहे हैं।"

भगवान् बोले—"बाबा! सुख दुख तो सब सहना ही पड़ता है। जिनके साथ आज संयोग है, उनका वियोग अवश्यम्भावी है। प्रेमीजन अधिक काल तक एक साथ रह नहीं सकते। फिर मैं कुछ दूर थोड़ा ही हूँ। ४-५ कोश का ही तो अन्तर है, जब इच्छा हुई आ गया। इस समय आप आग्रह न करें। मैं फिर आप सब स्वजन, बन्धु बान्धवों को देखने

आऊँगा।"

बलदेवजी बोले—"बाबा! अब आप हमें अधिक संकोच में न डालें। संसार की ऐसी ही गति है। अधिक स्नेह में दुःख भी अधिक होता है। अधिक मीठे में कीड़े पड़ जाते हैं। प्रेम तो आत्मा से होता है। अतः इनका निरन्तर ध्यान करने से ही आपके सब दुःख शोक दूर हो जायेंगे।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब बलदेवजी ने ऐसा कहा, तो नन्दजी चुप हो गये। वसुदेवजी ने भी नन्दजी का बहुत अधिक सम्मान किया, उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की। अपने पुत्रों के प्रति नन्दजी का ऐसा अनुपम अनुराग निहार कर उनका हृदय भर रहा था। प्रेम के कारण उनका रोम रोम विकसित हो रहा था। उन्होंने भी साश्रु नयनों से, गद्गद् वाणी से नन्दजी को समझाया और कहा—"आप यहाँ वहाँ में कोई भेद भाव न मानें, यह भी आपका घर है, जब इच्छा हुई यहाँ आकर रहें।"

सबकी बात सुनकर नन्दजी समझ गये, श्रीकृष्ण बड़े निष्ठुर हैं, वे जो कह देते हैं उसे करके छोड़ते हैं, अब वे ब्रज जायेंगे नहीं।" यही सोचकर वे जाने के लिये उद्यत हुए।

छप्पय

अकबकाइ के नन्द कहें का कहत कन्हाई।
तू न जाय तो मरे विरह महँ तेरी माई॥
अरे निठुर मत बनें लाल तोकूँ समुझाऊँ।
एक कहै या लाख तोइ तजि नहिँ घर जाऊँ॥
कपटी मथुरा महँ भयो, मुख मीठो हिय महँ छुरी।
अरे, सोचि, तेरे बिना, होहि दशा ब्रज की बुरी॥

राम-श्याम के विना नन्दजी का व्रज गमन

(१०४८)

इत्युक्तस्तौ परिष्वज्य नन्दः प्रणयविह्वलः।
पूरयन्नश्रुभिर्नेत्रे सह गोपैर्व्रजं ययौ॥*
(श्री० भा० १० स्क० ४५ अ० २५ श्लो०)

छप्पय

मुदित होहि वसुदेव प्रेम की सीमा जानी।
रुदन करत घनश्याम नन्द की सुनि सुनि बानी॥
नन्द करयो हठ बहुत श्याम ने एक न मानी।
गोप सहित अति दुखित गमन की मन महँ ठानी॥
गोपिन कूँ सम्मान सुत, पट आभूषण बहु दये।
प्रेमाकुल दोनों भये, दोनों हिये तैं सटि गये॥

यह समस्त जीवन आशा पर ही निर्भर है। जीवन में से आशा चली जाय, तो जीवन ही न रहे। जिन्हें हम प्यार करते हैं, उनके दर्शन हो जायँगे, प्रेमियों का जीवन एक मात्र इसी आशा पर टिका रहता है। यह विश्वास हो जाय, कि अब मुझे

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् इस प्रकार भगवान् के बचन सुनकर नन्दजी ने राम-श्याम दोनों भाइयों का प्रेम से विह्वल होकर आलिङ्गन किया। और फिर नेत्रों में जल भर कर गोपों के सहित व्रज की ओर चल दिये।"

मेरे प्यारे के दर्शन न होंगे, तो यह जीवन एक क्षण भी नहीं रह सकता। दशरथजी को आशा थी, सुमन्त्र तीन दिन में वन को दिखाकर श्रीरामचन्द्र को लौटा लावेंगे। जब तीन दिन के पश्चात् सुमन्त राम-लक्ष्मण से हीन रथ लेकर बिलखते हुए लौट आये और महाराज को विश्वास हो गया, कि अब राम के दर्शन मुझे नहीं हो सकते, तो तुरन्त उनके प्राण पखेरू शरीर रूपी पिंजड़े को छोड़कर उड़ गये। वैराग्य में आशा को परम दुःखद बताया है, किन्तु प्रेम मार्ग में आशा को ही जीवन का आधार माना है। समस्त प्राणी सुख की आशा से कर्म करते हैं। सुख न मिलकर चाहे दुःख ही मिले, फिर भी आशा नष्ट तो होती नहीं। आशा तो बनी ही रहती है, आज नहीं कल, कल नहीं परसों हमें सुख मिलेगा अवश्य। इसी आशा पर यह संसार चक्र चल रहा है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! प्रेम में बहुत आग्रह भी नहीं किया जाता। जिनके प्रति प्रेम है, अनुराग है, अपनापन है। वे यदि किसी बात पर अड़ जाय, तो उन्हें उससे विचलित करने में स्वयं अपने को कष्ट होता है। अधिक आग्रह की नहीं जाती। श्रीकृष्ण बलदेवजी ने जब मथुरा में रहने की इच्छा प्रकट की तो नन्दजी को बहुत बुरा लगा। उन्होंने उन दोनों से यहाँ तक कह दिया कि यदि तुम न जाओगे तो मैं अकेला कभी भी व्रज न जाऊँगा।" किन्तु जब देखा राम-श्याम की इच्छा है, मैं नन्दग्राम जाऊँ ही, तो वे जाने को सहमत हो गये। वे भर्राई हुई वाणी से बोले—"कृष्ण! बलराम! भैया, तुम लोग यहाँ रहना ही चाहते हो, तो मैं अब अधिक आग्रह न करूँगा। मेरा हृदय तो पत्थर का है, मैं तो तुम्हारा झूठा ही, बनावटी पिता था। सत्य पिता होता, तो मैं अब तक जीवित थोड़े ही रहता। दशरथ की भाँति प्राण त्याग कर देता। किन्तु मेरा हृदय तो अश्मसार (फौलाद)

या बना है. वह न फटता है, न चूर चूर होता है। मुझे सोच महरि का है, वह तुमसे वहुत प्यार करती थी, उसके जीवन की मुझे आशा नहीं। अच्छा, भैया जहाँ रहो, सुख से रहो। यही हमारी कामना है। हमारी अन्तिम विनय यही है, कि व्रज को भूल मत जाना, कभी कभी वहाँ हो आया करना।"

भगवान यह सुनकर नन्दजी से लिपट गये और वोले—"बावा! कैसी बात कर रहे हैं आप। आप हमें अभी से दूसरा समझने लगे। अभी से शिष्टाचार की बातें करने लगे। हम सदा से आपके हैं, सदा आपके रहेंगे। देखिये, ये यादव अत्यन्त दुखी हैं। कंस मामा के शासन काल में इनमें से अधिकांश अन्य राज्यों में भाग गये थे। ये सव अभी आये हैं, कुछ आने वाले हैं। इन सवकी व्यवस्था करनी है। नानाजी बहुत वृद्ध हो गये हैं। ये ही सब झंझट हैं। इनसे निवृत्त होते ही हम आपके चरणों के दर्शन करेंगे। सवको मेरी याद दिलाना और सबको मेरी ओर से उपहार देना। पाग, दुपट्टा, सिरोपा सव ग्वालवालों को देना। ये तीहलें सब गोपियों को देना।"

यह कहकर समीप में ही सेवकों द्वारा ला लाकर ढेर लगाये हुए वस्त्र, आभूषण, मणि, माणिक्यों को श्यामसुन्दर स्वयं छकड़ों में भरने लगे। यद्यपि नन्दजी की इच्छा नहीं थी, कि इन धन, रत्न, वस्त्र तथा आभूषणों को यहाँ से ले जायँ, किन्तु न ले जाने से राम-श्याम को बड़ा कष्ट होगा।' यही सोचकर वे कुछ बोले नहीं। इनकी प्रसन्नता के लिये उन्होंने सब स्वीकार कर लिया। जितने छकड़े आये, वे सब धन रत्नों से भर दिये।

नन्दजी की दशा बुरी थी। उन्हें संसार सूना सा दिखाई दे रहा था। आँख खुली होने पर भी सामने की वस्तु दिखाई नहीं देती थी, पैर डगमग, डगमग कर रहे थे। कहीं पैर रखते थे, कहीं पड़ते थे। नयनों से निरन्तर नीर बह रहा था। वे राम-श्याम

की ओर देखते नहीं थे। देखते ही उनका हृदय फटने लगता था, ऐसा लगता था मानों उन्हें पक्षाघात हो गया हो। एक ओर से श्रीकृष्ण उन्हें पकड़े हुए थे, दूसरी ओर बलराम दो गोप सहारा दे रहे थे। जैसे तैसे उठाकर उन्हें बहली में बिठाया। बैठते ही वे मृतकके समान पड़ गये। श्यामसुन्दरका संकेत पाकर गोपोंने बैल हाँक दिये। फिर सभी गोप फूट फूटकर रोने लगे। राम-श्यामसे लिपट लिपटकर अश्रु बहा रहे थे। ये दोनों भाई भी रो रहे थे। यादव इस दृश्यको देखकर बिलखने लगे। सबके आँसुओंसे वहाँ की भूमि गीली हो गई। जैसे तैसे गोपोंने छकड़े हाँके। जब तक छकड़े दीखते रहे श्यामसुन्दर यादवोंके साथ खड़े खड़े उन्हें देखते रहे। जब छकड़े आखों से ओझल हो गये, तो सर्वस्व लुटे व्यापारीकी भाँति श्यामसुन्दर मथुराके महलोंमें आये। उन्हें वे रत्न जटित महल काटने दौड़ रहे थे। कहाँ वृन्दावनका ग्राम्य जीवन और कहाँ मथुराका यह तड़क फड़क युक्त नीरस ऐश्वर्य युक्त जीवन। फिर भी कर्त्तव्य पालनके लिये इच्छा न रहने पर भी सब सहना पड़ता है।

इधर ब्रजमें जबसे राम-श्याम मथुरा गये थे, तभीसे ब्रज-वासी नित्य ही प्रतीक्षा करते रहते थे। संभव है आज आ जायँ, दिन भर देखते रहते। जब रात्रि हो जाती तो मन मसोसकर सो जाते। प्रातःकाल फिर प्रतीक्षा करते। जब दो तीन दिन हो गये, मथुरासे कोई आया नहीं, तो मैया यशोदाने देवी देवताओंकी मनौती माननी आरंभकी—"हे देवी भवानी! मेरे राम-श्याम सकुशल मथुरासे ब्रजमें लौट आवें तो लाँगुरा, और कुमारी कन्या जिमाऊँगी।" हे महादेव बाबा! मेरे बच्चे प्रसन्नता पूर्वक आवें तो पंडितोंसे तुम्हारा रुद्राभिषेक कराऊँगी।" हे महावीर जी! राम-श्यामके आने पर सवामन मलीदा ग्यारहमन लड्डू मंगलवारको चढ़ाऊँगी।" हे 'यमुना मैया! ऐसी कृपा करो कि मेरे

बच्चे अब तुरन्त ही व्रजमें आ जायं। आते ही एक सौ एक दूध के घड़े मैं चढ़ाऊँगी और तुम्हारा पूजन करूँगी।" 'हे शीतला—मैया! हे कल्यानी देवी! तुम कृपा करो। मेरे बच्चे नीरोग होकर आ जायँ।" इस प्रकार मैया मनौती मनाया करती और गोपोंको दूर तक भेजती। वे नन्द ग्राम की सीमाके बाहर तक जाते, वृक्षोंपर चढ़कर देखा करते। जब कोई दो चार गाड़ियाँ आती तो दौड़कर उनके समीप जाते, उन्हें जब देखते ये तो दूसरे गाँवकी हैं, तब निराश हो जाते।

आज मैयाका हृदय भर रहा था। न जाने क्यों उसे आज बहुत रुलाई आ रही थी। उन्हें ऐसा लग रहा था, मानों उनके हृदयको कोई काटकर उसके दो भाग करके कोई बाहर निकाल रहा है। वे आज बहुत विकल थीं कि सहसा गोपोंने दौड़कर हाँपते हुए कहा—'मैया! राम-श्यामको लेकर बाबा मथुरा से आ रहे हैं।"

मैया सहसा इन शब्दों को सुनकर चौंक पड़ी। बातको पुष्ट करने को बोली—"चलो हटो झूठे कहींके, कितने दिनसे मुझे ऐसे ही बहका रहे हो।"

उनमेंसे एक चंचल सा गोप बोला—"मैया तेरी सूँ, हम बहकाते थोड़े ही हैं। देख सामने देख, वह छकड़े आ रहे हैं। आगे बाबाकी बहली है। उसके नागौड़ा बैलोंको तू नहीं पहचानती। तुझे बहलीकी टाल सुनाई नहीं दे रही है। अब सुन अब तो स्पष्ट घंटियों और टालोंकी झनझनाहट सुनाई पड़ रही है।"

माताकी दृष्टि वृद्धावस्था के कारण कुछ मोटी पड़ गई थी, फिर आज कल निरन्तर नयनों से नीर बहते रहने के कारण सामनेकी वस्तुको भी वे नहीं देख सकती थी। उन्होंने अश्रुओंसे गीली अपनी आँखोंको फाड़कर देखा और फिर बोलीं—"मुझे

वहली छकड़े तो दीखते नहीं ! हाँ टालका और बैलोंके घुँघरुँओं का शब्द तो सुनाई देता है।"

यह सुनकर लड़के हँसने लगे—"अरे मैया ! तुझे वहली नहीं दीखती। ले हमें तो चन्दा चाचा हाँकने वाले भी दीख रहे हैं। पीछे सूरज भैयाका छकड़ा है। हमें तो सैकड़ों छकड़े जो गये थे वे दीख रहे हैं।"

अब मैया को संदेह नहीं रहा। दौड़कर घर में गई। अर्घ्य ले आई। आरती सजायी, और आजके निकाले माखनको सम्हालकर रखा। इतने में ही खल खन करती हुई वहली द्वारपर आ गई। मैया आरती लेकर आगे आई। जिसने सुना वही दौड़ा आया, सम्पूर्ण व्रजमें हल्ला मच गया। श्यामसुन्दर मथुरासे लौट आई। झुन्डके झुन्ड ग्वाल बाल, असंख्यों गोपियाँ दौड़ी आईं। नन्दजीके द्वार पर दर्शनार्थियोंका मेला लग गया। मैयाने दौड़कर वहलीमें देखा। उसमें तो अकेले व्रजराज लेटे हुए हैं। राम-श्याम तो उसमें नहीं हैं। माताने सोचा—"दोनों बड़े ऊधमी हैं कहीं ग्वाल बालों के साथ दूसरे छकड़े मे बैठे होंगे। बाबासे सकुचाते हैं, यही सोचकर उसने एक दृष्टि सब छकड़ों पर डाली किन्तु राम श्याम दिखाई नहीं दिये। मैया को आश्चर्य हुआ कृष्ण तो बड़े चंचल है, वह तो चलती गाड़ी से कूदकर, दौड़कर मुझसे लिपट जाता। वह इतनी देर रह नहीं सकता। अब उसके मन में कुछ शंका हुई। उसने व्रजराजको झकझोर कर कहा— "महर ! सो गये क्या ? उठो। अब तो घर आ गया। बच्चे कहाँ हैं ?"

नन्दजी सो नहीं रहे थे, वे अचेत हुए पड़े थे। यशोदा मैया की वाणी सुनकर वे चौंक उठे। तुरन्त वे वहली से उतरकर नीचा सिर किये खड़े हो गये।

मैयाने फिर पूछा—"महर ! बताते क्यों नहीं ? बच्चे कहाँ

हैं ? वे किस छकड़े में बैठे हैं।"

इतना सुनते ही नन्दजी रो पड़े। और रोते रोते बोले—"महरि! हमारे भाग्य फूट गये।"

यह शब्द माताके हृदयमें तीरके समान लगा। एक साथ हृदयमें असंख्यों बुरी बुरी आशंकायें माताके हृदय में उठने लगीं। हाय! यह कंस बड़ा क्रूर था। मेरे बच्चोंका कुछ अनिष्ट तो नहीं हुआ।

वह एक साथ चिल्ला उठीं—"बताओ! बताओ, मेरे बच्चे कहाँ हैं ? उनका कुछ अनिष्ट तो नहीं हुआ। नारायण उनकी रक्षा करें।"

नन्दजी समझ गये और तुरन्त बोले—"राम-श्याम सकुशल हैं। उन्होंने कंसको मार दिया! अब वे वहीं रहेंगे।"

"राम-श्याम राजा बन गये और अब वे मथुरा ही रहेंगे।" यह सुनते ही मैया यशोदाका हृदय धक् धक् करने लगा। वे कुछ समझ ही न सकीं, बात क्या है, मेरा बच्चा मथुरामें क्यों रहेगा। वे अक बकाकर बोली—"वे मथुरामें रहेंगे, तो यहाँ गैयोंको कौन चरावेगा ?"

नन्दजी बोले—"गैयोंको चरानेका उन्होंने कोई ठेका थोड़े ही लिया था। जब तक उनपर आपत्ति, विपत्ति थी, तब तक यहाँ रहे। अब अपने माता, पिताके पास चले गये। संसार स्वार्थका है।"

भोले पनके साथ यशोदा मैयाने पूछा—"वे तो हमारे बच्चे हैं, उनके माता, पिता और कौन हैं ?"

नन्दजी बोले—"इसी भ्रमको मिटानेके लिये तो वे मथुरा गये। वे वसुदेव देवकीके पुत्र हैं। अब अपने बन्धु-बान्धवोंमें राजा बनकर रहेंगे। सुवर्णके मुकुट पहिनेंगे। अब मोर मुकुट धारण न करेंगे। वहाँ वे सिंहासन पर बैठकर आज्ञा दिया करेंगे,

यहाँ की भाँति वन वन गौओं को चराते हुए न घूमा करेंगे।

यशोदा मैया ने कहा—"हाय! हम तो उन्हें अपना ही पुत्र समझते थे। अच्छा, न सही हमारे पुत्र! राजाओं के यहाँ धाय भी तो रहती हैं। हम धाय ही सही। वे यहाँ न आवेंगे, तो मैं ही वहाँ चली जाऊँगी। रानी देवकी से विनय करूँगी, मुझे अपने यहाँ नौकर ही रखलें। उनका गोबर ही पाथा करूँगी, किन्तु अपने श्यामसुन्दर का मुख तो देखने को मिल जाया करेगा। "मैं तुमसे पूछती हूँ, कृष्ण राजा हो गया, तो राजाओं को कहीं जाने की मनाही है क्या! उसे एक दिन के लिए यहाँ ले आते। म उससे दो दो बात तो कर लेती। आज तक तो उसने कभी नहीं कहा—"तू मेरी मैया नहीं। अब तक वह मेरे अंचल का दूध पीता रहा। जब तक मैं खिलाती नहीं, तब तक उसका पेट ही नहीं भरता था, प्रातः उठते ही वह माखन, मिश्री माँगता। अब वहाँ उसे कौन देगा। माँगने में सकुचायेगा। महर! कृष्ण चाहे मेरा पुत्र हो या न हो। मै उसके बिना रह नहीं सकती या तो मुझे तुम उसके पास पहुँचा दो या तुम ही किसी प्रकार फिर जाकर उसे एक दिन के लिए बुला लाओ।" तुरन्त निकाला कारी कपिला गैया का माखन, उसे वहाँ कहाँ मिलेगा। उसीको तो वह रुचि केसाथ खाता है। महर! जाओ मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूं। मेरे राम-श्याम को ले आओ।"

नन्दजी ने रोते रोते कहा—"महरि! मैंने कितना कहा उनसे आने को। किन्तु बहुत कहने पर भी वे नहीं आये तो क्या करता। हारकार मुझे लौट ही आना पड़ा।"

यशोदा रानी ने झिड़ककर कहा—"फिर तुम ही क्यों लौट आये। न आते वहीं बने रहते। मुझे आशा तो लगी रहती। आज आवेंगे, आज आवेंगे।"

नन्दजी ने कहा—"महरी! तू समझती है मैं राम-श्याम को

प्यार नहीं करता ? मैंने कहने में कसर छोड़ी। मैंने सब कुछ कहा। रोया धोया, बहुत कहा, मैं तेरे मैया से जाकर क्या कहूँगा, किन्तु उसका हृदय तनिक भी न पसीजा।"

रोते रोते मैया ने कहा—"हाय ! कनुआ ऐसा निष्ठुर हो गया क्या ? एक दिन को आ ही जाता तो उसका क्या बिगड़ जाता। अब मुझे संसार सूना सूना दिखाई देगा। जब वे दोनों यहाँ थे, तो मुझे पता भी नहीं चलता कब रात हुई कब दिन हुआ, सदा उनके ही काम में लगी रहती। उनके लिये दूध दुहना, गरम करना, जमाना, बिलौना, माखन निकालना, रसोई बनाना, साग अमनिया करना, नित्य ताजा आटा पीसना, उनके कपड़े धोना। दिन भर इन कामों में लगी रहती थी। अब मुझे पल पल काटना भारी हो जायगा। ये पहाड़ जैसे दिन हाथ पर हाथ रखे खाली मैं कैसे काटूँगी। किसके लिए रसोई बनाऊँगी ? किसके लिए माखन निकालूँगी ? किसके वस्त्रों को धोऊँगी ? किसका मुख जोह कर जीऊँगी ? हाय ! मैंने समझा नहीं। श्याम राम असमय में धोखा दे जायँगे। मेरे ही किसी पाप से वे मुझे छोड़ गये।

नन्द बोले—"तुझे भी महर बहुत गर्व हो गया था, तनिक से माखन के पीछे तैंने उस दिन उसे उलूखल में बाँध दिया था, छड़ी लेकर मारने दौड़ती थी। यहाँ जब रहा तैंने उसे बहुत डराया धमकाया।"

रोते रोते मैया बोली—"हाय ! मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी। अब मैं ऐसा कभी न करूँगी। अब कभी भी न मारूँगी। निश्चय ही ये मेरी भूल से ही मुझे छोड़कर चले गये।"

इतना कहते कहते यशोदा मैया मूर्छित हो गईं। सभी ढाड़ मारकर रोने लगे। गोप गोपी उन्हें उठाकर घर के भीतर ले गये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! ब्रज के वियोग दुःख की कथा

लम्बी है। यशोदा मैया से भी अधिक दुःख श्रीकृष्ण के सखा ग्वाल बालों को हुआ। उनसे भी अधिक दुःख गोपियों को हुआ। और श्रीराधाजी का दुःख तो अकथनीय है, वह तो दुःख की पराकाष्ठा पर पहुँच गई थीं। फिर समय पर इनका यत्किंचित् दिग्दर्शन कराया जायगा। अब तो आप मथुरा का वृत्तान्त सुनें।"

छप्पय

रोवत रोवत चले नन्द गोकुल महँ आये।
राम-श्याम नहिँ लखे गोप गोपी घबराये॥
यशुमति सुनि सब बात बहुत रोई बिललाई।
हाय! कहाँ रह गये कुँवर बलराम कन्हाई॥
नन्दगाँव के नारि नर, व्याकुल ह्वै रोवत फिरें।
डकरावें हा हा करें, मूर्छित ह्वै ह्वै कें गिरें॥

—::—

राम-श्याम का उपनयन और गुरुकुल गमन

(१४६)

अथो गुरुकुले वासमिच्छन्तावुपजग्मतुः ।
काश्यं सान्दीपनिं नाम ह्यवन्तीपुरवासिनम् ॥❀

(श्री भा० १० स्क० ४५ अ० ३१ श्लो०)

छप्पय

इत वियोग तें दुखित श्याम बल महलनि आये ।
है प्रसन्न वसुदेव विविध मङ्गल करवाये ॥
कनक, धेनु, धन, रत्न, दान, भूदेवनि दीन्हे ।
द्विजनि उचित उपनयन गर्ग आदिक मुनि कीन्हे ॥
ब्रह्मचर्य व्रत धारि कें, गायत्री दीक्षा लई ।
करन वास गुरुकुल चले, अनुमति सबई ने दई ॥

जैसे मनुष्य के संस्कार होते हैं, वैसे ही कर्मों को वह किया करता है । संस्कार माता, पिता के स्वभाव से, गर्भ से, सत्संग से,

---

❀ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! इसके अनन्तर राम-कृष्ण दोनों भाई गुरुकुल में वास करने की इच्छा से काशी में उत्पन्न होने वाले उज्जैन निवासी सान्दीपनि नामक आचार्य के समीप गये ।"

अध्ययन से तथा क्रियाओं के करने से बनते हैं। इसलिये आर्य वैदिक धर्म में संस्कारों के ऊपर बार बार बल दिया गया है। स्मृतिकारों का कहना है, जन्म से तो सभी बालक शूद्रवत ही होते हैं। संस्कारों के द्वारा ही उन्हें 'द्विज' संज्ञा प्राप्त होती है। शास्त्रकारों ने गर्भाधान से लेकर मृत्यु पर्यन्त षोडश संस्कार बताये हैं। इन षोडश संस्कारों में सर्वश्रेष्ठ अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्कार है, उपनयन संस्कार। यहाँ तक कि द्विजातियों के लिये तो इस संस्कार को दूसरा जन्म ही बताया है। 'द्विज' शब्द का अर्थ है, जिसका दो बार जन्म हो। दाँतों का दो बार जन्म होता है। बालकपन में जो दूध के दाँत होते हैं, वे उखड़ जाते हैं, फिर दुबारा जो जमते हैं, वे वृद्धावस्था तक रहते हैं। इसलिए दाँतों की भी 'द्विज' संज्ञा है। पक्षियों का भी जन्म दो बार होता है। एक तो माता अंडा को उत्पन्न करती है। जब अंडा पक जाता है, तो बालक अण्डे से दुबारा उत्पन्न होता है। इसलिये अण्डे से उत्पन्न होने वाले पक्षियों का भी नाम "द्विज" है। इसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इनके भी दो जन्म होते। एक तो माता के उदर से उत्पन्न होते हैं, दूसरे जब उपनयन संस्कार होता है। गुरुकुल में वास करके लौटता है व्रतस्नान करता है, तब उसका दूसरा जन्म होता है। प्राचीन काल में किसी भी द्विज के बालक ऐसे नहीं होते थे, जो ब्रह्मचर्यव्रत धारण करके गायत्री की दीक्षा लेकर गुरु के समीप गुरुकुल में वास न करते हों। जो ऐसा नहीं करते थे, वे व्रात्य कहलाते थे। वे देवता, पितर तथा ऋषियों के सर्वकर्मों में बहिष्कृत समझे जाते थे। यहाँ तक कि भगवान् भी मनुष्य रूप में जब अवतार लेते थे, तो वे भी इन नियमों का पालन करके अन्य जनों के लिये आदर्श उपस्थित करते थे।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो। जब नन्दादि समस्त गोप व्रज को चले गये, तब यादवों से घिरे हुए वसुदेवजी महलों में,

यदुवंशी वीरों के आज हर्ष का ठिकाना नहीं था। जैसे अत्यन्त दरिद्र अनंत धनराशि पाकर प्रसन्न होता है वैसे ही अपने बीच में श्याम-राम को पाकर प्रसन्न थे। वसुदेवजी ने अपने गुरुकुल गर्गजी को बुलाया। अन्य समस्त मुख्य मुख्य यादवों को भी बुलाया और सबके सम्मुख निवेदन किया—"श्रीकृष्ण का जन्म कारावास में हुआ था, बलदेव का ब्रज में। हम विपत्ति के कारण इनका जन्मोत्सव नहीं मना सके। उस समय तो हमें इनके प्राण बचाने का ही अत्यधिक चिन्ता थी। नारायण की कृपा से इनके प्राण बच गये। अब ये आप सबके आशीर्वाद से बारह बारह तेरह तेरह वर्ष के हो गये। द्विजों बालकों के दो जन्म कहे जाते हैं, एक माता के गर्भ से जन्म, दूसरा उपनयन के समय जन्म। जन्म के समय तो हम कुछ दान पुण्य कर नहीं सके। उस समय मैंने दस सहस्र गौएँ श्रीकृष्ण के जन्म के समय और दस सहस्र बलदेव के जन्म के समय मन से संकल्प की थीं। वे सब गौएँ अब दान में दी जायँ। अब जन्मोत्सव और उपनयनोत्सव दोनों साथ ही साथ मनाये जायँ।"

सबने एक स्वर में कहा—"हाँ, ऐसा ही हो। उत्सव अत्यन्त ही धूम धाम से मनाये जायँ।" बस फिर क्या था। नगर में उत्सव की तैयारियाँ होने लगीं। स्थान स्थान पर मंडप बने। समस्त पुरी रंग बिरंगी ध्वजा, पताका तथा मालाओं से सजाई गई। सभा ने इस उत्सव को इतनी धूमधाम से मनाया मानों उनके घर ही उत्सव हो रहा है। सभी घरों के द्वारों पर कदली के वृक्ष लगाये गये। पूर्णकुंभ दीपक, फूल, लावा, दधि अक्षत, दूर्वा, हल्दी तथा अन्यान्य मांगलिक द्रव्य द्वारों पर रखे गये थे। समस्त राजकर्मचारी नये नये वस्त्र पहिनकर सम्मान प्रदर्शन करने आये थे। ऐसा लग रहा था, मानों मथुरापुरी का विवाह हो, वह नववधू की भाँति सजाई गई थी।

उत्सव की विधिवत् तैयारियाँ होने पर अनेकों विद्वान् वैदिक ब्राह्मणों से घिरे हुए यदुकुल के कुलपुरोहित भगवान् गर्ग पधारे। उनके आने पर सबने विधिवत् उनका सम्मान किया। फिर शास्त्र की विधि से गर्गजी ने वसुदेवजी के दोनों पुत्र बलराम और श्रीकृष्ण का यज्ञोपवीत संस्कार कराया। वसुदेवजी बड़े उदार मना थे, उन्होंने किसी भी कार्य में वित्तशाठ्य नहीं किया। जहाँ एक वस्तु दान देनी चाहिए वहाँ दस वस्तुएँ दीं। ब्राह्मणों को विविध भाँति के वस्त्राभूषणों से अलंकृत करके उनका पूजन किया। उन्हें सुन्दर स्वादिष्ट रसीले, मिष्ठान्न पदार्थों से तृप्त किया।

बलराम और श्यामके जन्मके समय जो बीस सहस्र गौओं के दान का उन्होंने मानसिक संकल्प किया था, उसे आज प्रत्यक्ष कार्य रूप में परिणित किया। सींगों को सुवर्ण से मढ़कर तथा खुरों को चाँदी के बनाकर और पूँछ मे मोती पिरोकर, पीठ पर सोने के काम की रेशमी झूल डालकर उन्होंने कुटुम्बी ब्राह्मणों को वे गौयें दान में दीं। समस्त बन्धु बान्धवों के समक्ष उन्होंने विधिवत् यज्ञोपवीत धारण करके मेखला, दण्ड, कमण्डलु तथा मृगचर्म लपेटकर ब्रह्मचर्य व्रतकी दीक्षा ली तथा सबसे भिक्षा माँगी। इस प्रकार यदुकुल के पुरोहित श्री गर्गाचार्य मुनि से द्विजत्व प्राप्त किया। अब यह प्रश्न उठा कि विद्याध्ययन करके राम-श्याम काशी जायँ या कश्मीर जायँ। मथुरासे काशी भी दूर थी कश्मीर भी दूर थी। लोगोंने बताया एक काशीके ही आचार्य सान्दीपिनी नामके हैं। वे चौंसठ कलाओंमे निपुण है, इस समय वे अवन्तिका नगरी में निवास करते हैं। उनके पास दूर दूर से विद्यार्थी विद्याध्ययन के निमित्त आते हैं, यदि राम-श्याम उन्हीं के समीप जायँ, तो सभी विद्या पढ़ भी लेंगे और समीप भी रहेंगे। उज्जैन यहाँ से दूर भी नहीं। सभी ने एक स्वर से इस बात का समर्थन

किया। भगवान् कृष्ण बलराम तो समस्त विद्याओं के उत्पत्ति स्थान ही हैं। उन्हें पढ़ना लिखना तो क्या था, केवल लोकवत लीला करनी थी। लोगों के सम्मुख गुरु सुश्रूषा का आदर्श उपस्थित करना था, इसीलिए वे यह सब कर रहे थे। सबकी अनुमति पाकर भगवान् बलदेवजी के सहित उज्जैनकी ओर चल दिये।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार द्विजत्व प्राप्त करके कृष्ण बलराम अवन्तीपुरी (उज्जैन) में जाकर आचार्य सान्दीपनी के घर में निवास करने लगे। अब जिस प्रकार उन्होंने कुछ ही काल में समस्त विद्यायें पढ़ लीं। उसका वर्णन मैं आगे कहूँगा, आप सब श्रद्धापूर्वक इस प्रकरण को सुनें।

छप्पय

मुनि सान्दीपनि सौम्य सरल सुठि काशी वासी।
रहे अवन्ती पुरी तपस्वी विषय उदासी॥
तिन ढिँग पढ़िवे गये कौन समुझै हरिकी गति।
सब विद्यनिके धाम श्याम बलराम जगत्पति॥
भई सिद्धि विद्या सकल, भाग्य आज मुनिके जगे।
जगदीश्वर हू शिष्य बनि, जिनके घर रहिवे लगे॥

गुरुकुलमें गुरु सुश्रूषा

(१०५०)

यथोपसाध्य तौ दान्तौ गुरौ वृत्ति मनिन्दिताम् ।
ग्राहयन्तावुपेतौ स्म भक्त्या देवामिवादृतौ ॥*
(श्री भा० १० स्क० ४५ अ० १, २ श्लो०)

छप्पय

गुरुसेवा आदर्श दिखावें करि कें करनी ।
सुश्रूषा नित करें त्यागि भगवत्ता अपनी ॥
समिधा कुश फल फूल मूल घट जलको लावें ।
अति लघु सेवा करें अधिक हिय माहिँ सिहावें ॥
जाहिँ सुदामा संग महँ, ईंधन लावें तोरिकें ।
ब्रह्मचर्य व्रत तें रहें, विषयनि तें मुख मोरिकें ॥

जब हम किसीको अपने वशमें कर लेते हैं, तो उससे उसकी प्रियसे भी प्रिय वस्तुको यों ही प्राप्तकर लेते हैं। मनुष्य धनके द्वारा विद्याके द्वारा अथवा सेवाके द्वारा वशमें किया जा सकता है।

---

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! राम कृष्ण दोनों भाई गुरु कुल में नियमानुसार निवास करते, वे गुरु द्वारा सत्कृत होते हुए इन्द्रिय दमन पूर्वक श्रेष्ठ गुरु सेवा का आदर्श उपस्थित करते हुए, अपने गुरुदेव की इष्टदेव के समान भक्ति भाव पूर्वक सेवा सुश्रूषा करने लगे।"

इसीलिये विद्या प्राप्तिके तीन ही उपाय बताये हैं। एक तो गुरुकी सुश्रुषा करके विद्या प्राप्त की जा सकती है, दूसरे विपुल धन देकर और तीसरे अदला बदलीसे अर्थात् हम उन्हें एक विद्या सिखादें बदलेमें वे हमे दूसरी विद्या सिखादें। इनके अतिरिक्त चौथा विद्या प्राप्त करनेका मार्ग नहीं।

विद्या देकर जो विद्या प्राप्त की जाती है, अथवा विपुल धन देकर जो विद्या प्राप्त की जाती है उसमें गुरु भाव नहीं रहता। अहंकार आ जाता है, वह विद्या विनयको प्रदान नहीं करती। किन्तु सेवा करके जो विद्या प्राप्तकी जाती है वह फलवती होती है। गुरुको इष्टदेव मानकर उनकी छोटी से छोटी सेवा करके जो सुख मिलता है, वह किसीमें नहीं मिलता। जिनकी हम सेवा करते हैं, उनके हृदयको पकड़ लेते हैं। संसारमें ऐसा कोई भी काम नहीं है जो सेवासे प्राप्त न होता हो। सेवा करते करते सेवक स्वामी बन जाता है। स्वामी सेवकके सर्वथा अधीन हो जाता है, फिर उसके लिये कुछ अदेय रह नहीं जाता। इसलिये प्राचीन कालमें बड़े बड़े राजपुत्र, दरिद्र ब्राह्मण कुमारोंके साथ गुरुकुलमें समान भावसे रहते थे, और सभी श्रद्धा सहित गुरुकी सेवा किया करते थे। गुरु सुश्रूषा अदला बदलीका व्यवहार नहीं था। शिष्यों का यह धर्म था, कि वे अपना सर्वस्व अर्पण करके निरन्तर गुरु सेवामें निरत रहें। सेवाका महत्व समझ लेना यही सबसे बड़ी विद्या है। जिसने अपनी सेवासे धर्म पूर्वक किसीको सन्तुष्टकर लिया, उसने मानों बड़ीसे बड़ी विद्या प्राप्त करली। इसीलिये शास्त्र पुराणोंमें सर्वत्र सेवाकी इतनी अधिक प्रशंसा है। ऋषि मुनियोंने सेवा पर ही अत्यधिक बल दिया है। कहनेका उतना प्रभाव नहीं पड़ता, जितना करके दिखानेका पड़ता है। इसीलिये सेवाका आदर्श उपस्थित करनेके लिये स्वयं साक्षात् भगवान् मानव शरीर धारण करके गुरु सुश्रपा करते हैं और सबको

सिखाते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! रामश्याम दोनों भाइयों का यज्ञोपवीत संस्कार हो गया। कुल पुरोहित भगवान् गर्गने उन्हें गायत्री मंत्रकी दीक्षा दी। गुरुसे दीक्षा पाकर अब दोनों भाइयों को गुरुकुलमें वास करनेकी इच्छा हुई। इसीलिये वे अवन्तीपुरी में रहने वाले आचार्य सान्दीपिनी मुनिके निकट गये।"

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! गर्गाचार्य के ही समीप रहकर भगवान्ने विद्याध्यन क्यों नहीं किया?"

सूतजी बोले—"महाराज! एक तो यह बात है, कि घरमें रहकर पढ़ाई होती नहीं। विद्यार्थी जितना ही घरसे दूर रहेगा उतना ही उसका पढ़नेमें मन लगेगा। दूसरी बात यह भी हो सकती है कि गर्गाचार्य विशेष कर ज्योतिष शास्त्रके ही विद्वान थे। भगवान् चाहते थे, किसी ऐसे आचार्यके चरणोंमें रहें जो सर्वशास्त्रोंका ज्ञाता हो, सभी विद्याओंमें, सभी कलाओंमें निष्णात हो। इसलिये गर्गाचार्यसे उपनयन कराकर वे अवन्तीपुरी चले गये और वहाँ जाकर सान्दीपिनि मुनि के गुरुकुलमें प्रविष्ट होकर उनकी सेवा सुश्रूषा करने लगे।"

शौनकजीने कहा—"सूतजी! भगवान्के गुरुकुलवासकी विशेष विशेष घटनाओंको सुनावें।

सूतजी बोले—"भगवन्! जिस प्रकार भगवान् अनन्त हैं, उसी प्रकार उनके चरित्र भी अनन्त हैं, उनका सर्वाङ्ग वर्णन कर ही कौन सकता है। फिर भी मैं यथा मति आपसे कहता हूँ।"

रामकृष्ण दोनों भाइयोंने अवन्तिपुरीमें पहुँचकर महामुनि सान्दीपिनीके चरणोंमें प्रणाम किया और निवेदन किया—"हम यदुकलमें उत्पन्न महाराज शूरसेनके पुत्र श्रीवसुदेवजीके आत्मज हैं, आपके चरणोंमें निवास करके हम विद्याध्ययन करना चाहते हैं।"

आचार्य सन्दीपनि मुनिने दोनों भाइयोंके ओज, तेज, प्रभाव और ऐश्वर्यको देखा। वे उनके शुभ लक्षणोंको देखकर परम विस्मत हुए, उन्होंने दोनों भाइयोंको सहर्ष अपने गुरुकुलमें प्रविष्ट कर लिया। ये दोनों भी अन्य साधारण विद्यार्थियोंके साथ रहकर गुरुसुश्रूषा करने लगे।

ये प्रातःकाल उठते। गौओंके गोबरको उठाकर पाथते, गौशाला तथा घरको स्वच्छ करते। फिर गुरुदेवके साथ क्षिप्रानदी में स्नानके लिये जाते। गुरुके वस्त्रोंको धोकर, जलका घड़ा भर कर लाते। आकर सन्ध्या हवन करते। गुरुजीके बुलाने पर हाथ जोड़कर उनके निकट जाते, उनके पढ़ानेपर पढ़ते। भिक्षा माँगने जाते, गुरु जो भी भोजनोंको दे देते, उसे ही खाकर सन्तुष्ट हो जाते सायंकालको वनमें जाते वहाँसे समिधा, कुश, फल, फूल, तथा ईंधन लेकर लौटते। पुनः सायंकालीन संध्या हवन आदि करते, गुरुजीके चरणों की सेवा करते और उनकी आज्ञा पाकर शयन करने जाते। इस प्रकार तनसे तथा मनसे सर्वथा गुरुके अनुकूल रहकर ये आचरण करते। गुरुकुलके किसी भी नियम को वे भंग नहीं करते। अपनी इन्द्रियोंका दमन करते मनको वश में रखते। इस प्रकार शान्त दान्त भावसे उत्तम गुरुसेवाका आदर्श उपस्थित करते। उनका इष्टदेवके समान सम्मान करते और भक्तिभाव पूर्वक श्रद्धासे सुश्रूषा करते। गुरु भी इनके कार्योंसे परम सन्तुष्ट रहते और इनका अत्याधिक सत्कार करते।

वहीं पर गुर्जर प्रदेशके रहने वाले सुदामा नामक एक ब्राह्मण बालक भी पढ़ते थे। श्रीकृष्णकी उनसे बड़ी प्रगाढ़ मैत्री हो गई थी। दोनों साथ साथ ही फल, फूल तथा समित् कुश लेने वनको जाते और दोनों साथ ही साथ उठते बैठते थे। गुरु माता श्रीकृष्ण को अत्यधिक प्यार करती। इनसे उनका कोई संकोच नहीं था, जो कुछ भी कार्य होता वे भगवान् से निःसंकोच होकर कह देतीं,

और भगवान् भी उसे तुरन्त कर लेते।

एक दिनकी बात है, गुरुमाता सयंकालकी रसोई बनानेका समान जुटाने लगी। उसने देखा आज घरमें ईंधन तनिक भी नहीं है। कुछ चिन्तित हो कर उन्होंने भगवान्को बुलाया और कहा—"कृष्ण! भैया आज सायंकालकी रसोईके लिये ईंधन तो है ही नहीं। भगवान्का प्रसाद किससे बनेगा।"

भगवान् बोले—"माताजी! आप कोई चिन्ता न करें, मैं अभी वनमें जाता हूँ, तुरन्त सूखी लकड़ियाँ वृक्षोंसे तोड़कर लाता हूँ।"

माताने कहा—"वत्स! तुम जा तो रहे हो, किन्तु अकेले मत जाओ। किसीको साथ लेकर जाओ।"

भगवानने कहा—"माताजी! मैं और सुदामाजी दोनों जा रहे हैं। हम दोनों आपके लिये यथेष्ट ईधन ले आवेंगे। अन्य किसी विद्यार्थीको जानेकी आवश्यकता नहीं।"

माताने कुछ थोड़ा सा चबेना देते हुए कहा—"अच्छा, देखो तुम जाते तो हो। यह चबैना ले जाओ, मार्गमें भूख लगे, तो इसे चबाकर जल पी लेना।' यह कहकर उन्होंने सुदामाजी को चबैना दिया।"

दोनों गुरु भाई साथ साथ हँसते-खेलते हुए चल दिये। चलते चलते वे दोनों एक घोर वनमें पहुँचे। वहाँ पहुँचकर श्रीकृष्ण एक बड़े पेड़ पर चढ़ गये और उसपरसे सूखी सूखी लकड़ियाँ तोड़ तोड़कर नीचे गिराने लगे। सुदामाजी उन सबको एकत्रित करके रखते जाते थे। सहसा बड़े वेगसे आँधी आई। सुदामाजी ने कहा—"कृष्ण! कृष्ण! भैया! अति शीघ्र वृक्षसे उतर आओ, देखो आँधी आ रही है, आकाशमें मेघ भी छा रहे हैं।"

सुदामाजीकी यह बात सुनकर भगवान् तुरंत वृक्षसे उतर आये और बोले—"अति शीघ्र चलो माताजी हमारी प्रतीक्षा कर

रही होंगी।" यह कहकर तुरन्त ईंधनके दो गट्ठर बनाकर दोनों वहाँसे चल दिये। चलते समय मार्गमें आँधी बड़े वेगसे आई दोनों इधरसे उधर भटक गये मार्ग भूल गये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जो सर्वान्तर्यामी प्रभु सबको मार्ग दिखाने वाले हैं, वे भला मार्ग कैसे भूल सकते हैं। केवल गुरु शिष्यका सम्बन्ध दिखानेके लिये ही यह लीला कर रहे हैं। भगवान्‌को न कोई इच्छा होती है न उनका कुछ कर्तव्य ही होता है, केवल लोक शिक्षाके निमित्त तथा भक्तोंको सुख देनेके निमित्त वे ऐसे ऐसे खेल करते हैं, कि अज्ञानी उनके ऐसे खेलोंको देखकर विमोहित हो जाते हैं, उन्हें सन्देह होने लगता है कि ये भगवान् नहीं। हमारे जैसे ही साधारण मनुष्य हैं।

हाँ, तो दोनोंने कसकर एक दूसरे को पकड़ लिया। वायु उन्हें इधर उधर उड़ा ले गई। यद्यपि वर्षाका समय नहीं था, फिर भी घनघोर वर्षा होनी आरम्भ हो गई। दोनों एक घोर जंगलमें एक वृक्षके सहारे खड़े हो गये। वर्षा ऐसी हो रही थी, मानो आज ही प्रलय होने वाला है। भगवान् भुवन भास्कर अस्ताचल प्रस्थानकर चुके थे। पक्षीगण अपने अपने घोंसलोंमें मुँह छिपाये दुबके थे। आकाशमें चन्द्रमा तारागण कुछ भी दिखाई न देते थे। चारों ओर अन्धकार छाया हुआ था, मूसलाधार वर्षा हो रही थी प्रचण्ड पवनके संसर्गसे पानीकी बौछारें मार रही थीं। पानी रुकता ही नहीं था, आकाशमें गड़गड़ान तड़तड़ान हो रही थी, बिजिली चमक रही थी। दशों दिशाओंमें इतना अँधेरा भरा हुआ था, कि हाथों हाथ दिखाई नहीं देता था। वर्षा रात्रि भर रुकी नहीं, वायु बंद नहीं हुई। वे इसी प्रकार सम्पूर्ण रात्रि बैठे रहे। सुनते हैं सुदामाजीने लोभ वश वह चनैना बिना भगवान् को अर्पण किये, अकेले ही लालच वश खा लिया। जो बिना भगवान्‌के अर्पण किये बिना संगी साथियोंको बाँटे, अकेला ही

खा लेता है, उसे दरिद्री होना पड़ता है। इसीलिये सुदामाजीको कुछ दिन दारिद्र दुःखका अनुभव करना पड़ा।

हाँ, इधर तो ये दोनों ब्रह्मचारी घोर वनमें वृक्षके नीचे वर्षा में भीग रहे थे, उधर शिष्य वत्सल गुरुका हृदय अपने शिष्योंके लिये छटपटा रहा था। सायंकालीन सन्ध्या हवन करके जब अन्य ब्रह्मचारी गुरुकी चरण वन्दना करने आये, तो उनमें श्री-कृष्ण सुदामाको न देखकर गुरुजीने पूछा—"छात्रो! आज कृष्ण सुदामा दिखाई नहीं देते, उन्होंने सन्ध्या हवन आदि सायंकालीन कृत्य नहीं किया क्या?

यह सुनकर शिष्य बोले—"गुरुदेव! आज मध्यान्होत्तरसे उन दोनोंका पता ही नहीं लगता कहाँ गये। नित्य तो वे सूर्यास्तके बहुत पूर्व ही वनसे कुशा, समिधा तथा फल, फूल लेकर लौट आते थे।"

गुरुदेवने चिंतित होकर कहा—"आज आँधी चल रही है, पानी पड़ रहा है, संभव है कहीं रह गये हों?" यह कहकर वे बड़ी उत्सुकतासे उन दोनोंकी बाटको जोहते रहे। जब बहुत रात्रि व्यतीत हो जाने पर भी न तो आँधी पानी ही बंद हुआ और न उनके दोनों शिष्य ही आये, तो वे दुखित होकर पाठशालासे घर में गये और अपनी पत्नीसे बोले—"कल्याणी! अभी तक कृष्ण सुदामा वनसे नहीं लौटे, न जाने वे दोनों कहाँ चले गये।"

संकोचके साथ सहमती हुई आचार्य पत्नी बोली—"प्रभो! मैंने ही उन दोनोंको ईंधन लेने भेजा था।"

अत्यन्त दुखित होकर गुरुने कहा—"तुमने उन दोनोंको ऐसे समय क्यों भेजा। हाय! वे इस आँधी पानीमें इस समय कहाँ होंगे। भगवान् मेरे बच्चोंकी विपत्तिसे रक्षा करें। देवि! तुमने यह बहुत ही अनुचित कार्य किया।"

लजाती हुई आचार्य पत्नी बोलीं—"उस समय तो आकाश

स्वच्छ था, न आँधी थी, न पानी। आज घरमें तनिक भी ईंधन नहीं था, मैंने केवल कृष्णसे संकेत ही किया था। वह सुनते ही सुदामा को साथ लेकर चल दिया।"

आचार्यको अब शान्ति नहीं थी। वे बारबार द्वार की ओर देखते, किसीके पैङ्गर पाते ही चौंक उठते। न उन्होंने सायंकालीन भोजन किया और न वे सोये। जागते ही रहे। जब आधी रात तक उनके शिष्य नहीं आये, तो शिष्यवत्सल आचार्य हाथमें डंडा लेकर दो छात्रोंको साथ लिये हुए अपने शिष्योंको खोजने निकले।"

शिष्य वृक्षके नीचे बैठे हुए रात्रि बिता रहे थे, गुरु इधर उधर घूमते हुए—अपने शिष्योंको खोजते हुए एक वनसे दूसरे वनमें भटक रहे थे। सम्पूर्ण पृथिवी जलमयी हो रही थी, नीची ऊँची भूमि जल भरनेसे समानसी प्रतीत होती। उस जल प्रलय और प्रचण्ड पवनको कुछ भी न गिनते हुए गुरु—"ओ कृष्ण! ओ सुदामा, बेटा! तुम कहाँ हो?" यह कहते हुए गुरु इधर से उधर भटक रहे थे। इस प्रकार गुरु को भटकते भटकते प्रातःकाल हो गया। अब जल बरसना बंद हो गया। मरीचमाली भगवान् प्राची दिशिके अंचलको फाड़कर प्रकाशित हुए। सहसा गुरुजीने अपने दोनों शिष्योंको वनमें वृक्षके नीचे अत्यन्त व्याकुल अवस्था में बैठे देखा। दोनों शिष्योंने जब हाथमें लठिया लिये हुए जलमें भीगते हुए अपने गुरुको देखा, तो उन्होंने शीघ्रतामें उठकर गुरुजीके चरण छुए और उन्हें प्रणाम किया।

अपने शिष्योंको सम्मुख देखकर गुरुजीका हृदय भर आया। उनके नेत्रोंसे प्रेमके अश्रु प्रवाहित होने लगे। दोनोंको प्रेम-पूर्वक हृदयसे चिपटाकर वे बारबार उनका सिर सूँघने लगे। उन्हें कसकर बड़ी देर तक छातीसे चिपटाये रहे। जब प्रेमका आवेग कुछ कम हुआ, तो वे भर्राई हुई वाणीसे रुक रुककर बोले—

"पुत्रो! आज तुमने मुझे खरीद लिया। अपनी सेवासे मुझे सन्तुष्ट कर लिया। देखो, प्राणी मात्रको अपना शरीर अत्यंत ही प्यारा होता है। जो प्रेम वश अपने शरीरकी कुछ भी चिन्ता न करके प्रेम-पूर्वक अपने गुरुजनों की सेवामें संलग्न रहते हैं वे बड़े भाग्य शाली होते हैं। सत्‌शिष्योंका यही सर्वोत्तम कर्तव्य है, कि सम्पूर्ण कामनाओंके साधन भूत इस शरीरको गुरु सेवामें लगा देना। इससे बड़ी न कोई गुरु दक्षिणा है और न कोई अन्य सुश्रूषा ही। तुम दोनोंने हमारे लिये बड़े कष्ट सहे। मैं तुम्हारी इस गुरु भक्तिसे अत्यन्त ही सन्तुष्ट हूँ, तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ, कि तुम्हारी सम्पूर्ण मनोकामनायें पूर्ण हों तथा तुम्हारी पढ़ी हुई विद्या इहलोकमें तथा परलोकमें कभी विफल न हो।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अपने आचार्यकी ऐसी कृपाको पाकर सुदामाके सहित श्रीकृष्ण कृतार्थ हो गये। गुरुको प्रसन्न पाकर सुदामाके सहित श्रीकृष्ण कृतार्थ हो गये। गुरुको प्रसन्न देखकर उन्होंने अपने जीवनको सफल समझा। सिर झुकाकर और चरणस्पर्श करके उन्होंने गुरुदेवके आशीर्वादको ग्रहण किया। मुनियो! संसारमें जिसपर गुरुकी कृपा हो गई, उनके लिये दुर्लभ पदार्थ शेष ही क्या रहा। जो गुरु कृपासे वंचित रहे, उन्होंने संसारमें रहकर किया ही क्या, केवल अमूल्य मानव जीवन को व्यर्थ गँवाया मनुष्यका संसारमें एक मात्र कर्तव्य है, अपनी सेवाके द्वारा गुरुको प्रसन्न करना। यही आदर्श दिखाने को भगवानने यह लीला रची। गुरुके साथ लौटकर वे गुरुकुलमें आ गये। गुरु माता भी इन पर अत्यन्त सन्तुष्ट हुई। गुरुको प्रसन्न करके ये वहाँ अध्ययन करने लगे। अब जैसे भगवान्‌ने अल्पकालमें सभी विद्याओंको प्राप्तकर लिया उस प्रसंगको मैं आगे कहूँगा।

छप्पय

गुरु प्रसाद तैं वेद शास्त्र सुनतहिं जाने प्रभु।
चौंसठ कला प्रवीन भये चौंसठ दिन महँ विभु॥
गीत, वाद्य, अरु, नृत्य नाट्य चित्रनिको लिखिवो।
पत्रावलि सिर तिलक धान कुसुमनिको रचिवो॥
फूल सेज पट दसन रँग, मणिमय मही बनामनो।
शयन रचन अरु जल तरँग, चित्र विचित्र दिखामनो॥

विद्याध्ययन

(१०५१)

सर्वे नरवर श्रेष्ठौ सर्वे विद्या प्रवर्तकौ।
सकृन्निगद मात्रेण तां संजगृहतुर्नृप ॥ *

(श्री भा० १० स्क० ४५ अ० ३५ श्लो०)

छप्पय

हार केश नैपथ्य कर्ण पत्रादिक रचिवो।
गन्धयुक्ति आभूषन सबकूँ विस्मित करिवो ॥
धारे रूप अनेक हस्त लाघव घर भोजन।
आसवादि निर्मान सीमनो डोरा खेलन ॥
वीणा डमरू बजावन, ज्ञान पहेली प्रतिकृती।
थत्तो पत्तो बाँचिवो, नाटकादि महँ वर गती ॥

विद्याका फल है अमृतत्वकी प्राप्ति विद्या दो प्रकारकी होती है। लौकिकी विद्या पारलौकिकी विद्या। लौकिकी विद्याका भी उद्देश्य धर्मार्जन करते हुए मोक्ष प्राप्ति है। हमारे यहाँ जितने

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! सम्पूर्ण विद्याओं के प्रवर्तक नरवरों में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण और बलराम ने सम्पूर्ण विद्यायें एक बार बतलाने से ही ग्रहण कर लीं।"

शास्त्र हैं, सबका उद्देश्य मोक्ष प्राप्त ही है। सांख्य शास्त्रका सिद्धान्त है तत्वोंके यथावत ज्ञान हो जानेसे मोक्ष मिलता है। इसी प्रकार काम शास्त्र विधि पूर्वक काम के सेवनसे, मीमांसा शास्त्र कर्मके सम्पादनसे, औपनिषदक ब्रह्म ज्ञानसे, आयुर्वेद शास्त्र आरोग्यसे तथा ज्योतिष शास्त्र भूगोलखगोलके ज्ञानसे मोक्ष मानते हैं। जो शास्त्र अपना सिद्धान्त बताता है, उसका फल वह स्वर्ग सुख तथा मोक्ष ही बताया है। जैसे व्याकरण शास्त्र है, उसका सिद्धान्त एक भी शब्द यथावत शास्त्रीय पद्धतिसे नियमानुसार प्रयोग किया जाय तो स्वर्गमें तथा लोकमें वह सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करने वाला होता है। इसीलिये व्याकरण शास्त्र शब्दोंकी व्युत्पत्ति तथा सिद्धि पर और शुद्धोच्चारण पर बल देता है। विद्याके साथ कलाका भी ज्ञान होना चाहिये। जिस प्रकार विद्या मुक्तिका मार्ग बताती है, उसी प्रकार कला मनोरंजन करना सिखाती है। मानव जीवनके लिये मनोरंजन 'अत्यावश्यक है। हँसना प्रसन्न होना स्वास्थ्यके लिये सौंदर्यके लिये आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। जैसी प्रकृति के पुरुष होते हैं वह अपने लिये वैसा ही मनोरंजन खोज लेते है। कलायें अनेक प्रकार की हैं। किन्तु मुख्यतया कला चौंसठ बताई जाती हैं। इन चौंसठ में सभीका समावेश हो जाता है। भगवान् में समस्त विद्यायें समस्त कलायें स्वयं रहती हैं। उन्हें सीखनी नहीं पड़तीं। वे किससे सीखें ? विद्या और कलाओंके जनक—उत्पत्ति स्थान तो वे स्वयं ही हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! श्रीकृष्णजी तथा बलरामजी आवन्तीपुर निवासी महामुनि सान्दीपिनी आचार्यकेगुरुकुलमें रहकर सेवा सुश्रूषा करते और विद्योपार्जन करते थे। उन्हें विद्या स्वयं ही प्राप्त थीं अप्राप्त वस्तुको प्राप्त करना होता है। उन्हें स्वयं ही सब कलायें स्वतः प्राप्त थीं, फिर भी लोक शिक्षाके लिये वे ऐसा

अभिनय कर रहे थे। गुरु इनकी तीक्ष्ण बुद्धिके कारण परम विस्मित थे। अब तक वे जिन छात्रोंको पढ़ाते थे उन्हें बहुत समझना पड़ता था। वे दिन भर घोखते रहते थे, दूसरे दिन गुरुजी सुनते तो भूल जाते तो उन्हें फिर बताते। इसलिये जीवन भर अध्ययन करने पर भी कोई एक छात्र एक विद्यामें पारंगत हो सकता था, किन्तु रामश्यामकी बुद्धि विलक्षण थी। इन्हें न तो घोखना ही पढ़ता था और न गुरुजीसे दुबारा पूछना ही पड़ता था। गुरुजीने जहाँ एक बार जो बात कही उन्हें तुरन्त वह याद हो गई।

प्रथम उन्होंने वेदके शिक्षा, व्याकरण, कल्प, ज्योतिष, छन्द तथा निरुक्त ये छै अंग पढ़ाये। फिर उपनिषदोंके सहित ऋक्, यजुः, साम और अथर्व ये चार वेद पढ़ाये। फिर मंत्र और देवता ज्ञानके सहित धनुर्वेद, निदान और चिकित्सा पूर्वक आयुर्वेद, स्वर, लय तालादिके ज्ञान पूर्वक गान्धर्ववेद तथा क्रियात्मक स्थापत्य वेद इन चारों उपवेदोंकी शिक्षा दी। फिर मनु आदि धर्म शास्त्र, जैमिनी, कणाद, गौतम, कपिल, पतञ्जलि तथा वादरायण रचित, पूर्व उत्तर मीमांसा, सांख्य, योग, न्याय और वैशेषिक इन छै शास्त्रोंकी शिक्षा दी। तदनंतर न्याय मार्ग, आन्वीक्षिकी विद्या, आत्मविद्या तथा सन्धि, विग्रह, यान, आसन द्वैधीभाव और समाश्रय रूपा छै प्रकार की राजनीतिकी भी शिक्षा दी।

इस प्रकार शास्त्रीय ज्ञान पूर्ण होने पर फिर उन्होंने कलाओंका अध्ययन किया। मुनियो! एक एक कलाके सीखने में मनुष्योंकी पूरी आयु बीत जाती है, फिर भी वह कला साङ्गोपाङ्ग नहीं आती। जैसे सङ्गीत कला ही है। उसके गाना बजाना और नाचना ये तीन भेद है। अकेले गान विद्याको ही सीखते रहो, तो उसका कोई अन्त नहीं। नाचनेकी कलामें पारंगत होना

चाहो, तो जीवन भर परिश्रम करके उसमें सर्वज्ञ नहीं हो सकते। इस प्रकारकी दुरूह चौंसठ कलाओंको भगवान्ने चौसठ दिनमें साङ्गोपाङ्ग सीख लिया।"

इस पर शौनकजीने पूछा—"सूतजी! चौंसठ कलायें कौन कौन सी हैं, उनका हमें भी दिग्दर्शन कराइये।"

हँसकर सूतजी बोले—"महाराज! यदि मैं कलाओंका वर्णन करने बैठूँ तब तो यह आपकी भागवती कथा यहीं समाप्त हो जायगी। कला कथा आरम्भ हो जायगी। फिर भी मैं प्रसङ्ग वश सभी कलाओंका नाम निर्देश मात्र किये देता हूँ।

पहिली कला है गाना। इसमें गाना कैसे गाना चाहिये, गीतों के रचने की सामर्थ्य, यह राग किस जातिका है, रागोंके के भेद हैं, रागिनी कितनी हैं, कौन राग किस समय गाना चाहिये, किस बोलमें कितनी मात्रायें हैं, कौन सी ताल है, साधक बाधक स्वरों का मेल कैसे होता है, इत्यादिक सभी ज्ञान होता है। गायन कला बड़े पुण्यसे आती है। कलाके साथ मधुर स्वर भी आवश्यक है।

दूसरी कला से वाद्य। बाजे चार प्रकार के होते हैं, खालके, तारके, फूँकके और कांस, काठ आदि के। खालके जैसे ढोलक, नगारा, ढप मृदंग तथा पखावज आदि। तारके जैसे वीणा, तंबूरा, रबाब, सारंगी, सितार आदि इनके दो भेद हैं एक तो ठोकरसे बजते हैं जैसे सितार, वीणा आदि। एक गजसे बजते हैं, जैसे सारंगी, मोरचंग आदि। फूँकके बाजे जैसे बाँसुरी, अलगोज, मुरली, सहनाई तुरही शंख आदि। चौथे तालके बाजे हैं जैसे मँजीरा, झांझ, करताल आदि। इन चारों प्रकारके बाजोंको ताल, लय और स्वरके साथ मिलाकर विधिवत रागके अनुरूप बजाना ही वाद्य कला है। गायन विद्यामें जो सुरमें गाया जाता है, उसे ही ज्योंका त्यों बाजेमें बजादेना। इससे गान कला प्रस्फुटित होती है।

तीसरी कला है नृत्य। भाव भंगी दिखाकर, अङ्ग प्रत्यंगोंका नियमानुसार संचालन करके जो संगीत शास्त्रके अनुसार भाव व्यक्त किये जाते हैं, उसे नृत्य कहते हैं। सृष्टिके समस्त भाव, सभी प्राणियोंकी चेष्टायें, सभी रसोंके भाव बिना बोले केवल अंग संचालन करके नृत्यमें दिखाये जाते है। नाच करके रसकी अभिव्यक्तिकर देना। नाच नाचमें ही पूरी कथा समझा देना यही नृत्य कलाकी विशेषता है। जो बोल मुखसे गाकर उच्चारण किये जायँ, उन्हें ही बाजेमें बजाया जाय और उन्हें ही अंग प्रत्यङ्ग के संचालनसे नृत्यमें अभिव्यक्त किया जाय, तभी संगीतका सच्चा साकार स्वरूप प्रकट होता है। नृत्य कला सबको अपनी ओर आकर्षित करती है। शंकरजीका तांडव नृत्य प्रसिद्ध है। इन्द्रादि सभी देव नृत्यकलामें पारंगत हैं। श्रीकृष्ण तो नटवर ही हैं। वे नृत्य कलाके परमाचार्य हैं। उनके परिकरमें ऐसी एक भी गोपी नहीं जो नाचना न जानती हो। राजाओंकी, देवताओंकी कोई ऐसी सभा नहीं जिसमें नृत्य न होता हो।

चौथी कला है नाट्य। नृत्यको ही रूपकमें दिखाना आख्यानमय नृत्यका ही नाम नाट्य है। भरतादि आचार्योंने नाट्य शास्त्र पर विस्तारसे विवेचन किया है। नाटकमें नर नारियोंका अत्यधिक मनोरंजन होता है।

पाँचवी कला है आलेख्य। आलेख्य उसे कहते हैं जो जैसा देखा है, सुना है, उसका वैसा ही चित्र बना देना। चित्र कला भी एक अत्यन्त रुचि वर्धक ललित कला है। इसमें बड़े नियम होते हैं। किस देवताका कैसा चित्र बनाना चाहिये, कैसा उसका वाहन होना चाहिये, कैसी मुद्रा होनी चाहिये। चित्रको देखते ही बिना बताये दर्शक समझ जाय, यह अमुकका चित्र है, अमुक भावके समयका है। समस्त मनोगत भावोंको चित्र में व्यक्त देना यह सामान्य बात नहीं।

छठी कलाका नाम है, विशेषकच्छेद्य। इसका तात्पर्य यह है, कि हम जिसके भी भावको जानना चाहते हैं, उसके मुखको प्रथम देखते हैं। मुखाकृति देखकर ही बुद्धिमान लोग भावोंका अध्ययन करते हैं। भावोंकी मुख्य भूमि मुख ही है। उस मुखको आकर्षक बनाना यह भी कला है। भाल पर सुन्दर आकर्षक तिलक लगाना। कपोलों पर केशर कुँकुमकी पत्रावली बनाना। नाना विच्छेद रचना करनेका ही नाम विशेषकच्छेद्य है। पहिले सभी कुलीन महिलायें अपने कपोलों पर पत्रावलीकी रचना करती थीं। नायक नायिकाका शृंगार करता था, नायिका नायकका। दोनों ही पत्रावलीकी रचनामें प्रवीण होते थे। अब यह कला रास-लीला रासलीलाके स्वरूपोंके सजानेमें व्यक्तकी जाती है। स्त्रीपुरुषोंमेंसे इसका चलन उठ गया है।

सातवीं कलाका नाम है 'तण्डुल कुसुम बलि विकार'। चावलों, अन्यान्य धान्यों तथा पुष्पोंके द्वारा पूजाके उपहारानुरूप रचना करना। चावल, उड़द, मूँग, मसूर चनाकी दाल आदि धान्योंसे सर्वतोभद्रादि की रचना करना, चौक बनाना, तथा पुष्पोंसे भाँति भाँतिकी वेदियों पर रचना करना यह पूजा सम्बन्धी परमावश्यक कला है। यज्ञोत्सव तथा पर्वादिके समय ऐसी कलात्मक रचनासे दर्शनार्थियोंको अत्यन्त सुख मिलता है और देव पूजादि भी साङ्गो पाङ्ग सम्पन्न होती है।

आठवीं कला है पुष्पास्तरण। अर्थात् फूलोंकी सेज बनाना। अब तो कलियुगके प्रभावसे कलायें लुप्त प्राय हो रही हैं। सबको उदर भरणकी चिन्ता ही व्यथित किये रहती है। पहिले राजा रानी और राजकुमारियोंके लिये पुष्प शैयाकी रचनाकी जाती थी। अब कभी कभी देव मन्दिरोंमें पुष्प शैयाके दर्शन होते हैं। कभी कभी तो यह रचना इस ढँगसे की जाती थी, कि सोने वाली रात्रिभर पुष्प शैयापर शयन करे और एक भी पुष्प

मुरझावे नहीं। प्राचीन काल में स्वयं स्त्रियाँ पति के लिए फूलों की सेज सजाती थीं। पुरुष भी नायिका को प्रसन्न करने को पुष्प शैया की रचना करते थे।

नवमी कला का नाम है "दशन वसनाङ्गराग"। अर्थात् दाँतों को किस प्रकार रंगना चाहिये जिससे वे आकर्षक हों। कोई मिस्सी से रँगते हैं। कोई पान के पीक से। दूसरा प्रकार वस्त्रों को रंगने की विद्या। कौन वस्त्र किस रंग का [illegible] अंग पर विशेष खिलेगा। शरीर में अंगराग लगाना, अथवा आँखों को रंगना ये सब इसी कला के अन्तर्गत हैं। इसमें स्त्री पुरुष को आकर्षित करने के लिए, पुरुष स्त्री को आकर्षित करने के लिये भाँति भाँति के रंगों का उपयोग करते हैं।

सुन्दर वेल वूटे और चौकर आदि बनाते हैं, कि मुख से हठात् धन्य धन्य निकल जाती है।

बारहवीं कला है "उदकवाद्यमुदकघात"। जल से भरे सरोवर में घड़ा आदि रखकर उसके द्वारा गायन करना। अथवा बहुत से पात्रों में जल भरकर जल तरंग बाजा बजाना। जल को स्तम्भित करके उसके भीतर भवन की भाँति बैठे रहना। जैसे महाभारत के युद्ध से भागकर दुर्योधन एक सरोवर में जल को स्तम्भित करके छिपकर बैठ गया था। जल के विपरीत उस पर चलना, जल के अनुकूल प्रवाह की ओर चलना। यह जल से सम्बन्ध रखने वाली कला है।

तेरहवीं कला का नाम है 'चित्रयोग'। अर्थात् चित्र विचित्र प्रकार की आकृतियों को बनाना। भाँति भाँति के रूपों की रचना करना।

चौदहवीं कला है "माल्य प्रथन विकल्प" नाना प्रकार की मालाओं को बनाना, भाँति भाँति के पुष्प हारों की रचना करना। दक्षिण देश में भगवान के लिए अब भी सहस्त्र सहस्त्र रुपयों के मूल्य के पुष्पहार बनते हैं, उनमें भाँति भाँति के कला कौशल दिखाये जाते हैं।

पन्द्रहवीं कला है, 'शेखरापीड योजना—' अर्थात् सिर को सजाना। सिर के ऊपर बालों का शृङ्गार करना, वेणी में पुष्पों का शृङ्गार पुष्प मालाओं का शृंगार करना अथवा सिर को पुष्पों के मुकुटादि से सजाना। अथवा सिर के बालों को ही मुकुट बनाकर उसे पुष्पों से सजाना। प्राचीन काल में वेणी गूँथने की कला का बड़ा प्रचार था। केश पाशों की पुष्प-मालाओं से सजाने में कभी कभी तो पूरा दिन लग जाता था। प्रातःकाल से आरम्भ करके सायंकाल में यह शृङ्गार समाप्त होता था। बड़े बड़े राजाओं की पटरानियों की वेणी इसी प्रकार सजाई जाती थी, अथवा राज-

सभाओं में नृत्य करने वाली मंगलमुखी वाराङ्गनायें ऐसा शेखरापीड शृंगार करके नृत्य किया करती थी। श्रीकृष्ण इस कला में बड़े निपुण थे। एक दिन श्रीराधिकाजी से श्रीकृष्ण ने कहा—"लाओ तुम्हारी वेणी का मैं शृंगार कर दूँ।" राधिकाजी ने कहा—"चलो, हटो। यह काम तो स्त्रियों का है, तुम ठहरे पुरुष तुम वेणी गूँथना क्या जानों।" यह सुनकर अत्यन्त ही स्नेह से श्रीकृष्ण बोले—"वेणी गूँथना तो मैं ही जानता हूँ। मेरी जैसी वेणी कोई स्त्री गूँथ तो ले। मैं निपुण से निपुण स्त्री को चुनौती देता हूँ।"

वे बोले :—

वेंनी गूँथ कहाँ कोई जाने। मेरी सी तेरी सौंह राधे।
बिच बिच फूल श्वेत पित राते। को करि सकै एरा सौंह राधे॥

सोलहवीं कला है नेपथ्य योग। जिस रंगमञ्च पर नाट्य अभिनय होता है उसे भली भाँति आकर्षक ढंग से सजाना यह भी कला प्रशंसनीय कला है। नाटक कितना भी सुन्दर क्यों न हो यदि उसके अनुरूप रंगमञ्च सजाई नहीं गई हो, तो वह दर्शकों का भली भाँति मनोरंजन नहीं कर सकता। सर्वप्रथम दर्शकों पर रंगमञ्च की सजावट का ही प्रभाव पड़ता है। अतः कला की दृष्टि से रंगभूमि को सजाना बड़े महत्व का कार्य है।

सत्रहवीं कला है "कर्ण पत्र भङ्ग"। अर्थात् कानों को सजाना। कानों के जो आभरण हैं, उनके भेदों के सौंदर्य को सजावट को जानकर तदनुरूप उन्हें सजाना।

अठारहवीं कला है "सुगन्धयुक्ति"—सुगन्धित पदार्थों को इस युक्ति से शरीर पर धारण करना कि उनमें से सुगंधि भी आती रहे और उनसे शोभा भी बढ़े। जैसे कपूर का हार बनकर पहिनना। कपूर के बाजूबन्द, कपूर की माला, कपूर की चूड़ी आदि धारण करना। वस्त्रों में सुगन्धित तैलों को लगाना जिससे दूर से ही सुगन्धि आ जाय। सुगन्धित तैल तथा अन्यान्य द्रव्यों

का निर्माण भी इसी कला के अन्तर्गत समझना चाहिये।

उन्नीसवीं कला है "भूषण योजन"। अर्थात् भूषणों के पहिनने की चातुरी।

बीसवीं कला है 'ऐन्द्र जाल'। अर्थात् लोगों की दृष्टि बाँध देना। माया से अनेक कल्पित पदार्थों का निर्माण कर लेना। रावण इस कला में बड़ा निपुण था। उसने श्रीरामचन्द्रजी, लक्ष्मणजी के बनावटी सिर माया से बना लिये थे और सीताजी को दिखाये थे। शाल्व राजा ने वासुदेवजी का बनावटी शरीर ज्यों का त्यों बना लिया था और श्रीकृष्ण के समीप ले जाकर उसका सिर काट लिया था। इस माया जाल की कला के बहुत से भेद हैं। मायावी दैत्य दानव राक्षस इस कला में निपुण होते हैं।

इक्कीसवीं कला है 'कौचुमार योग'। अनेक रूप रख लेना। इस कला का प्रदर्शन करने वाले बहुरूपिया कहलाते हैं वे ऐसा यथार्थ रूप बना लेते हैं, कि कोई उन्हें पहिचान ही नहीं सकता। पुरुष से स्त्री बन जायेंगे, भिखारी, राजकर्मचारी, सेठ, राजा, साहुकार जैसा चाहे वैसा रूप बना लेते हैं। पहिले राजा के यहाँ बहुत से बहुरूपिया मनोरंजन के लिये आया करते थे।

बाइसवीं कला का नाम है 'हस्त लाघव'। हाथ की ऐसी कुशलता दिखाना कि कुछ की कुछ वस्तु कर देना। बाजीगर इस कला का प्रदर्शन बहुधा किया करते हैं।

'चित्र शाकापूप भक्ष्य विकार क्रिया' यह तेईसवीं कला कहलाती है। नाना प्रकार के सुन्दर स्वादिष्ट साग स्वच्छता के साथ बनाना, मालपुआ, हलुआ, पूड़ी, रसगुल्ला तथा अन्य नाना भाँति के भोज्य पदार्थों को बनाना। भोजन की कला भाग्यशाली को ही आती है। महाराज नल इस कला में अत्यन्त निपुण थे। भीमसेन भी इस कला के ज्ञाता थे। एक ही अन्न है उसे यदि कलापूर्ण ढंगसे बनाया जाय तो वह सुन्दर स्वादिष्ट और हृद्य है

जाता है। उसीको अनाड़ी बनावे तो वह विष तुल्य हो जाता है। इस कालमें स्त्रियाँ अत्यन्त निपुण होती हैं।

चौबीसवीं कला है 'पानक रस रागासव योजन' अर्थात् पीने योग्य सुन्दर रसीली सुगन्धित दर्शनीय शरबत आदि बनाना। मदिरा आसव आदिका निर्माण। सुरा, मदिरा आसव किस समय कैसे पान करने चाहिये, कौनसी सुरा कितनी मादक है, उसका प्रयोग कितनी मात्रामें कैसे कब करना चाहिये, कैसे उसे बनाना चाहिये। इत्यादि सभी पानीय पदार्थोंका निर्माण और पानविधि इस कलाके अन्तर्गत आ जाती है।

पच्चीसवीं कला का नाम है 'सूचीवाय कर्म'। अर्थात् वस्त्रोंको सुन्दर आकर्षक ढंगसे सीना। वस्त्र सीनेकी कला भी अत्यन्त उपयोगी और सर्व प्रिय है। एक ही वस्त्र कलाकी दृष्टिसे सी कर पहिना जाय, तो उसकी और शोभा होती है, उसे ही सामान्य रूपसे लपेट लिया तो उसकी दूसरी शोभा है।

छब्बीसवीं कलाका नाम है, 'सूत्र क्रीड़ा'। अर्थात सूत्रसे नाना प्रकारकी क्रीड़ा करना। चकई भौंरा घुमाना। कच्चे धागेको बाँधकर उस पर चलना, पक्षियोंके पैरोंमें सूत्र बाँधकर उन्हें छोड़ देना। पतंग उड़ाना, कठ पुतली नचाना आदि बातें इस कलाके अन्तर्गत हैं।

सत्ताईसवीं कलाका नाम है 'वीणा डमरुक वाद्यानि'। अर्थात् वीणा डमरू आदिकी विद्यामें विशेषता प्राप्त करना। दूसरी वाद्य कलामें ही सब बाजोंका ज्ञान आ जाता है, यहाँ फिरसे वीणा और डमरूकी कलाका कथन करना इनमें विशेषता प्राप्त करना ही है। अर्थात् आंखमें पट्टी बाँधकर वीणा डमरू बजाना या इन्हें बजाते हुए नाना प्रकारकी विस्मयोत्पादक क्रीड़ायें करना। यह भी हो सकता है।

अट्ठाईसवीं कलाका नाम है 'प्रहेलिका' अर्थात् पहेली पूछना

और बताना। पहेली पूछने से बुद्धि बहुत बढ़ती है, विचार करने की शक्ति आती है। पहेली आपसमें मिलकर पूछते हैं। पहिले सोते समय सभी लोग पहेली पूछा करते थे। जैसे किसीने पूछा—

पानीमें निशिदिन रहे, वाके हाड़ न मास।
काम करे तरवारको, फिर पानीमें वास॥

अर्थात् एक ऐसा है, कि पानीमें तो रहता है, किन्तु उसके शरीरमें हाड़ मांस नहीं है। फिर भी वह तलवारका काम करता है। अर्थात दिनभर दूसरोंके सिर काटता रहता है। सिर काट—कर तुरन्त पुनः पानीमें घुस जाता है। बताइये वह कौन है?"

पूछने वाला सबसे पूछता है, सभी सोचते हैं—ऐसी कौनसी वस्तु है। बहुत सोचनेके पश्चात् कोई कहता है। "कुम्हारका बर्तन काटनेका डोरा है।" सब एक स्वरमें बोल उठते हैं। हाँ हाँ यही है। तुमने कैसा सोच लिया। पहेली पूछनेकी भी एक कला है। सबसे एकसी पहेली नहीं पूछी जाती। विद्वानोंसे कठिन पहेली पूछी जाती है। बच्चोंसे सरल और हँसीकी जैसे—

"बरत टूटि गई कुआ सिकुड़ गयो।"

इसे सुनकर बालक हँस पड़ेंगे।

उन्नीसवीं कला है, 'प्रतिमाला'। अर्थात् सभी वस्तुओंकी प्रति-कृति बनाना। जैसे पाषाणकी मूर्तियोंका निर्माण करना, सुन्दर आदर्श वाक्य रचना करना और भी वस्तुओंकी ज्यों की त्यों प्रतिलिपि कर लेना।

बीसवीं कलाका नाम है 'दुर्वचक' योग। हम जिस बातको सबके सामने कहना चाहते हैं, किन्तु दूसरे लोग न समझ सकें ऐसी भी हमारी इच्छा है, अतः दूसरे न समझ सकें इस युक्तिसे बात करनेका नाम दुर्वचक योग है। बहुतसे अनपढ़ लोग हैं, वहाँ म्लेच्छ भाषा में या अन्य किसी भाषामें कह दिया। संकेत

से बता दिया। उसमें चार अक्षर हैं, इस प्रकार गोल मोल रूपसे बता दिया। जिससे केवल जिसे समझाना चाहते हैं, वह तो समझ जाय, दूसरे न समझ सकें।

इकत्तीसवीं कला है 'पुस्तक वाचन'। पुस्तक बाँचना भी एक कला है। इस ढंगसे पुस्तकको बाँचना कि श्रोताओं पर उसका प्रभाव पड़े। ऐसी लयके साथ बाँचना कि सुनने वालोंका स्वतः ही चित्त खिंच जाय। पुस्तकमें कोई अक्षर छूट गया है, कोई मात्रा उड़ गई है, तो उसे शुद्ध करके बाँचना। जो बाँचे उसे पहिले स्वयं समझ ले, बाँचते समय जैसा विषय हो वैसा ही स्वर बना ले। वीरताका विषय है तो वीरताकी वाणीमे बाँचे। हास्यका विषय है तो वैसे चेष्टा बनाता हुआ बाँचे। अर्थात् जिस विषयको बाँचे उसमें स्वयं तन्मय हो जाय। पुस्तक बाँचनेकी कला भी सभीको नहीं आती।

बत्तीसवीं कलाका नाम है—'नाटकाख्यायिका दर्शन'। नाटक क्या होता है, आख्यायिका क्या होती है, इसका ज्ञान होना इस कलाके अन्तर्गत है। नाटक आख्यायिकाको स्वयं करके दिखा देना, नाटकोंके पात्र बनकर तदनुरूप अभिनय करना यह भी इसी कलाके अंतर्गत है।

तेतीसवीं कलाका नाम है 'काव्य समस्या पूरण'। किसीने कोई आधा या चौथाई पद दे दिया तो उसके मनोगत भावको समझकर उसकी पूर्ति कर देना। कोई बात संक्षेप में कह दी हो, उसका विस्तार पूर्वक वर्णन कर देना। किसीने तीन ही पद दे दिये तो उस चौथे पदकी पूर्ति कर देना काव्य समस्या पूरण कला है।

चौंतीसवीं कलाका नाम है 'पट्टीकावेत्र वाण विकल्प'। किस स्थान पर कैसी पट्टिका लगानी चाहिये, वेतकी वस्तुओं को बनाना अथवा किसको कैसा वेत धारण करना चाहिये। यह

वाण कैसा है, इस बाणका कहाँ किस अवसर पर प्रयोग करना चाहिये इस प्रकार इनके भेद और विधियोंका पूर्ण ज्ञान होना यह इस कलाके अन्तर्गत है।

पैंतीसवीं कलाका नाम है 'तर्क कर्म'। अर्थात् तर्कके ही द्वारा समस्त विषयका ज्ञान कर लेना। जिस विषयको देखे, अपनी तर्कसे उसके कारणको ढूँढ़ लेना।

छत्तीसवीं कला है 'तक्षण'। लकड़ीकी या अन्य धातुकी चन्द्रावर्तके सदृश आकृति बनाना यह एक शिल्पकलाका भेद है, भाँति भाँतिके बेलबूटे बना लेना।

सैंतीसवीं कलाका नाम है 'वास्तु विद्या'। अर्थात् गृह निर्माण कला। घर कैसी भूमि पर बनाना चाहिये। कैसे कार्यके लिये कैसी भूमि अनुकूल रहेगी। घर कैसे बनाना चाहिये। किस ढँग से बनाना चाहिये। घर बनानेके सम्बन्धकी जितनी बातें हैं वे सब वास्तु विद्या कलाके अन्तर्गत आ जाती हैं।

अड़तीसवीं कला है 'रूप्य रत्न परीक्षा'। अर्थात् चाँदी आदि धातुओंकी, रत्नोंकी परीक्षा करना। यह रत्न कैसा है, इसका क्या मूल्य है, यथार्थ है या बनावटी। सराफ या जौहरी इस कलामें निपुण होते हैं।

उन्तालीसवीं कलाका नाम है 'धातु वाद'। सोना चाँदी यावन्मात्र धातु है, सबकी विधिवत परीक्षा कर लेना, उनके भेद जान लेना, एक धातुको दूसरी धातुमें मिलानेकी विधि जानना। ये सभी कार्य इस विद्याके अन्तर्गत आ जाते हैं।

चालीसवीं कला है 'मणिराग ज्ञान' अर्थात मणियों के रंगका ज्ञान। लाल, हीरा, मोती पुखराज, नीलम तथा अन्यान्य मणियोंके रंगको जानना। उनकी जातिको पहिचानना। कृत्रिम रंगोंसे रंग देना ये सब मणिके रंग सम्बन्धी बातें इसी कलाके अन्तर्गत आ जाती हैं।

इकतालीसवीं कला है, 'आकर ज्ञान'। भूमि को देखकर ही बता देना यहाँ सुवर्ण की खान है, यहाँ चाँदी की खान है, यहाँ ताँबा है, कोयला, पत्थर तथा अन्यान्य वस्तु हैं। इस कला के प्रभाव से सैकड़ों हाथ नीची गड़ी हुई वस्तुओं को बता देते हैं।

ब्यालीसवीं कला है, 'वृक्षायुर्वेद' योग। अर्थात् वृक्षों को देखकर यह बता देना, इनकी कितनी आयु है। रोगी वृक्ष की चिकित्सा करना। किस प्रकार कैसी खाद देने से वृक्ष जीवित रहेंगे और बढ़ेंगे। कब पानी देना चाहिये, कब खाद देनी चाहिये। इस वृक्ष में किसकी कलम लगाई जा सकती है। गुठली कैसे छोटी की जा सकती है। अमुक फल बिना बीज का कैसे बनाया जा सकता है। अमुक पौदा कब रोपा जाता है। वृक्षों के फलों को कैसे बढ़ाया जा सकता है, कैसे मीठा फल किया जा सकता है। एक फल में दो प्रकार के स्वाद कैसे लाये जा सकते हैं। ये सब बातें इस विद्या के प्रभाव से जानी जा सकती हैं। वृक्षों के सम्बन्ध की समस्त बातें इसी विद्या के अन्तर्गत हैं।

तैंतालीसवीं कला है, मेष कुक्कुट लावक युद्धविधि। दो मेढ़ाओं को लड़ाना। कुक्कुटों का युद्ध कराना, तीतरों को लड़ाना यह भी एक कला है। लड़ानेवाले इनको पालते हैं और पण लगा कर दूसरे के पालतू मेढ़ा, बकरा, कुक्कुट तथा तीतरों से उन्हें लड़ाते हैं। बहुतों की इसी से आजीविका चलती है।

चौवालीसवीं कला है, 'शुक सारिका प्रलापन'। बिना पढ़े तोता तथा मैनाओं को पढ़ाना। उन्हें बोलना सिखाना। उनके स्वर को आकर्षक बनाना यही सब बातें इस कला में सिखाई जाती हैं।

पैंतालीसवीं कला, 'उत्सादन'। उत्सादन कला वह कहलाती है, जैसे किसी दो मे परस्पर में अत्यधिक आसक्ति हो गई है, एक दूसरे के बिना रह ही नहीं सकता। ऐसी दशा मे मंत्र प्रयोग द्वारा

या अन्य किसी युक्ति से उनके मन को ऐसा फेर देना, कि उनमें से एक छोड़कर अन्यत्र चला जाय। जब आसक्ति परस्पर में अधिक हा जाती है, तो बिना कला कौशल के वह छूटती नहीं।

छियालीसवीं कला है—'केश मार्जन कौशल'। अर्थात् बालों को धोने की चातुरी। किस युक्ति से बाल धोने से सुन्दर, स्वच्छ, मृदुल और सुगंधित होंगे। किन किन द्रव्यों से उन्हें धोना चाहिए और फिर किन सुगंधित द्रव्यों के धूँए से उन्हें सुखाना चाहिये।

सैंतालीसवीं कला का नाम है 'अक्षर मुष्टिका कथन'। आँखों पर गीले आटे को चिपकाकर उसके ऊपर पट्टी बाँध दे। तब पुस्तक को पढ़ दे। अथवा कोई भी मनुष्य मुट्ठी में किसी वस्तु को बन्द कर दे और उसे बता दे कि तुम्हारी मुट्ठी में अमुक वस्तु है और इनका प्रदर्शन भी करते हैं।

अड़तालीसवीं कला का नाम है, 'म्लेच्छित कुतर्क विकल्प'। विविध देश की भाषाओं का ज्ञान होना। अर्थात विदेशी भाषाओं और लिपियों को समझने का सामर्थ्य आ जाना।

उनचासवीं कला है 'देश भाषा ज्ञान'। अपने देश की विभिन्न भाषाओं का ज्ञान होना। किस देश में कौन सी भाषा बोली जाती है, उसके व्याकरण के क्या नियम हैं, उसके साहित्य में किस विषय के ग्रन्थ अधिक हैं।

पचासवीं कला का नाम है 'पुष्प शकट का निमित्त ज्ञान'। कौआ, पशु, पक्षी आदि को देखकर यह जान लेना कि भविष्य में क्या होगा। अथवा पुष्पक शकट का नामक वायुयान बनाने की विद्या विशेष है, उसके निमित्त का ज्ञान। उड़न खटोला या वायुयान बनाना।

इक्यावनवीं कला है—यन्त्रमातृका धारणमातृका—भोजपत्र

पर या अन्य किसी पर यन्त्र लिखकर देना। ताग गंडे या यन्त्र बनाना और उन्हें धारण करके उनकी सामर्थ्य से कार्य कराना। अथवा प्रतिमाओंका चलाना उनसे बातें कराना आदि आदि क्रियायें इसके अन्तर्गत हैं।

बावनवीं कला नाम है 'सम्पाट्य'। हीरा आदि काटने पर भी नहीं कटते। उन्हें युक्तिद्वारा काटना उनके दो टुकड़े करना आदि बातें इस कलाके अन्तर्गत हैं।

तिरेपनवीं कला का नाम है 'मानसी काव्य क्रिया'। दूसरेके मनमें जो बात हो उसी भावको समझकर छन्दबद्ध कर देना मानसी समस्याको समझकर उसकी पूर्ति कर देना।

चौअनवीं कलाका नाम है 'अभिधान कोश'। अर्थात एक साथ सौ आदमियोंके कहे हुए वाक्योंको पुनः ज्यों का त्यों बता देना। ऐसे लोगोंको शतावधानी कहते हैं अथवा किसी भी पुरुषको देख-कर छन्दोबद्ध उसका सब वृत्त बता देना ये सभी बातें इस कलाके अन्तर्गत हैं।

पचपनवीं कलाका नाम 'छन्दो ज्ञान'। विविध प्रकारकी छन्दोंका ज्ञान होना या भाँति भाँति के छन्दोंको बनानेकी शक्ति होना। अथवा छन्दोंके गुण दोष समझकर उनकी अलोचनाकी सामर्थ्य रखना ये सभी बातें इस कलाके अन्तर्गत हैं।

छप्पनवीं कलाका नाम है—'क्रिया विकल्प'। एक ही क्रियाको विविध प्रकारसे सम्पन्न करना। एक ही कार्यको नाना उपायों से करना। स्त्रियोंके मनकी बातको जान लेना।

सत्तावनवीं कलाका नाम है 'छलितकयोग'—दूसरोंको नाना उपायोंसे छल लेना अर्थात् दूसरोंको उल्लू बना कर अपना स्वार्थ सिद्ध कर लेना। दूसरोंको ठग लेना यह भी एक बड़ी भारी कला है। ठग अनेक उपायोंसे ठग विद्या करते हैं। बनावटी सोना डाल देते हैं। फिर उससे मिल जाते हैं। व्यापारी

के यहाँसे चतुरतासे हीरा मोतीकी माला ले आते हैं। इस कलामें निपुण व्यक्ति दूसरोंकी आँखोंमें धूलि झोंककर उसके देखते देखते मालको उड़ा ले जाते हैं। कलियुगमें इस कलाका बड़ा प्रचार है। एक आदमी एक दो घोड़ेकी सुन्दर बहुत गाड़ीमें बैठकर एक जौहरी की दुकान पर गया। उसने सबसे सुन्दर मणियोंकी माला माँगी। जौहरीने साधारण मणियोंकी माला दे दी। उसने कहा—"मैं गाड़ीमें बैठी अपनी पत्नीको दिखा लाऊँ।" दिखाने गया लौटकर कह दिया—"इससे भी अच्छी दीजिये"। उसने इससे भी अच्छी दी। फिर दिखाने गया। फिर कहा—'इससे भी अच्छी दीजिये'। जब जौहरीने सबसे सुन्दर मणि माला दी तो उसे ले गया। उस घोड़ा गाड़ीके पीछे एक और वेगवती सवारी लगी थी। उसमें चढ़कर उस बहुमूल्य मालाको लेकर चला गया। जौहरी देख रहा था। घोड़ा गाड़ी, खड़ी है। जब बहुत देर तक नहीं आया तो उसने नौकरोंसे कहा। नौकरोंने देखा उसमें न पत्नी है न पति। गाड़ीका हाँकने वाला भी नहीं है। दो चार हजारकी गाड़ी छोड़ कर करोड़ोंके मालको छल ले गया। ऐसे ही अनेक प्रकारसे दूसरों को छलना इस कलाके अन्तर्गत है।

अट्ठावनवीं कलाका नाम है 'वस्त्र गोपन'। अर्थात सूती वस्त्र दिखाया उसका रेशमी बना दिया। रेशमी दिखाया उसका ऊनी बना दिया। अथवा वस्त्रोंके द्वारा भले आदमीको बुरा बना दिया। बुरे लोगोंको वस्त्रादि पहिनाकर प्रतिष्ठितके समान बना दिया।

उनसठवीं कलाका नाम है 'द्यूत विशेष'। जूआ खेलनेकी कला अपना ही दाव आने देना। दूसरोंका पाशा पड़े तो उसे भी कौशलसे उलट देना। जैसे शकुनि दुर्योधन और धर्मराज की द्यूत क्रीड़ामें छल कर देता था।

साठवीं कलाका नाम है 'आकर्ष क्रीड़ा' अर्थात् आकर्षक

क्रीड़ा करना। क्या करने से स्त्री आकर्षित होती है। किस समय कौन सी बात कहनी चाहिये। कैसे भाव प्रदर्शित करने से क्रीड़ा में आकर्षण होता है। नाना प्रकार की क्रीड़ाओं से कामिनियों को अपनी ओर आकर्षित करना यह काम कला कहलाती है। अथवा खेल की सामग्री दूसरे स्थान पर हो उसे भी यहाँ आकर्षित कर लेना यह आकर्षक क्रीड़ा कला है।

इकसठवीं कला का नाम है 'बाल क्रीड़नक'। बालकों को खिलानेकी कला। बालक तनिक-तनिकसी बातों पर अड़ जाते हैं, रो जाते हैं। उन्हें भांति-भांति की बात कहकर हँसा देना। उन्हें बहलाना यह भी कला है। स्त्रियाँ इस कला में बड़ी निपुण होती हैं। एक स्त्री अपने बच्चे को पतिको देकर बाहर किसी काम को गई। लड़का कुछ देर तक तो खेला फिर रोने लगा। पिता ने पूछा—"तू क्या लेगा?" लड़के ने कहा—"मैं गुड़ लूँगा।" पिताने एक डली गुड़ दी। बच्चे ने कहा—"मैं बहुत लूँगा।" पिताने उससे बड़ी दी। लड़का रोने लगा। मै तो बहुत लूँगा। पिता जितनी भी बड़ी डली लाता, लड़का कह देता—"मैं तो बहुत लूँगा।" अन्तमें उसने भेली उठाकर रख दी। लड़का फिर भी कहता रहा मैं तो बहुत लूँगा। पिता बड़ा झुँझलाया। यह लड़का बड़ा हठी है। लड़का मानता ही नहीं था, रोता था पैर पीटता था। इतने में ही उसकी माँ आ गई। पति ने कहा—"यह लड़का तोबड़ा हठी है! तुम कैसे इसे रखती हो। तबसे रो रहा है, मैं बहुत गुड़ लूँगा। मैंने भेली दी फिर भी नहीं मानता।"

माता हँसी और बोली—"बालकों को बहलाने की भी एक कला होती है। देखो, मैं अभी चुप करती हूँ। यह कहकर माताने एक बड़ी एक छोटी दो गुड़की डली रख दीं और बोली—"इनमें से तुझे जो बहुत दिखाई दे उसे ले ले।" बालक ने हँसते-हँसते बड़ी डली उठा ली और वह प्रसन्न हो गया।

इस प्रकार वच्चों का भाँति भाँति से मनोरंजन करना यह बाल क्राडनक कला कहलाती है।

बासठवीं वैनायिकी तिरसठवीं वैजायिकी और चौसठवीं वैतलिकी ये चौसठ कलायें हैं। गरुड़ सम्बन्धी विद्या वैनायिकी कहाती है। सर्पों का विष उतारना, आकाश गमन करना इसके अन्तर्गत हैं। वैजायिकी कला जिससे विजय हो और भूत वैतालोंको सिद्ध करने की विद्या वैतालिकी कहाती है। इनका बहुत विस्तार है। यहाँ संक्षेप में मैंने इनका वर्णन किया है। इनमें से बहुत सी कलाये लुप्त प्राय हो गई हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! श्रीकृष्ण और बलराम दोनो भाइयों ने संयतचित्त होकर ये सबकी सब चौंसठ कलायें चौंसठ दिन मे साङ्गो पाङ्ग सीख लीं। जब सब अध्ययन समाप्त हो गया। तब दोनों भाइयों ने गुरुजी के सम्मुख दक्षिणा देने का प्रस्ताव किया। अब गुरुजी जैसे गुरु दक्षिणा माँगेंगे वह कथा मैं आगे कहूँगा। आप सब संयतचित्त होकर इस परम पुण्यमय प्रसंग को सुनने की कृपा करें। जैसे भगवान् अनंत हैं वैसे ही उनकी विद्या अनन्त है, लीला अनन्त है, उसका पार कौन प्राणी पा सकता है।"

छप्पय

काव्य समस्यापूर्ति पट्टिकावेत्र सुदीक्षा।
तर्क कर्म तक्षण हु ज्ञानगृह रत्नपरीक्षा॥
धातु रसायनज्ञान रंगमणि खानिग्यान वर।
तरुविद्या खगयुद्ध जानियो शुकपिकको स्वर॥
उत्सादन कचमारजन मूँठी धरतु बतावनो।
भाषा देशी-विदेशी ज्ञान विमान बनावनो॥

गुरुदक्षिणा प्रस्ताव

(१०५२)

अहोरात्रैश्चतुः षष्ट्या संयत्तौ तावतीः कलाः ।
गुरुदक्षिणयाचार्यं छन्दयामासतुर्नृप ॥*
(श्री भा० १० स्क० ५२ अ० २१ श्लो०)

छप्पय

करि गुरुकुल महँ वास पढ़ी विधिवत विद्या सब ।
दोनों गुरु तैं कहैं दक्षिणा देहिँ कहा अब ॥
अद्‌भुत महिमा निरखि विचारैं मन महँ गुरुवर ।
माग्रूँ इनतैं कहा करन सम्मति आये घर ॥
गुरुपत्नी बोली विभो ! मेरी यह इच्छा प्रबल ।
लावें सुतहिँ समुद्र तैं, डूब्यो प्रथम प्रभास थल ॥

प्राचीन प्रथा थी, कि जब शिष्य शिक्षा समाप्त करके व्रत स्नान कर, गुरुकुलसे चलने लगता, तो गुरुसे गुरु दक्षिणाके लिये प्रार्थना करता । सामान्यतया आचार्य यही कह देते थे—"भाई ! तुमने यहाँ रहकर मेरी जो इतनी सेवा की है,

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! दक्षिणा पाकर गुरु सान्दीपनी मुनि कहने लगे—"वत्स ! तुम दोनों ने अपनी गुरुदक्षिणा भलीभाँति चुका दी । जो तुम्हारे जैसों का गुरु है, उसकी कौ सी कामना शेष रह सकती है ?"

यही पर्याप्त है। मैं तुमसे वैसे ही प्रसन्न हूँ।" इस प्रकार कहकर शिष्य को सन्तुष्ट कर देते थे। शिष्य एक गौ दान देकर स्नातक होकर चला जाता था। किन्तु जब कोई शिष्य विशेष हठ करता, कि मुझसे कोई मनमानी दक्षिणा माँगिये, तो गुरु उसे कोई इच्छित वस्तु लाने को कहते। गुरु अपनी पत्नी से सम्मति करके किसी बहुमूल्य वस्तु को लाने का आदेश करते। शिष्य राजाओं के समीप जाता। उन दिनों ऐसा सदाचार था, कि गुरु दक्षिणा देने के लिए कोई स्नातक किसी राजा से किसी वस्तु की याचना करता, तो वह उसे अपना अहोभाग्य समझता और अपनी शक्ति के अनुसार उसकी इच्छा पूर्ण करता। गुरु दक्षिणा के लिए स्नातक को धन देना परम पुण्यमय कार्य समझा जाता था। महाभारत के आरम्भ में ही कथा आती है कि आचार्य वेद के समीप उत्तङ्क नामक एक छात्र रहता था। जब वह विद्या समाप्त कर चुका तो उसने इच्छित गुरुदक्षिणा देने की गुरु से प्रार्थना की। गुरु ने सरलता से कह दिया—"तुमने धर्म पूर्वक हमारी सेवा की, यही पर्याप्त है।" उत्तङ्क ने बार बार हठ किया। तब गुरु ने कहा—"अपनी गुरुमाता की इच्छा पूर्ण करो। शिष्य गुरुमाता के पास गया। स्त्रियों को तो सुन्दर आभूषण चाहिये। गुरुपत्नी ने कहा—"एक दिन मैं पौष्य राजा के यहाँ गई थी। उसकी रानी कानों में बड़े सुन्दर कुण्डल पहिने थी। उन्हें जैसे हो तैसे मुझे ला दो। उन्हें पहिनकर मैं ब्राह्मणों को भोजन कराऊँगी।" कथा बहुत बड़ी है उत्तङ्क कुण्डल लाने गया, उसे बड़ी बड़ी विपत्तियाँ उठानी पड़ीं। अन्त में जैसे तैसे लाया। इसी प्रकार की एक नहीं अनेकों कथायें हैं सभी सद्शिष्यों की यह आन्तरिक इच्छा होती है, कि चलते समय हम आचार्य को इच्छित वस्तु गुरु दक्षिणा में देकर उन्हें सन्तुष्ट करके उनका हार्दिक आशीर्वाद लेकर

तब घर जायँ। क्योंकि गुरु के आशिर्वाद से ही सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब दोनों भाइयों ने अल्प काल में ही समस्त विद्याओं को पढ़ लिया तब आचार्य सान्दीपिनी मुनि ने कहा—"पुत्रो! तुमने अल्पकाल में ही मेरे पास जितनी विद्या थी, सब पढ़ ली। अब तुम व्रत स्नान करके सुख पूर्वक घर जा सकते हो।"

यह सुनकर भगवान् ने कहा—"प्रभो! हमने आपकी कृपा से ही विद्या प्राप्त की है। आज्ञा कीजिये हम आपका कौन-सा प्रिय कार्य करें। गुरु दक्षिणा में कौन सी वस्तु आपको दें। आप जो संभव असंभव आज्ञा देंगे, हम, उसी का पालन करेंगे। कैसी भी अलभ्य वस्तु की आज्ञा देंगे, उसीको हम लाकर उपस्थित करेंगे।"

गुरुजी ने कहा—"पुत्रो! तुमने अपने शरीर के सुखों को त्यागकर निष्कपट भाव से हमारी सेवाकी है, यही पर्याप्त गुरु दक्षिणा है। तुम्हारा कल्याण हो तुम सुख पूर्वक अपने घर जाओ।"

भगवान् बोले—"नहीं, भगवन्! आप हमें कोई ऐसी आज्ञा दें, जिसके करने से हमें भी प्रसन्नता हो और आपको भी सुख प्राप्त हो।

दोनों भाइयों के अत्यन्त आग्रह को देखकर आचार्य बोले—"भैया! मुझे तो किसी वस्तु की आवश्यकता है नहीं, यदि तुम बहुत ही आग्रह करते हो, तो मैं जाकर तुम्हारी गुरुमाता से पूछता हूँ, वह जो कहे वह तुम कर देना।"

भगवन् बोले—"अच्छी बात है, आप हमारी गुरु माता-जी से ही पूछकर आज्ञा दें।" यह सुनकर गुरुजी घर के भीतर गये और अपने पत्नी से बोले—"पंडितानी! सुनती है।

तेरे राम-कृष्ण अब सब विद्या पढ़ गये हैं। वे स्नातक होकर अपने घर जा रहे हैं। मुझसे गुरुदक्षिणा देने को बहुत आग्रह कर रहे हैं। तुझे कुछ आवश्यकता हो, तो उनसे माँग ले।"

गुरुजी बोलीं—"महाराज! आपकी कृपा से सभी तो है, माँगना क्या है ?"

आचार्य बोले—"हाँ, नारायण की कृपा से सभी कुछ तो है। फिर भी तुम्हारी कोई भीतरी इच्छा हो, कोई मूल्य से मौल्यवान वस्तु की अकांक्षा हो, तो कह दो। ये दोनों बालक सामान्य बालक नहीं हैं। ये असम्भव को संभव बना सकते हैं। मृतक को जीवित कर सकते हैं।"

मृतक को जीवित करने की बात सुनकर गुरुपत्नी को अपने मृतक पुत्र की याद आ गई। बहुत दिन की बात है, वे किसी पर्व विशेषपर प्रभास क्षेत्र में गई थी। वहाँ समुद्र स्नान करते हुए उनका लड़का समुद्र में डूब गया। गुरुपत्नी को वह लड़का अत्यन्त ही प्यारा था। अभी तक वे उस बालक की भोली भोली सूरत को भुला नहीं सकी थीं। उनके मन में आई क्यों नहीं मैं राम-कृष्ण से अपने मृतक पुत्र को लाने के लिये कहूँ। वे स्वयं श्रीकृष्ण की अलौकिक महिमा को देख चुकी थीं। तभी से उन्हें निश्चय हो गया था, ये साधारण पुरुष नहीं हैं।"

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! आचार्य पत्नी ने भगवान् की कौन सी ऐसी अमानुषी लीला देखी थी ?"

सूतजी बोले—"महाराज! एक दिन की बात है, भगवान् बैठे हुए सन्ध्या वन्दन कर रहे थे। समीप में ही गुरु पत्नी गौ का दुहने का उपक्रम कर रही थीं। बछड़े को दूध पिलाकर उसे गौ के पैरों से बाँध दिया। दुहनी दूर पर रखी थी। बछड़े को छोड़कर वे दुहनी लेने जा नहीं सकती थीं। अतः वहीं बैठे बैठे गौ के स्तनों को पकड़े ही पकड़े उन्होंने

"कृष्ण भैया ! तनिक मेरी दुहनी तो उठाकर दे जाना।"

भगवान् उस समय सूर्य नारायण को अर्घ्य दे रहे थे। अर्घ्य बिना दिये बीच में से उठ नहीं सकते थे, साथ ही आचार्य पत्नी की आज्ञा को टाल नहीं सकते थे। अतः दो हाथों से तो वे अर्घ्य देते रहे और दो हाथ और निकाल वहीं से उन्हें बढ़ाकर उनसे आचार्य पत्नी को दुहनी थमा दी। यह देखकर आचार्य-पत्नी को बड़ा आश्चर्य हुआ। तभी से वह समझ गई कि यह कोई साधारण बालक नहीं। कुछ काल में आचार्यपत्नी इस बात को भूल गई। आज प्रसङ्ग आने पर वह बात पुनः स्मरण हो उठी। तब उन्होंने आचार्य से कहा—"एक मेरी इच्छा है, किन्तु उसे कहने में मुझे संकोच लगता है।"

आचार्य ने बात पर बल देते हुए कहा—"संकोच की क्या बात है, वे तो अपने घर के बालक हैं, तुम्हारी जो इच्छा हो, कह दो। वे तो करने को उद्यत ही बैठे हैं।"

आचार्यपत्नी ने कहा—"आपको स्मरण ही होगा, मेरा जो पुत्र प्रभास यात्रा के समय समुद्र में डूब गया था, उसे मैं अभी तक नहीं भुला सकी। यदि राम कृष्ण मेरे उस बच्चे को किसी प्रकार समुद्र से ला सकें तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।"

यह सुनकर आचार्य मन ही मन अप्रसन्न हुए। स्त्रियों को यही, बहू बच्चों की चाहना बनी रहती है। इतने बड़े ईश्वर को पाकर उनसे भक्ति माँगती, मुक्ति माँगती, सो तो माँगा नहीं। माँगा क्या, हाड़ मांस का एक पुतला। किन्तु उन्होंने ऊपर से कुछ कहा नहीं। यही कह दिया—"अच्छी बात है मैं उनसे जाकर कहता हूँ।"

बाहर आकर उन्होंने प्रतीक्षा में खड़े हुए राम कृष्ण दोनों से कहा—"भाई, सुनते हो। तुम्हारी गुरुमाता ने प्रभास में मृतक

अपने पुत्र की याचना की है।"

भगवान् ने कहा—"गुरुदेव! वह बालक कैसे मरा था?"

आचार्य सान्दीपिनी ने कहा—"हम यात्रा में प्रभास गये थे। यज्ञ कर रहे थे, वह बालक समुद्रमें स्नान करने गया था, डूबकर मर गया। समुद्र ने उसे अपने उदर में छिपा लिया।"

भगवान् ने आवेश के साथ कहा—"समुद्र का ऐसा साहस कि हमारे गुरु-पुत्रको वह अपने उदर में छिपा ले। आचार्य देव! आप कोई चिन्ता न करें। हम अभी जाते हैं और समुद्र का निग्रह करके उससे उस बालक को लाते हैं। आप और माताजी निश्चिन्त रहें। आप अपने पुत्र को आया हुआ समझें।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार कहकर वे दोनों परम पराक्रमी वीर महारथी भाई रथ पर चढ़कर प्रभास में समुद्र के किनारे गये। वहाँ जाकर वे बहुत देर तक समुद्र के तट पर बैठ रहे। समुद्र ने जब देखा कि साक्षात् श्रीमन्नारायण अतिथि रूप में मेरे किनारे पर आये हैं, तो वह मनुष्य रूप रखकर पूजा की बहुत सी सामग्री लेकर दोनों भाइयों के सम्मुख आया। अब दोनों में जैसी बातें होंगी, वह प्रसङ्ग में आगे कहूँगा।"

छप्पय

दोऊ रथ चढ़ि चले नीरनिधिके ढिंग आये।
गुरु सुत देहु समुद्र रोषतैं वचन सुनाये॥
दीयो असुर बताय पञ्चजन सो हरि मारयो।
गुरुसुत तहँ नहिं मिल्यो पाञ्चजन शंख निकारयो॥
संयमनी यमकी पुरी, मह दोउ भाई गये।
राम-कृष्ण कूँ निरखि यम, अति ही आनन्दित भये॥

गुरु दक्षिणा देकर गृहागमन

(१०५३)

सम्यक् संपादितो वत्स भवद्‌भ्यां गुरुनिष्क्रयः ।
को न युष्मद्विधगुरोः कामानामवशिष्यते ॥❀
(श्री भा० १० स्क० ४५ अ० ४७ श्लो०)

छप्पय

करि पूजा यम कहें नाथ तुम अन्तरयामी।
कीयो दास कृतार्थ करें कछु आयसु स्वामी॥
हरि बोले—'गुरु तनय यहाँ आयो तिहि लायो।
है विशेष यह नियम नहीं अब देर लगाओ'॥
यमने दीयो तुरत शिशु, राम श्याम गुरु कूँ दयो।
पाइ मृतक सुत सुख अधिक, गुरु अनजानी कूँ भयो॥

समस्त नियमोंके बनाने वाले श्रीहरि हैं। जिसमें जिसे बनानेकी शक्ति होती है उसमें उसे तोड़नेका भी सामर्थ्य होता है। एक तो होता है सामान्य नियम, वह सब पर लागू होता है है। एक विषेप नियम होता है, जो सामान्य नियमके विपरीत

❀ श्री शुकदेवजी कहते हैं—"हे नृप ! श्रीबलरामजी तथा श्रीकृष्ण चन्द्र दोनों भाइयों ने संयतचित्त होकर चौंसठ दिन रात्रि में चौंसठ कलाएँ सीख लीं। तदनन्तर विद्या समाप्ति के उपलक्ष में उन्होंने आचार्य से गुरुदक्षिणा माँगने की विनती की।"

होता है, कि सामान्यसे विशेष सदा बलवान् होता है। विशेष नियम होने पर सामान्य नियममें अपवाद हो जाता है। जैसे सामान्य नियम है, जो आदमी मर गया—यम लोक चला गया—फिर वह लौटकर नहीं आता, किन्तु भगवान् चाहें तो वह लौट भी सकता है। सभी लोक तो उन्हींके बनाये हुए हैं। सभी लोकोंके लोकपाल तो उन्हींके नियुक्त किये हुए हैं। वे जब जिसे जैसी चाहें आज्ञा दे दें।

श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन! राम और कृष्ण दोनों भाई जब समुद्र तट पर आकर बैठे थे, तब मनुष्य रूप रखकर और अनेक थालोंमें रत्न आदि पूजाकी सामग्री लेकर समुद्र उनके निकट आया। आकर उसने दोनों भाइयोंके चरणोंमें प्रणाम किया, उनकी विधि पूर्वक पूजा की। भगवानने पूछा—"भाई! तुम कौन हो?"

समुद्रने कहा—"प्रभो! मैं इस जल निधि समुद्रका अधिष्ठातृ देव हूँ।"

भगवान् बोले—"अरे, भाई! हम तो तुम्हारे पास ही आये हैं। तुमने हमारे गुरु पुत्रको डुबा लिया था, तुम उसे अपनी तरङ्गोंसे बहा ले गये। उसे हमें ज्यों का त्यों लौटा दो।"

समुद्रने कहा—"भगवन्! मैंने उस बालकको अपनी तरङ्गों से नहीं डुबाया है। वह तो किनारे पर ही खड़ा था। इतनेमें ही मेरे जलमें रहने वाला एक पञ्चजन्य नामक असुर आया। प्रभो! वह बड़ा भारी शंखका रूप रखकर मेरे जलमें रहता है, वही उस बच्चेको निगल गया था! उसके अतिरिक्त मेरे यहाँ आपके गुरु पुत्रको चुराने वाला दूसरा कोई नहीं है।"

भगवान्ने कहा—"लाओ, हम उस असुर शंखासुरको ही मारते हैं!" यह कहकर वे शंखरूप धारी पञ्चजन्य असुर को मारने चले।

इस पर शौनकजीने कहा—"सूतजी ! क्या भगवान् इतने भोले बन गये, कि वे यह भी नहीं जानते, कि असुर खा गया भी होगा, तो बच्चा उसके पेटमें तो बैठा ही न होगा। उसे पचा गया होगा। बिना बात असुरको मारने को भगवान् उद्यत क्यों हो गये ?"

सूतजी बोले—"महाराज ! भगवान्की आप कुछ न पूछिये। जब वे भोले बनते हैं, तो ऐसे भोले बनते हैं, कि भोलेपनकी पराकाष्ठा कर डालते हैं और जब चतुर बनते हैं, तो चतुरताको सीमा तक पहुँचा देते हैं। इनका कोई भी काम व्यर्थ नहीं होता। कोई निमित्त बनाकर ये एकसे अनेक कार्य कर डालते हैं। गुरु-पुत्रको ढूँढने का तो एक उपलक्षण मात्र था, वास्तवमें तो उन्हें शंखासुर को मारना था, वह प्राणियोंको अत्यधिक पीड़ा देता था। दूसरे उसका शरीर शंख रूपमें था। भगवानको एक बजानेके लिये शंखकी आवश्यकता थी, अतः उस असुरको मारकर उससे शंख लेना था। इसीलिये भगवान उसे मारनेको उद्यत हुए।"

शौनकजीने कहा—"हाँ, सूतजी ! बात ऐसी ही है। भगवान् क्या करना चाहते हैं, उनकी लीला वे ही जानते हैं। अच्छा, तो हाँ फिर क्या हुआ ?"

सूतजी बोले—"और महाराज ! होना क्या था, शङ्खासुर का उद्धार करना था। सो हो गया। भगवान जलमें घुस गये और जाकर शङ्खासुरको मार डाला। उसके पेटको फाड़कर देखा, उसमें बालक तो था नहीं। एक बड़ा भारी शङ्ख उसके शरीरमेंसे प्रकट हुआ। भगवानने सोचा—"अच्छा, कोई बात नहीं। जोई राम सोई राम। लाओ इस शङ्खको ही ले चलें। यह सोचकर वे पञ्चजन्य असुरके शरीरसे प्रकट हुए, शङ्खको लेकर दक्षिण दिशामें लोकपाल यमराज की संयमनी नामकी नगरी में गये। नगरीके द्वार पर ही उन्होंने तुमुल ध्वनिके साथ पाञ्चजन्य शङ्खको

बजाया। भगवान्‌के शङ्खका शब्द सुनते ही संयमनी पति यमराज समझ गये, कि यह भगवान्‌के शङ्खकी ध्वनि है। तुरन्त वे उठकर खड़े हो गये। आकर भगवानका चरण वन्दना की है। सुवर्ण सिंहासनों पर दोनों भाइयोंको बिठाकर उनकी पूजा की। तदनन्तर हाथ जोड़कर अत्यन्त विनम्रताके साथ सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्णचन्द्र भगवानसे संयमनी-पति यमराज कहने लगे—"हे सर्वान्तर्याम प्रभो। मेरे योग्य जो कार्य हो उसके लिये आज्ञा प्रदान करें। आज आपके चरणोंकी रजमें यह पुरी परम पावन बन गई। मैं आप दोनोंकी कौनसी सेवा करूँ?"

यह सुनकर यमराजके प्रति सम्मान प्रकट करते हुए भगवान् बोले—"हे संयमनी-पति महाराज धर्मराज! देखिये, हमारे गुरुका पुत्र आपके दूतों द्वारा यहाँ लाया गया है।"

यमराजने कहा—"हाँ, प्रभो! हमें आपने यही कार्य सौंपा है, पृथिवी पर जिसका समय समाप्त हो जाता है, वह यहाँ लाया जाता है। सभी प्राणी स्वकर्म सूत्रमें आबद्ध हैं। उसी कर्म बन्धन में बंधा आपका गुरु-पुत्र भी यहाँ लाया गया है।"

भगवान्ने कहा—"अच्छी बात है, उसे यहाँ ले आओ। हम उसे फिरसे पृथिवी पर ले जाना चाहते हैं।"

यमराजने दीनतासे कहा—"प्रभो! ऐसा तो होता नहीं, नियम ऐसा ही है, कि जो यमलोकमें आ गया, वह फिर दूसरे शरीरसे ही पृथिवी पर उत्पन्न हो सकता है।"

भगवान् बोले—"हाँ, यह तो हम भी जानते हैं, किन्तु यह हमारी विशेष आज्ञा है। हम अपने विशेषाधिकारसे आज्ञा दे रहे हैं।"

यमराजने कहा—"तब भगवान! मुझे सदा आपकी ही सकती है समस्त नियमोंके नियामक तो आप ही हैं। सूर्य, चन्द्र, वायु तथा समस्त भूत आपकी आज्ञामें ही तो कार्य कर रहे

मैं अभी आपके गुरु-पुत्रको लाता हूँ।" यह कहकर लोकान्तरमें कर्मोंको भोगने वाले गुरुपुत्रसे जीवात्मा को योग प्रभावसे वैसा ही बनाकर यमराज तुरन्त ले आये। लाकर उन्होंने श्रीबलराम तथा श्रीकृष्णको अर्पण किया।

इस प्रकार यमपुरीसे अपने गुरुपुत्रको लौटाकर यमराजको कृतार्थ करके दोनों भाई पुनः अवन्ती पुरीमें लौट आये। गुरुके समीप आकर गुरुमाताके समक्ष उस बालकको देते हुए भगवान् बोले—"गुरुदेव! यह आपका पुत्र है। इसके अतिरिक्त और भी कोई वर माँगे तो उसके लिये भी आज्ञा दीजिये।"

अपने प्राणोंसे प्यारे मृतक पुत्रको पुनः पाकर गुरुदम्पतिको कितनी प्रसन्नता हुई होगी यह कहनेका विषय नहीं है। अनुभव-गम्य ही सुख है। गुरुजीने गद्गद् कंठसे कहा—"पुत्रो! तुम दोनों अपनी गुरु दक्षिणा भली भाँति दे चुके। मेरे लिये यही बड़े सौभाग्यकी बात है, कि मैं आप जैसे ईश्वरोंका गुरु कहलाऊँगा। अब मेरी समस्त कामनायें पूर्ण हो गई, शिष्य रूपमें तुम्हें पाकर मैं कृतार्थ हो चुका। अब तुम आनन्द पूर्वक प्रसन्नताके साथ अपने घर जाओ। संसार में तुम्हारा सर्वत्र यश फैलेगा। तुम्हारी बड़ी ख्याति होगी। संसारी लोग तुम्हारा परमपावन सुमधुर नाम लेकर इस संसार सागरसे बातकीबातमें तर जायँगे।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! गुरुकी आज्ञा और आशिर्वाद प्राप्त करके दोनों भाई वायुसे भी अधिक वेगशाली रथ पर चढ़कर मथुरा पुरीमें आ गये। लोगोंने जब मेघके समान घर घर करते हुए रथका शब्द सुनातो सबके हर्षका ठिकाना नहीं रहा। राम-कृष्णको गुरुकुलसे लौटा देखकर मथुरा वासियोंके हर्षका ठिकाना नहीं रहा। दोनोंके दर्शनोंके लिये भीड़ उमड़ पड़ी। नरनारी नित्य दिन गिन रहे थे, कब रामश्याम आवें, कब उनके दर्शनोंसे हम अपने नेत्रोंको कृतार्थ करें। सभीने हृदयसे दोनोंका स्वागत सत्कार

किया माता, पिता, नाना तथा समस्त पुरजन परिजनों से सत्कृत होकर दोनों भाई सुखपूर्वक मथुरा पुरी में रहकर राजकाज करने लगे। अब मुनियो ! आप कृष्ण वियोग में दुखित व्रजवासियों की दशा का भी कुछ स्मरण करें। श्रीकृष्ण के वियोग में वे कितने दुखी हो रहे थे। कैसे आँसू बहा रहे थे। अब कुछ विरह की भी कथा श्रवण करें।

छप्पय

आये मथुरा पुरी सुनत सबई उठिधाये।
राम-श्याम के दरश पाइ सब अति हरषाये॥
द्वै पूरन शशि सरिस सबनि कूँ सुख सरसावैं।
मथुरा महँ नित बरौं प्रेम को सोत बहावैं॥
यहाँ छोड़ि कछु काल कूँ, श्री मथुराजी की कथा।
हृदय थामि सोचो तनिक, विरह माँहि व्रज की व्यथा॥

इससे आगे की कथा छियालीसवें खंड में पढ़ें

मेरे महामना मालवीयजी

और

उनका अन्तिम संदेश

अधिकारियों ने श्रीब्रह्मचारीजी को विजय दशमी के अवसर पर रामलीला के जुलूस के सम्बन्ध में कारावास भेज दिया था। देश के कोने कोने से युक्तप्रांत के प्रधान मन्त्री के पास सैकड़ों तार पत्र गये। रोग शैय्या पर पड़े पड़े महामना मालवीयजी ने प्रधान मंत्री और गृह मंत्री को तार दिये। य ही उनके अंतिम तार थे। ब्रह्मचारीजी को छुड़ाने को उन्होंने श्रीपन्तजी और मिस्टर किदवई को जो पत्र लिखे वे ही उनके अन्तिम पत्र थे। इन पत्रों को लिखकर और ब्रह्मचारीजी को छुड़ाकर उसके आठवें दिन वे इस असार संसार से चल बसे। इस पुस्तक मे उन पत्रों के लिखने का बड़ा ही सरस, रोचक और हृदयग्राही इतिहास है। महामना मालवीयजी के सम्बन्ध के ब्रह्मचारीजी महाराज को अनेकों सुखद संस्मरण हैं। अन्त में उनका पूरा ऐतिहासिक सन्देश भी है। पुस्तक बड़ी रोचक और ओजस्वी भाषा में लिखी गयी है, कागज की कमी के कारण बहुत थोड़ी प्रतियाँ छपी हैं, गुटका के आकार के लगभग १३० पृष्ठ हैं। मूल्य ।) मात्र। १) से कम की वी० पी० न भेजी जायगी। स्वयं पढ़िये और मंगाकर वितरण कीजिये। समाप्त होने पर द्वितीय संस्करण शीघ्र न हो सकेगा।

॥ कीर्तनीयः सदा हरि ॥

सचित्र

"भागवत चरित"

[सप्ताह]

जिन लोगों ने श्रीब्रह्मचारीजी द्वारा लिखित "भागवती कथा" पढ़ी होगी, उन्हें विदित होगा कि इसमें प्रत्येक अध्याय के आदि में और अन्त में एक छप्पय होती है, ये छप्पय परस्पर में संबंधित होते हैं। केवल छप्पयों को ही पढ़ते जाओ, तो पूरी कथाएँ क्रमबद्ध आ जायेंगी। कहना चाहिये "भागवती कथा" इन छप्पयों का भाष्यमात्र ही है। इन सब छप्पयों को सात भागों में बाँटकर उनमें भी अध्याय बना दिये गये हैं। बीच में कथा प्रसंग जोड़ने को दोहा, सोरठा, छन्द तथा पद भी सम्मिलित कर दिये गये हैं। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और उनके भक्तों के चरित्र से युक्त यह पद्य काव्य साहित्य की अपूर्व वस्तु हो गयी है। भगवद्भक्तों के लिए तो रामायण की भाँति पाठ करने के लिये यह अलौकिक वस्तु है। सात दिनों मे पारायण करने से भागवत सप्ताह का पूर्ण फल इससे प्राप्त हो जायगा। सुन्दर चिकना कागज पर इसे छपाये हैं। लगभग ९०० पृष्ठ इसमें हैं। सैकड़ों सादे और रंगीन चित्र भी हैं। न्योछावर सजिल्द ५.२५ पैसा है अब तक इसके पाँच पाँच हजार के पाँच संस्करण छप चुके हैं छठा संस्करण छप रहा है थोड़ी प्रतियाँ शेष हैं। शीघ्रता करें नहीं दूसरे संस्करण की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।